हिन्दी में सर्वप्रथम प्रकाशन

नंदी सूत्रोक्त-कालिक आगम

द्वितीय आवृत्ति

समुत्थान सूत्र

भावार्थ एवं विवेचन सहित

:: संपादक ::

तिलोकचंद जैन

(आगम मनीषी)

विश्व भारती लाडनूं

तेरापंथ समुदाय के द्वारा व्यवहार भाष्य और उसका अर्थ हिंदी में पुस्तकाकार में अभी नया प्रकाशन एक ही भाग में हुआ है जिसमें ४-५ हजार करीब गाथाएँ प्राकृत में है । उसी गाथा के साथ उसका सरल हिंदी अनुवाद भी है ।

व्यवहार भाष्य वीर निर्वाण १२वीं शताब्दि में बनाया गया है। इस पर संस्कृत टीका भी है । मूल भूत प्रकाशन अहमदाबाद से पचास वर्ष करीब पहले हुआ था जिसे बोटाद संप्रदाय के श्री माणेक्यचन्द्रजी म.सा. द्वारा संपादित किया गया था । हिंदी अनुवाद अभी लाडनूं से छपा है ।

व्यवहार भाष्य गाथा - ४६६३ और ४६६४ में समुत्थान सूत्र का परिचय मिलता है । वह दोनों गाथा-

तेरस वासे कप्पइ, उट्ठाण सुए तहा समुट्ठाणे ।
देविंद परियावणिया, णागाण तहेव परियाणा ॥४६६३॥

परियट्टिज्जंति जहियं, उट्ठाणं सुयं तु उट्ठेति ।
कुल गाम देसमादि, समुट्ठाण सुए णिविस्संति ॥४६६४॥

भावार्थ :- उत्थान सूत्र का यथोक्त विधि से परियट्टण करने पर ग्राम नगर देश के लोग उद्वसित हो जाते है अर्थात् हैरान परेशान हो जाते हैं भागदोड मच जाती है और समुत्थान सूत्र का यथोक्त विधि से २-३ बार स्वाध्याय करने पर पुनः आबाद हो जाते हैं अर्थात् उन ग्रामादि में उपद्रव शांत हो जाता है । इसके सिवाय पक्खी (पाक्षिक) सूत्र टीकार्थ सहित अहमदाबाद से गीतार्थगंगा संस्था पालडी से छपा है उसमें भी देखकर संतोष समाधान कर सकते हैं ।

विक्रम की १४वीं सदी में १३१५ में प्रद्युम्न सूरिने विचार सार ग्रंथ में ४५ आगम की लिस्ट संस्कृत के ६ श्लोक में दी है उसमें समुत्थान सूत्र का नाम गिना है ।

विधि मार्ग प्रपा वि.सं. १३६० में खरतरगच्छ के जिनप्रभसूरि ने बनाया उसमें भी समुत्थान सूत्र का नाम दिया है ।

नंदी सूत्रोक्त : गणधर रचित
कालिक आगम

द्वितीयावृत्ति

समुत्थान सूत्र

[भावार्थ-विवेचन सहित]

: संपादक :
आगम मनीषी
श्री तिलोकचन्दजी जैन

प्रकाशक : आगम नवनीत प्रकाशन समिति, राजकोट

संपादक : श्री तिलोकचन्दजी जैन-आगम मनीषी

संप्रेरक : दिनेशकुमारजी माणकचंदजी सांडेचा(महा.)

प्रकाशन : ३०-७-२०१६ (प्रथम आवृत्ति-१५००)

प्रकाशन : दिसंबर - २०१६ **(द्वितीय आवृत्ति-७५०)**

प्रतियाँ : १०००

मूल्य : १००/-

प्राप्ति स्थान

श्री तिलोकचन्दजी जैन

२०२, मून एपार्टमेन्ट, बंशी पार्क,

रैयाधार पानी की टंकी के पीछे, ८० फुट रोड,

शांतिनगर के पास, रामापीर सर्कल के पास,

पोस्ट - **राजकोट - ३६० ००७. (गुजरात)**

मो. ०९८९८२३९९६१

अभिजीत मणिलाल शाह

तिरुपति नगर शेरी नं. २, हनुमान मढी चौक,

शब्जीमन्डी रैया रोड,

पोस्ट - **राजकोट - ३६० ००७. (गुजरात)**

मो. ९३२८१९१०६०

प्रकाशकीय

चौदह पूर्वी भद्रबाहु स्वामी ने व्यवहार सूत्र की रचना की है उसके दशवें उद्देशक में समुत्थान सूत्र पढने का श्रमण को संकेत है। एक पूर्वी देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने नंदी सूत्र में उपलब्ध आगमों की सूचि में कालिक सूत्र की गणना में इस सूत्र का नाम दिया है। कालिक सूत्रों की रचना गणधरों की होती है । पाक्षिक सूत्र, विधिमार्ग प्रपा, विचार सार आदि ग्रंथ विक्रम की १०वीं से १४वीं सदी तक के साहित्य में समुत्थान सूत्र का नाम है । व्यवहारसूत्र के भाष्य गा॰ ४६६३ तथा ४६६४ में समुत्थान सूत्र का परिचय और प्रभाव दिया है । वि.सं. १९९८ में पंजाब से प्रकाशित मूल पाठ के आधार से शब्दार्थ भावार्थ सहित गुजराती भाषा में बोटाद संप्रदाय के संतों की प्रेरणा से यह सूत्र जामनगर से प्रकाशित हुआ ।

हिंदी भाषा में माँग और आवश्यकता समझकर मूलपाठ की मौलिकता प्राय: है जैसी रखते हुए भावार्थ विवेचन का यथायोग्य संपादन करके यह अनुपलब्ध समुत्थान सूत्र आगम स्वाध्यायियों के करकमलों में हिंदी भाषा में पहुँचाते हुए हम आगमसेवा संतुष्टी का अनुभव करते हैं। आशा है स्वाध्यायी वर्ग इसका लाभ उठावेंगे ।

प्रथमावृत्ति के १००० प्रत के बाद तुरंत ५०० प्रत प्रकाशित की गई और कुछ महिनों बाद यह द्वितीयावृत्ति भी १००० प्रत के रूप में प्रकाशित की जा रही है । प्रथमावृत्ति में हुई भूलों और रही कमियों को इसमें परिमार्जित किया गया है । भूलों के संशोधन में बहुत बडा सहकार राजकोट के एक धर्मप्रमी भाई का रहा है जिन्होंने संपूर्ण पुस्तक को अक्षरश: सूक्ष्मावलोकन कर मूल पाठ और अर्थ की हमारी अनेक भूलों को संशोधित किया । गोंडल संघाणी संघ के प्रमुख और सेवा निवृत्त प्रो. श्री मुकुन्दभाई पारेख ने पुस्तक में रही अधूरता-कमियों को निर्देश करते हुए मार्गदर्शन दिया । इन दोनों की अंतर्लगन को पूर्ण आदर देकर इस शास्त्र को सुव्यवस्थित सुसज्जित करने का प्रयत्न किया गया है । अत: द्वितीयावृत्ति के इस प्रसंग पर उन दोनों महान आगमप्रेमी आत्माओं को धन्यवाद के साथ अभिवादन करते हुए आनन्दानुभूति करते हैं ।

इस सूत्र के पूर्व प्रकाशकों का तथा अन्य बौद्धिक एवं आर्थिक सहयोग दाताओं के हार्दिक आभार के साथ..... ।

संप्रेरक : दिनेशकुमार सांडेचा, शिरपुर ।

संपादकीय

नंदी सूत्र में आगमों की सूची श्रुतज्ञान के वर्णन में उपलब्ध है । उस सूची के कालिक सूत्र विभाग में समुत्थान सूत्र का नाम विद्यमान है । अत: यह सूत्र देवर्धिगणी क्षमाश्रमण के आगम लेखन के समय में लिपिबद्ध किया गया । तथा १४ पूर्वी श्री भद्रबाहुस्वामी के रचित व्यवहार सूत्र के दशवें उद्देशक में श्रमणों के दीक्षा पर्याय क्रम से शास्त्र अध्ययन का वर्णन है । वहाँ पर भी श्री समुत्थान सूत्र का नाम अध्ययन क्रम में आया है । भंडारों में रहते हुए भी यह शास्त्र प्रसिद्धि पात्र नहीं रहा । अत: मध्यकाल में इस पर कोई व्याख्या साहित्य नहीं बना । यत्र तत्र भंडारो में अवशेष रहते विक्रम की १९वीं सदी में पंजाब संप्रदाय के गणिवर्य उदयचन्द्रजी म.सा. के शिष्य पं.श्री रत्नचन्द्रजी म. ने जब हनुमानगढ (राजस्थान) में चातुर्मास किया । तब वहाँ रोडी गाँव के यतिजी का भंडार स्थानांतरित करके लाया हुआ था । उसमें समुत्थान सूत्र की १ प्रत अव्यवस्थित जीर्ण उन्हें देखने को मिली । मुनिश्रीने यतिजी की आज्ञा से व्यवस्थित कर उसे अपने पास रख ली । फिर मूलपाठ मात्र प्रकाशित करवाया । वह भी दशवैकालिक सूत्र के चौथे अध्ययन के बाद परिशिष्ट रूप में। जामनगर के सुश्रावक शेठ श्री सोमचन्द्र भाई के व्यक्तिगत भंडार में वह प्रकाशित प्रत रखी थी । संवत-१९९७ में बोटाद संप्रदाय के श्री माणेक्य चन्द्रजी म.सा. का ठाणा-४ से जामनगर चातुर्मास था । उनके शिष्य श्री शीवलालजी स्वामी ने समुत्थान सूत्र पढा । समय-श्रम-सहयोग जुटाकर उसका शब्दार्थ, भावार्थ का संकलन कर प्रकाशन के योग्य तैयार किया । जिसका संवत १९९८ में ता.१-३-१९४२ में प्रकाशन हुआ ।

इस जामनगर के प्रकाशन के भी करीब ७० वर्ष बाद समुत्थान सूत्र हमें भी पढने को मिला । संशोधन संपादन कर गुजराती में प्रकाशन का भाव हुआ । सारे संशोधन विवेचन पूर्ण संपादित कर अंतिम प्रूफ और सी.डी. आचार्य श्री प्रकाशचन्द्रजी स्वामी (लींबडी अजरामर संप्रदाय) को मुम्बई पहुँचा दिया । हिंदी अनुवाद प्रकाशन

के लिये दिनेश माणकचंदजी सांडेचा की प्रेरणा होने पर फिर इसी कार्य में पुरुषार्थ चालु किया ।

पंजाब से मूल पाठ छपने का लेखन संवत् १९९८ में जामनगर से प्रकाशित समुत्थान सूत्र के प्रारंभिक प्रस्ताविक पृष्टों में हुआ है। जो पुस्तक गुजरात में कई जगह भंडारों में उपलब्ध है । यह पुस्तक गुजराती भावार्थ शब्दार्थ युक्त है । पंजाब में मूलपाठ किस जगह से कब छपा है यह जामनगर की पुस्तक में ज्यादा स्पष्ट नहीं है अर्थात् पंजाब का संपर्क सूत्र भी नहीं है । पंजाब से छपी दशवै कालिक सूत्र के चौथे अध्याय के साथ परिशिष्ट या टिप्पण रूप में समुत्थान सूत्र का पूरा मूलपाठ करीब १०००-१२०० श्लोक प्रमाण का है उसका जामनगर में गुजराती शब्दार्थ भावार्थ करके छपाया गया है उसे आज ७५ वर्ष हो गये है ।

हिन्दी भाषा में यह शास्त्र अनुपलब्ध होने से इसका प्रकाशन आवश्यक समझकर यह प्रयत्न किया गया है । अहमदाबाद गीतार्थ गंगा से, एल. डी. लाईब्रेरी से तथा कोबा भंडार से हस्तलिखित और प्रकाशित पुस्तक देखने का प्रयत्न किया तो पूरी खोज के बाद भी यह सूत्र हस्तप्रत रूप में नहीं मिलकर जामनगर प्रकाशित ही सर्वत्र मिला । तब हमने जामनगर के प्रकाशन स्थान पर जाकर मूल प्रत देखने का प्रयत्न किया । तथा कोबा कोम्प्युटर में यह भी जानने को मिला कि ७० वर्ष पूर्व जब यह शास्त्र छपकर प्रकाश में आया था तब मासिक पत्रों में इसकी चर्चा भी हुई थी । वे मासिक पत्र भी कोबा में संकलित रखे हैं । जामनगर में प्रकाशक का परिवार का कोई भी सदस्य उसका घर दुकान आदि किसी से भी जानकारी नहीं मिल सकी । हमारा प्रयत्न निष्फल रहा ।

सर्व अनुप्रेक्षण शोध के उपरांत यह तो स्पष्ट कहा जा सकता है कि इस उपलब्ध शास्त्र के विषयों में जिनवाणी के विरूद्ध कुछ भी नहीं है । साथ ही अनेक अपूर्व और अस्पष्ट विषयों का इसमें संकलन हुआ है जो सिद्धांत से अविरूद्ध और संयम के पोषक है। अतः इसका प्रकाशन पुनर्मुद्रण करना उपयुक्त समझा गया है ।

ऐतिहासिक परिचय– नंदीसूत्र और व्यवहार सूत्र के मूल पाठ में इस सूत्र की परिगणना की गई है जो अनेक प्राचीन नंदी, व्यवहार सूत्र की प्रतों से प्रमाणित है । लेखन युग में देवर्द्धि के नंदी रचना के बाद के साहित्य में समुत्थान सूत्र का नाम यथा प्रसंग आगम सूचियों में सदा रहा है । पक्खी सूत्र तथा विधिमार्ग प्रपा ग्रंथ(चौदहवीं सदी) में भी आगम लिष्ट में समुत्थान का नाम है ।

विक्रम की चौदहवीं सदी(विधिमार्ग प्रपा से पूर्व)में आचार्य प्रद्युम्नसूरि हुए है । उन्होंने विचारसार ग्रंथ की रचना संस्कृत में करी है । उसमें ४५ आगमों के नाम संस्कृत के ६ श्लोकों में लिखे हैं । इससे यह भी स्पष्ट है कि ४५ आगम मानने की परंपरा लोकाशाह के १५०-२०० वर्ष पूर्व प्रारंभ हो गई थी । किंतु इस विचार सार ग्रंथकी रचना समय(१३२५ वि.सं.) तक अंग और उपांग ये दो आगम विभाजन के सिवाय मूल, छेद, चूलिका, प्रकीर्णक ऐसी संज्ञा किसी आगम की प्रचलित नहीं हुई थी । क्योंकि आचार्यश्री प्रद्युम्नसूरि ने ११ अंग १२ उपांग के नामों के बाद २२ आगम के नाम बिना किसी विभाजन सीधे लाइनसर ही गिना दिये हैं । मूल, छेद, चूलिका सूत्र विभाजन तो नहीं किया किंतु प्रकीर्णक विभाजन भी नहीं किया तथा किसी भी सूत्रनाम के साथ प्रकीर्णक शब्द भी नहीं जोडा है । इससे स्पष्ट है कि नंदी सूत्र में प्रकीर्णक संबंधी पाठ भी इस काल के बाद कभी किसी के हस्तक्षेप से प्रविष्ट हुआ है । क्यों कि चौदहवी पंद्रहवी विक्रम की शताब्दि में ऐसे प्रक्षेप संबंधी काम करने वाले दुस्साहसी कई महानुभाव हुए हैं । कल्पसूत्र का प्रगटीकरण और तत्संबंधी अनेक असत्यप्ररूपण भी इसी काल की देन हैं । क्योंकि मलयगिरि तक टीकाकारों की रचनाओं में कल्पसूत्र संबंधी कोई चर्चा वार्ता नहीं है ।

संक्षेप में मूल, छेद, प्रकीर्णक, चूलिकाशास्त्र विभाजन १४वीं सदी के पूवार्ध तक नहीं था यह स्पष्ट है । आचार्यश्री प्रद्युम्नसूरि के उल्लिखित ४५ आगमों में से कालांतर में किन्हीं महापुरुषों ने ८ आगम निकालकर नये ही ९ नाम डाल दिये हैं जो वर्तमान ४५ आगम में चल रहे हैं ।

निकाले गये ८ आगम– (२४वाँ) द्वीपसागर प्रज्ञप्ति (३०वाँ) ऋषिभाषित (३६वाँ) नरक विभक्ति (३८वाँ) गणधरावली (३९वाँ) समुत्थानसूत्र (४०वाँ) मरण विभक्ति (४१वाँ) ध्यान विभक्ति (४२वाँ) पाक्षिकसूत्र ।

नये चलाये ९ आगम– आठ निकाले उनकी जगह नये नौ आगम ४५ में डाले गये है वे ये हैं- (१) पंचकल्प भाष्य (२) जीत कल्प भाष्य (३) महा निशीथ (४) ओघनिर्युक्ति (५) पिंडनिर्युक्ति (६) मरण समाधि (७) भक्त परिज्ञा (८) चतुःशरण (९) महाप्रत्याख्यान। प्राचीन आचार्य परंपरा प्राप्त में से किसी को निकालना और नये डालने का उद्देश्य कब क्या रहा होगा वह तो गहरा चिंतन करने वाला ही समझ सकता है । हमारा कहने का आशय यहाँ इतना ही है कि यह समुत्थान सूत्र पूर्व काल में ४५ आगम गणना में रहा था, यही इसका महत्व समझने का है ।

उपरोक्त परिवर्तन के सिवाय विशेष यह भी हुआ कि प्रद्युम्नसूरि के उन ४५ आगम पाठ में भी एक नरेन्द्र देवेन्द्रा नामक कल्पित ग्रंथ का नाम डालकर वहाँ से समुत्थान का नाम भी हटा दिया गया । प्राचीन हस्तप्रतों के देखने से यह तत्त्व उजागर होता है । आचार्यश्री विजयकीर्तियश सूरिजी के चतुःशरण प्रकीर्णक की प्रस्तावना में ढेर सारे (८८) प्रकीर्णकों का संकलन किया गया है उसमें भी नरेन्द्रदेवेन्द्रा प्रकीर्णक का नाम निशान भी नहीं है अतः यह नाम असद् बुद्धि से पीछे से प्रक्षिप्त हुआ है ऐसा स्पष्ट होता है । ऐसे ही किसी असद् उद्देश्य से इस समुत्थान सूत्र का नाम नंदी सूत्र सूचि में स्पष्ट होते हुए भी आज ४५ या ८४ आगमों की प्रकाशित सूचियों में कहीं भी देखने को नहीं मिलेगा । जब कि नंदी में जिनका अस्तित्व ही नहीं है ऐसे अनेकों प्रकीर्णक ४५ आगम या ८४ आगम की सूचि में प्रवेश पा गये हैं, यही सखेद आश्चर्यजनक बात है । जो एक स्पष्ट अन्याय है ।

एक कल्पना का निराकरण :– यह सूत्र पंजाब से मूलपाठ रूप और जामनगर से गुजराती में प्रकाशित हुआ जिसमें किसी को अपना दिमाग लगाने की बात खोझ करने पर भी सामने आने का कोई

प्रसंग नहीं मिला । फिर भी अपने पूर्वग्रह के कारण अति होश्यार कोई साधु यह कहे कि- इसमें किसी की उपज का असर है, अतः हम इसे आगमरूप में नहीं स्वीकार सकते हैं, तो यह व्यक्तिगत आग्रह मात्र है । इस सूत्र की जो रचना पद्धति है, वैसे अनेक ग्रंथ विक्रम की १०वीं १२वीं सदी से १४वीं सदी तक में संपादित हुए हैं जिसमें विधि पक्ष और शिथिल पक्ष दोनों के अनुकूल प्रतिकूल तत्त्वों का संकलन हुआ है । प्रमाण के लिए महानिशीथ, सोलह स्वप्ना आदि कई ग्रंथ देखे जा सकते हैं जिसमें स्थानक मंदिर दोनों पक्षों के सिद्धांतों की पुष्टी एक ही ग्रंथ में होती है । ऐसा मध्य काल के वातावरण का असर आगमग्रंथों में संभव हो सकता है । इसे अन्य तरह से आक्षेप करना अयोग्य होता है ।

सार यह है कि यह एक पवित्र और आगम सम्मत शास्त्र उपलब्ध हो रहा है इसे सादर स्वीकार कर श्रद्धा से स्वाध्याय कर ज्ञान वृद्धि करनी चाहिये।

नोट : मध्यकाल में (११वीं से १५वीं सदी में) शिथिल श्रमणों के साम्राज्य में विधिमार्गी श्रमण भी सदा होते रहे हैं । उनकी मानसिकता का असर इस अप्रसिद्ध आगम पर हुआ हो तो भी प्रश्नव्याकरण सूत्र पूरा परिवर्तित मान्य है क्यों कि जिनवाणी संमत है वैसे ही यह सूत्रभी जिनवाणी संमत विषय वाला है, इसलिये अवश्य संम्माननीय है । समुत्थान सूत्र से यह विशेष जानकारी प्राप्त होती है कि प्रश्न व्याकरण के उपमा नामक प्रथम अध्ययन के दश उद्देशक थे वे ही आश्रव संवर रूप में आज दश अध्ययन है । जिससे प्रश्नव्याकरण की मौलिकता पुष्ट होती है और प्रश्नव्याकरण सूत्र बदल जाने की भ्रमित धारणा नष्ट होती है क्योंकि उसका ही प्रथम अध्ययन आज मौजूद है ।

प्रस्तावना

समुत्थान एक अध्ययन :-

समुत्थान सूत्र- आत्मा के सम्यक् उत्थान का मार्ग बताने वाला शास्त्र। समग्र जैन दर्शन, जैन आगम और तीर्थंकर भगवंतो का उपदेश जो है उसका मुख्य लक्ष्य है आत्म विकास-आत्म विशुद्धि ।

अनादि अज्ञान दशा में पडा जीवात्मा कर्मों से संयुक्त होकर अपनी शुद्ध अवस्था को अशुद्ध बनाता जा रहा है । जैन दर्शन आत्मा की इस उलटी गति को सीधी करने का एवं स्वात्म दशा का शुद्ध भान करा कर कर्मों से मुक्त शुद्धात्म अवस्था प्राप्त करने का मार्गदर्शन करता है । जैन दर्शन जीव को यह आत्मबोध देता है कि तूँ मात्र मानव या देव अथवा जानवर ही नही है यह तो तेरी कर्मों से बनी-पुद्गल संयोग से बनी अशुद्ध अति अशुद्ध दशा है, तेरी शुद्धात्मा तो निरंजन निराकार परमात्म स्वरूप है । जन्मना, मरना, जीना और जीने के लिये कमाना, खाना और क्षणिक अपने बने धन, परिवार के पीछे ही अपने को सर्वस्व समझ लेना इतना ही पर्याप्त नहीं है परंतु यह श्रेष्ठ मानव भव बुद्धि विकास से संपन्न हो कर आत्म स्वरूप को समझने के लिये उत्तम साधन है ऐसी समझ सोच को दृढ करना जरूरी है। अनादि अशुद्ध आत्म अवस्था को जैनदर्शन की समझ और जिनेश्वर कथित प्रव्रज्या के माध्यम से विशुद्ध करना और उत्कृष्ट आत्मगुणों से आत्मा को सम्पन्न बनाना, यही श्रेष्ठ मानव भव का कर्तव्य है । अतः आत्म साधकों को समुत्थान सूत्र के माध्यम से जैनदर्शन और जैन प्रव्रज्या को प्राप्त कर आत्मगुणों के विकास में तन्मय बन जाना चाहिये । पुद्गलानंदी दशा से आत्मगुणानंदी दशा में रमण करना यही आत्मा का सम्यक् उत्थान समुत्थान है। यही इस समुत्थान सूत्र का सार उद्घोष इसके आठ उद्देशकों से प्रस्फुटित हो रहा है। समुत्थान सूत्र का अपर नाम प्रव्रज्या सूत्र भी है ऐसा इसके आठवें उद्देशक में कहा गया है।

इस सूत्र के सातवें उद्देशक के सूत्र-१६ में परम रस की बात कही है- से किं तं भंते ! मुत्तिणं मग्गे ? गोयमा ! इह खलु मुत्तिमग्गे पढमं जीवा णाणं जणयइ तओ पच्छा जीवा आसवदाराइं पिहेइ पिहित्ता झाणं झियायइ, से णं मुत्तिमग्गे पण्णत्ते । से किं तं भंते ! णाणिणो पवुच्चइ ? गोयमा ! जे जीवा णाणे भावे वट्टंति ते जीवा णाणिणो वुच्चंति ।

हे भगवन् ! मुक्ति मार्ग क्या है ? हे गौतम ! इस जिनशासन में

पहले जीव, ज्ञान प्राप्त करता हैं, बाद में जीव आश्रवद्वारों को रोकता है, फिर ध्यान ध्याता है, यही मुक्तिमार्ग कहा गया है अर्थात् मोक्ष प्राप्ति का क्रम है । हे भगवन् ! ज्ञानी कौन है ? हे गौतम ! जो जीव ज्ञान भाव में वर्तते हैं वे जीव ज्ञानी कहे जाते हैं ।

इस प्रकार जैन दर्शन का मर्म-सार यहाँ कह दिया कि जीव पहले आत्मा और कर्म, जीव और पुद्गल आदि द्रव्यों का ज्ञान करे आत्मा की विविध अवस्थाओं को और लोक स्वरूप को तथा कर्मबंध के स्वरूप को समझ कर फिर कर्माश्रवों का त्याग करे आत्मा को भारी बनाने रूप आश्रवों को छोडे और फिर आत्मा को कर्मभार से हलका बनाने के लिये तप ध्यान आदि उच्च साधनाओं में लीन बने । यों साधना करते करते जीव एक दिन आत्मा को संपूर्ण कर्मों से मुक्त बना कर शाश्वत आत्मसुखों में लीन तल्लीन बन जावें।

समुत्थान सूत्र का संक्षिप्त विषय परिचय – प्रथम उद्देशक में भगवान महावीर स्वामी के शिष्य परिवार सहित राजगृही नगरी के गुणशील उद्यान में पधारने का वर्णन है। दूसरे उद्देशक में दीक्षा प्रदाता प्रव्रज्याचार्य और बडी दीक्षा प्रदाता उपस्थापनाचार्य का तथा वाचनाचार्य और उद्देशनाचार्य का वर्णन है। तीसरे उद्देशक में दीक्षा संबंधी विवरण है जिसमें गृहस्थ धर्म और साधु धर्म दोनों प्रकार की दीक्षा का वर्णन है। चौथे उद्देशक में साधु जीवन की दिनचर्या और रात्रिचर्या का खुलाशा पूर्वक वर्णन है। पाँचवें उद्देशक में साधु जीवन और श्रावक जीवन के छह आवश्यक कर्तव्यों का सुंदर वर्णन है। छट्ठे उद्देशक में आवश्यक के भाव दर्शायें है। सामान्य भाषा में कहे तो प्रतिक्रमण के माध्यम रूप अतिचारों का विशिष्ट पद्धति से संकलन हुआ है। सातवें उद्देशक में कालभाव दर्शन अर्थात् पाँचवे आरे में जिन शासन की स्थिति का दिग्दर्शन कराया है। आठवें उद्देशक में अनशन विधि का विगतवार निर्देश हुआ है। इस उद्देशक के अंत में उपसंहार वाक्य आगमिक भाषा में निक्षेप वचन है कि यह आगम वर्णन सर्व जीवों को हितकारी, सुखकारी एवं कल्याणकारी तथा परभव में साथ चलने वाला है अर्थात् यह समुत्थान सूत्र ३२ आगमों की तरह ही आत्मोत्थान करने वाला है । इस शास्त्र में जैन दर्शन के अनेक अप्रगट तत्त्वों का प्रगटीकरण बडे ही रोचक ढंग से हुआ है तथा स्थानकवासी धर्म का अर्थात् मौलिक आगम परंपराओं का मार्मिक निरूपण हुआ है।

–मुकुन्दराय ई. पारेख, गोंडल (M.A.B.ED)

विषयानुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ
	उद्देशक – १	
१	राजगृही में भगवान का पदार्पण	१७
२	अरिहंत दर्शन वंदना का फल	१७
	उद्देशक – २	
३	गौतम स्वामी की जिज्ञासा	१९
४	चार प्रकार के आचार्य तथा प्रयोजन	२०
५	चार प्रकार के आचार्य दूसरे प्रकार से;	२१
	समाधान स्वीकृति	२२
	उद्देशक – ३	
६	दीक्षा विधि	२४
७	मुँहपत्ति	२५
८	रजोहरण	२५
९	समकित गुण धारणा	३०
१०	अप्रमाद का उपदेश	३४
११	उपस्थापनाचार्य के कार्य	३५
१२	श्रुतज्ञान	३८
१३	वाचना- अर्थ-परमार्थ ज्ञान	२२,४०
१४	ज्ञान वांचणी के प्रयोजन	४०
१५	पुरुष चौभंगी	४१
१६	दीक्षा के अयोग्य- तीन	४३
१७	वाचणी के अयोग्य-योग्य	४३
१८	दीक्षा के उपकरणों की प्राप्ति	४३
१९	श्रावक धर्म धारणा	४५
२०	समकित धारणा विधि	४६
	उद्देशक – ४	
२१	समाचारी-दिवस-रात्रि संबंधी	४९

क्रम	विषय	पृष्ठ
	उद्देशक – ५	
२२	छ आवश्यक विधि सहित	५५
२३	प्रियंकर की परिभाषा	५७
२४	प्रतिक्रमण का लाभ	६२
२५	पाँच प्रकार के प्रतिक्रमण (देवसिक आदि)	६५
२६	छ प्रकार के प्रतिक्रमण (उच्चार प्रतिक्रमण आदि)	६५
२७	तीर्थ भ्रमण से अकल्याण	६६
२८	चार सम्यक् तीर्थ की सेवाभक्ति से कल्याण	६६
२९	अतिचारों की शुद्धि से मोक्ष	६७
	उद्देशक – ६	
३०	श्रुत ज्ञान के अतिचार	७०
३१	समकित के अतिचार	७०
३२	चारित्र के अतिचार	७१
३३	स्वलिंग–मुँहपत्ति के ५ अतिचार	८१
३४	द्रव्यलिंग–भंडोपकरण के ५ अतिचार	८१
३५	रात्रि भोजन के ६ अतिचार	८५
३६	आठ पडवाली मुँहपत्ति	८९
३७	प्रश्नव्याकरण सूत्र के १० अध्ययन	९३
३८	उसके प्रथम उपमा अध्ययन के १० उद्देशक	९३
३९	२८ लब्धि के नाम	११७
४०	तप स्वरूप व उसके १४ अतिचार	१२६
४१	६ आवश्यक का स्वरूप	१२९
४२	१० महाप्रत्याख्यान	१३८
४३	चारित्र के तीन पद (अन्य तरह के)	१४०
४४	तीन प्रकार की सामायिक	१४४
४५	पंच परमेष्टी उत्कीर्तन भेद–प्रभेद	१४४

क्रम	विषय	पृष्ठ
४६	तीर्थंकर (अरिहंत) उत्कीर्तन	१४८
४७	विहरमान उत्कीर्तना	१५०
४८	जीव अजीव उत्कीर्तन	१५४
४९	शेष ५ आवश्यक	१५५
५०	समकित के तीन प्रकार	१५९
५१	ब्राह्मीलिपि के तीन प्रकार	१६०
५२	द्रव्यलिंग तीन	१६२
५३	साधु के तीन प्रकार (कल्प)	१६३
५४	काल–तीन	१६४
५५	तीन तीन के बोल	१६५
५६	श्रमणोपासक अधिकार	१६६
५७	बारह व्रत और अतिचार	१६८
५८	तप के पुनः १४ अतिचार	१७४
५९	संलेखना विधि विस्तार	१७५
६०	६ बोल संग्रह मुँहपत्ति आदि के	१७७
६१	नमस्कार मंत्र के पाँच प्रकार	१७९
६२	विद्या के प्रकार	१८०
६३	नमस्कार मंत्र स्मरण फल	१८३
	उद्देशक – ७	
६४	पाँचवें आरे में जिनशासन	१८६
६५	निर्ग्रंथों के कल्प्याकल्प्य	१९१
६६	पाँच ईश्वर–पाँचपरमेष्टी	१९५
६७	आत्मार्थी अनात्मार्थी के लाभ-हानि	२००
	उद्देशक – ८	
६८	अनसन विधि	२०४
६९	उपसंहार	२०६

क्रम	विषय	पृष्ठ
७०	**परिशिष्ट–१** इस सूत्र के विशिष्ट विषय	२०८
७१	**परिशिष्ट–२** तपाराधना एवं अतिचार	२११
७२	**परिशिष्ट–३** श्रावक–साधु के कुल अतिचार	२१२
७३	**परिशिष्ट–४** विद्वानों से ऐतिहासिक प्रश्न	२१३
७४	**परिशिष्ट–५** विशिष्ट निबंध संग्रह (बारह)	२२०
७५	**परिशिष्ट–६** अति निम्न दर्जे की चोरी	२५७
७५	**परिशिष्ट–६** महानिशीथ और कल्पसूत्र में क्या	२५८
७६	**परिशिष्ट–७** आगम संख्या विचारणा	२६०
७७	**परिशिष्ट–८** सूत्रों के नामों में परिवर्तन	२६७
७७	**परिशिष्ट–८** चोरासी आगम मान्यता परिवर्तन	२६९
७७	**परिशिष्ट–८** प्रकीर्णक १० और १३ में मतांतर	२७३,७४
७८	**परिशिष्ट–९** विहरमान नाम तुलना	२७६
७९	**परिशिष्ट–१०** मुनि कल्याणविजयजी के विचार	२७७
८०	**परिशिष्ट–११** अपनों से अपनी बात	२७९
८१	**परिशिष्ट–१२** नक्षत्र आकार तारे	२८०
८२	**परिशिष्ट–१३** तीर्थंकर २४ के पूर्वभव	२८२
८३	**परिशिष्ट–१४** निक्षेप नय स्याद्वाद	२८५
८४	**परिशिष्ट–१५** प्रकीर्णकों की कसौटी	२९४
	कोटेशन – १ सिद्धायतन प्रक्षेप–मेरु पर्वत	१८
	कोटेशन – २ वास्तविक आगम ३७ उपलब्ध	२३
	कोटेशन – ३ प्रकीर्णक पाठ प्रक्षेप – नंदी में	४८
	कोटेशन – ४ बत्तीस आगम वास्तव में २७ ही है	५४
	कोटेशन – ५ मैत्री भाव प्रेरणा	६९
	कोटेशन – ६ मूर्ति पूजकों की आगम मान्यता	१८५
	कोटेशन – ७ संज्वलन कषाय की मर्यादा	२०३
	कोटेशन – ८ वैज्ञानिक बनने की आवश्यकता नहीं	२५९
	कोटेशन – ९ आगम अमृतरस और विज्ञान	२७२
	कोटेशन – १० जैसी दे वैसी मिले	२७३
	कोटेशन – ११ स्वदोष दर्शन प्रेरणा	२८४
	कोटेशन – १२ महा वैज्ञानिक और वैज्ञानिक	२९३
	कोटेशन – १३ अनुकंपा महत्त्व	२९५

उद्देशक– १ : उत्थानिका (नगर प्रवेश)

समवसरण तथा धर्मोपदेश :–

[१] तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णामं णयरे होत्था– वण्णओ। रिद्धित्थिमिए समिद्धे । सेणीए णामं राया । गुणसीलए चेइए जहा विवाह पण्णत्तीए ।

भावार्थ :– उस काल उस समय अवसर्पिणी काल के दु:खमा सुखमी आरा के समय राजगृही नामक नगरी थी । उसका वर्णन औपपातिक सूत्रानुसार जानना । संक्षेप में वह नगरी रिद्धि संपन्न और समृद्ध थी। श्रेणिक राजा वहाँ राज्य करता था । उस नगरी में गुणशील नामक उद्यान था । उसका वर्णन भगवती सूत्रानुसार जानना ।

[२] तेणं कालेणं समएणं समणे भगवं महावीरे चउद्दसेहिं समण सहस्सेहिं छत्तीसाए अज्जिया सहस्सेहिं सपरिवारेहिं गामाणुगामं दुइज्जमाणे सुहं सुहेणं विहरमाणे जेणेव रायगिहे णामं णयरे होत्था जेणेव गुणसीलए चेइए तेणेव समोसढ़े । पुढवीसिला पट्टए पुरत्थाभि–मुहे णिसण्णे।

भावार्थ :– उस समय भगवान महावीर स्वामी अपने १४००० श्रमण तथा ३६००० श्रमणियों के परिवार से ग्रामानुग्राम विहार करते हुए, सुखपूर्वक विचरण करते हुए, राजगृही नगरी के गुणशील बगीचे में पधारे तथा पृथ्वीशिला पट्टक पर(स्फटिक सिंहासन पर) पूर्व दिशा में मुँह रखकर विराजमान हुए ।

[३] तत्थ णं रायगिहे णयरे संघाडग तिग चउक्क चच्चर *जाव* जणसद्दे यावि होत्था– एवं खलु समणे भगवं महावीरे रायगिह णयरस्स बहिया गुणसीलए चेइए *जाव* समोसढ़े। तं महाफलं खलु देवाणुप्पिया तहारूवाणं अरिहंताणं भगवंताणं णामगोयस्स वि सवणयाए किंमग पुण अभिगमण वंदण णमंसण *जाव* अट्ठस्स धारणयाए *जाव* एग दिसाभिमुहे णिगच्छंति ।

भावार्थ :– उस राजगृही के तिराहे, चौराहे, श्रृंगाटक एवं अनेक रस्ते मिलने के स्थानों में आते-जाते जनसमूह में परस्पर यह वार्ता चल रही थी कि राजगृही नगरी के बाहर गुणशील बगीचे में श्रमण

भगवान महावीर स्वामी पधारे हैं । हे देवानुप्रियों ! तथारूप अरिहंत भगवान के नाम गोत्र सुनने से भी महाफल की प्राप्ति होती है तो फिर भगवान की सेवा में पहुँचकर वंदन-नमस्कार, सेवा-भक्ति कर कुछ उपदेश श्रवण करने का तो कहना ही क्या ? अर्थात् इच्छितार्थ की प्राप्ति होती है ऐसा, विचार कर जिधर भगवान महावीर स्वामी विराज रहे हैं उस तरफ दर्शन करने जा रहे हैं ।

[४] तएणं सेणिए णामं राया एवामेवं कहा लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठे *जाव* कोडुंबिए पुरिसे सद्दावेइ सद्दावेत्ता एवं वयासी– एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम हत्थिरयणं पडिकप्पेह, चउरंगिणीए सेणं सज्जावेह । एवं जहा दसासुयखंधे तहा णिग्गओ *जाव* धम्मकहा भाणियव्वा । परिसा पडिगया राया वि गओ ।

भावार्थ :– दर्शन करने जा रहे नगरजनों के द्वारा श्रेणिक राजा ने भगवान के पधारने की बात जानी एवं हर्षित आनंदित होकर अपने सेवकों को बुलाकर कहा कि हे देवानुप्रियों ! मेरे हस्तिरत्न और चतुरंगिणी सेना को तैयार करो । यों दशाश्रुतस्कंध सूत्र दशा(अध्ययन) १० के अनुसार भगवान के दर्शन वंदन करने निकले, धर्मोपदेश सुना । समस्त प्रजा भी उपदेश सुन कर अपने घर गई, राजा भी उपदेश सुनकर वापिस गया ।

[५] इच्चेवं समुट्ठाण सुयस्स णगरपवेसिओ णामयं पढमो उद्देसो हियं सुहं खमं णिस्सेयसं आणुगामियं ते सव्व जीवाणं भविस्सइ ।

भावार्थ :– इस प्रकार समुत्थान सूत्र का नगर प्रवेश नामक प्रथम उद्देशक सर्व जीवों के लिये हितकारी, सुखकारी, सामर्थ्यकारी कल्याणकारी होने से परभव के लिये सुखरूप साथ जाने वाला है ।

सिद्धायतनों के प्रक्षेप की बुद्धि में मूर्तिपूजकों ने मेरु पर्वत के मालिक देव का निवास स्थान गायब कर दिया है जो आज किसी भी आगम में नहीं मिलता है । वास्तव में मेरु पर्वत की चूलिका पर उसके मालिक देव का भवन था, उसे हटाकर वहाँ सिद्धायतन रख दिया गया है । जिससे उस मालिक देव को आकाश में निराधार कर दिया गया है ।

उद्देशक - २ : पृच्छा तथा वागरणा

गौतम स्वामी की जिज्ञासा :–

[१] तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई नामं अणगारे पगइभद्दए, पगइ मउए, पगइ विणीए, पगइए पयणु-कोह-माण-माया-लोभे एवं जहा भगवईए *जाव* संखित्त-विउल-तेउल्लेसे छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं जाणु अहो सिरे झाण कोट्ठोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विरहइ ।

तत्थ णं गोयमस्स झाणम्मि वट्टमाणस्स णं जायसड्ढे *जाव* समुप्पण्णे उट्ठेइ उट्ठित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ करेत्ता वंदइ नमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता *जाव* पज्जुवासमाणे एवं वयासी– कई विहेणं भंते! आयरिया पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि आयरिया पण्णत्ता तंजहा– पव्वावणायरिए णामेगे णो उवट्ठावणायरिए, उवट्ठावणायरिए णामेगे णो पव्वावणायरिए, एगे पव्वावणायरिए वि उवट्ठावणायरिए वि, एगे णो पव्वावणायरिए णो उवट्ठावणायरिए; धम्मायरिए ।

भावार्थ :– उस काल उस समय में भगवान महावीर स्वामी के प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति नामक अणगार, जो कि प्रकृति से भद्र, कौमल, विनीत एवं स्वाभाविक ही अल्पकषायी, तनुकषायी बने हैं यों भगवती सूत्र अनुसार गुणों के धारक, विपुल एवं संक्षिप्त करी है तेजो लेश्या लब्धि को जिन्होंने ऐसे, बेले-बेले की तपस्या करने वाले उकडु आसन में ध्यान, संयम, तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण कर रहे थे, विराज रहे थे ।

उस समय ध्यान में रहे गौतम स्वामी को श्रद्धापूर्वक प्रश्न पूछने की इच्छा होने से अपने स्थान से उठकर जहाँ भगवान विराजमान थे वहाँ आये और भगवान को उनके दाहिने कान से उपर अंजली ले जाते हुए तीन आवर्तन(प्रदक्षिणा) करते हुए वंदन नमस्कार सेवा-भक्ति करते हुए पूछा– हे भगवन् ! आचार्य कितने प्रकार के होते हैं ?

हे गौतम ! आचार्य चार प्रकार के कहे गये हैं अर्थात् चौभंगी

इस प्रकार है- (१) कोई प्रव्रज्याचार्य होते हैं किंतु उपस्थापनाचार्य नहीं होते है । (२) कोई उपस्थापनाचार्य होते है किंतु प्रव्रज्याचार्य नहीं होते है । (३) कोई दोनों दीक्षा देने वाले होते हैं और (४) कोई दोनों दीक्षा देने वाले नहीं होते, मात्र धर्माचार्य होते हैं ।

विवेचन :- गौतमस्वामी अपने आवश्यक कार्यों के सिवाय चिंतन मनन रूप ध्यान में ही लगे रहते थे ऐसा इन पाठों से ज्ञात होता है और जब भी कोई प्रश्न-जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती तब तत्काल भगवान के निकट पहुँच कर शंका का समाधान कर लेते थे ।

चार प्रकार के आचार्य का प्रयोजन :-

[२] जण्णं भंते ! पव्वावणायरिए णो उवट्ठावणायरिए ति, से णं भंते ! किं पओएहिं पव्वावणायरिए पवुच्चइ ? गोयमा ! पव्वावणायरिए से आयरिये सामाइय चरित्तं पडिवज्जावेइ णो छेओवट्ठावणं चरित्तं दलेइ, तेणट्ठेणं गोयमा ! णो उवट्ठावणायरिए, पव्वावणायरिए पवुच्चइ ।

जण्णं गोयमा ! छेओवट्ठावणं चरित्तं दलइ णो सामाइय चरित्तं पडिवज्जावेइ से उवट्ठावणायरिए णो पव्वावणायरिए । जण्णं गोयमा ! सामाइय चरित्तं वि दलेइ छेओवट्ठावणं वि दलेइ से णं पव्वावणायरिए वि उवट्ठावणायरिए वि । जण्णं णो सामाइयं चरित्तं दलेइ णो छेदोवट्ठावणं चरित्तं पडिवज्जावेइ से णं णो पव्वावणायरिए णो उवट्ठावणायरिए; धम्मायरिए ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! जो प्रव्रज्याचार्य है उपस्थापनाचार्य नहीं है वे प्रव्रज्याचार्य क्यों है ? हे गौतम ! वे (१) प्रव्रज्या-नई दीक्षा देने वाले है अर्थात् सामायिक चारित्र देने वाले हैं किंतु बडी दीक्षा-छेदोपस्थापनीय चारित्र देने वाले नहीं है। इसलिये वे आचार्य प्रव्रज्याचार्य हैं, उपस्थापनाचार्य नहीं कहे जाते हैं। (२) इसीतरह जो आचार्य बडी दीक्षा दे और नई दीक्षा नहीं दे वे उपस्थापनाचार्य कहे गये हैं प्रव्रज्याचार्य नहीं कहे गये हैं । (३) इसी तरह जो दोनों दीक्षा देने वाले है वे प्रव्रज्याचार्य एवं उपस्थापनाचार्य यों दोनों कहे गये हैं और जो (४) दोनों प्रकार की दीक्षा नहीं देने वाले हैं वे प्रव्रज्याचार्य एवं उपस्थापनाचार्य दोनों ही नहीं हैं, धर्म में जोडने वाले एवं मदद करने वाले होने से मात्र धर्माचार्य कहे गये हैं ।

विवेचन :- एक गच्छ में एक आचार्य भी होते हैं और अनेक आचार्य भी होते हैं । वे दीक्षा देने के लिये समस्त योग्यता संपन्न होते हैं । यहाँ व्यक्तिगत श्रमण की अपेक्षा चौभंगी समझना । इसलिये किसी श्रमण को कोई आचार्य दीक्षा देने वाला हो और बडी दीक्षा देने वाला अन्य आचार्य हो तो एक श्रमण की अपेक्षा प्रव्रज्याचार्य और उपस्थापनाचार्य होने या न होने संबंधी यह चौभंगी बनती है । योग्यता तो प्रत्येक आचार्य में सभी तरह की होती ही है तभी वह आचार्य कहा जाता है ।

दूसरी तरह से चार आचार्य :-

[३] कइविहेणं भंते ! आयरिया पण्णत्ता ? गोयमा ! चत्तारि आयरिया पण्णत्ता, तंजहा- उद्देसणायरिए णामेगे णो वायणायरिए, वायणायरिए णामेगे णो उद्देसणायरिए, एगे उद्देसणायरिए वि वायणायरिए वि, एगे णो उद्देसणायरिए णो वायणायरिए; धम्मायरिए ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! आचार्य कितने प्रकार के कहे गये हैं? हे गौतम! आचार्य चार प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं- (१) कोई उद्देशनाचार्य होते हैं वाचनाचार्य नहीं होते । (२) कोई वाचनाचार्य होते हैं किंतु उद्देशनाचार्य नहीं होते (३) कोई दोनों होते हैं (४) कोई दोनों ही नहीं होते, मात्र धर्माचार्य होते हैं ।

[४] जण्णं भंते ! उद्देसणायरिए णो वायणायरिए, से किं तं पवुच्चइ ? गोयमा ! जण्णं उद्देसणा करेइ, णो वायणा दलेइ से उद्देसणायरिए णो वायणायरिए। जण्णं वायणा दलेइ, णो उद्देसणा करेइ, से वायणायरिए णो उद्देसणायरिए । जण्णं उद्देसणा वि करेइ वायणा वि दलेइ से उद्देसणायरिए वि, वायणायरिए वि । जण्णं णो उद्देसणा करेइ णो वायणा दलेइ से णो उद्देसणायरिए णो वायणायरिए; धम्मायरिए ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! कोई उद्देशनाचार्य होते हैं वाचनाचार्य नहीं होते, इसका क्या मतलब है ? हे गौतम ! (१) जो मूल पाठ पढाते हैं किंतु अर्थ परमार्थ नहीं देते, इसलिये वे उद्देशनाचार्य होते हैं वाचनाचार्य नहीं होते । (२) जो अर्थ परमार्थ पढाते हैं मूल पाठ नहीं पढाते हैं वे वाचनाचार्य कहे जाते हैं उद्देशनाचार्य नहीं होते । (३) जो मूल पाठ भी पढाते हैं और अर्थ परमार्थ भी समझाते हैं वे

उद्देशनाचार्य वाचनाचार्य दोनों होते हैं और (४) जो दोनों ही नहीं पढाते है अर्थात् जो मात्र धर्म में जोडते है, मदद करते है, पढाते नहीं है, वें उद्देशनाचार्य वाचनाचार्य नहीं कहे जाते, मात्र धर्माचार्य कहे जाते हैं ।

[५] से किं तं भंते! उद्देसणा ? गोयमा ! जण्णं नाण-दंसण- चरित्त-तवेसु भुज्जो-भुज्जो पडिबोहेज्जा उज्जुमणेणं उवएसं करेज्जा, णो वायणावेइ से णं उद्देसणायरिए । सेवं भंते ! सेवं भंते! *जाव* संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे सुहं सुहेणं विरहइ ।

भावार्थ :– हे भगवन् ! उद्देशना किसको कहते है ? हे गौतम! जो ज्ञान दर्शन चारित्र तप में बारंबार जागृत करे, सरल मन से आदेश–निर्देश करे, मूल पाठ का उच्चारण करावे परंतु विस्तार से अर्थ–परमार्थ नहीं समझावे वे उद्देशना करने वाले उद्देशनाचार्य हैं, वाचनाचार्य नहीं हैं। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, यह इसी प्रकार है अर्थात् आपने जो फरमाया है वह सत्य है और मुझे समझ में आ गया है। इस प्रकार विनय से प्रभु के भावों को विनयपूर्वक स्वीकार कर गौतम स्वामी अपने ज्ञान दर्शन चारित्र एवं तप सयम में आत्मा को भावित करते हुए सुखपूर्वक विचरते हैं ।

[६] इच्चेयं समुट्ठाण सुयस्स पण्हाइ पुच्छवागरणाइं णामयं बीओ उद्देसो हियं सुहं खमं णिस्सेयसं आणुगामियं ते सव्व जीवाणं भविस्सइ ।

भावार्थ :– इस प्रकार समुत्थान सूत्र का पृच्छा और वागरणा नामक यह दूसरा उद्देशक सर्व जीवों के लिये हितकारी सुखकारी क्षेमकारी एवं कल्याणकारी है तथा परभव में साथ चलने वाला है ।

विवेचन :– यहाँ वाचनाचार्य और उद्देशनाचार्य की चौभंगी करके पृच्छा की गई है । वाचनाचार्य का अर्थ है– सूत्र, अर्थ और विस्तार शिष्य की योग्यता अनुसार सर्व प्रकार की वाचना देने वाले। उद्देशना–चार्य केवल मूल पाठ को कंठस्थ कराने वाले एवं हितशिक्षा सूचना, आदेश-निर्देश करके प्राथमिक अभ्यास का ध्यान रखने वाले ।

इस प्रकार की ये चौभंगियाँ व्यवहार सूत्र में भी आई है । वहाँ पर भी इस संबंधी विवेचन किया गया है । वह विवेचन ब्यावर से प्रकाशित युवाचार्य मधुकर मुनिजी की संपादित प्रसिद्ध बत्तीसी

में देखा जा सकता है । खमं = इस शब्द को खमं और खेमं दो रूपों में समझाया गया है। (१) खमं = क्षमाकारी, सामर्थ्य उत्पन्न करने वाला (२) खेमं = क्षेमकारी। इस शब्द के पहले हियं, सुहं दो शब्द है और बाद में णिस्सेयसं शब्द है । जिसका अर्थ है– हितकारी, सुखकारी, और कल्याणकारी है तो उसके बीच में आने वाला शब्द खेमं = क्षेमकारी होना प्रासंगिक लगता है ।

★ ★ ★ ★ ★

उपलब्ध स्वीकार्य वास्तविक आगम–३७ :–

नंदी सूत्रोक्त ७३ आगमों में से वर्तमान में प्रकाशित उपलब्ध और वास्तविक आगम ३७ है वे इस प्रकार है–

(१ से १२) आवश्यक सूत्र सहित ११ अंग सूत्र । (१३ से १७) उववाई सूत्र से प्रज्ञापना तक एवं जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति। (१८) ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति (सूर्य–चंद्र प्रज्ञप्ति नाम तो कल्पित बनाये हुए हैं) तथा सच्चाई के लिये अनेक शास्त्रों में ये नाम प्रक्षेप किये हैं । (१९) उपांगसूत्र (निरयावलिकादि ५ तो उसके वर्ग–विभाग हैं) (२० से २३) चार छेदसूत्र (२४ से २७) चार मूलसूत्र (२८) समुत्थान सूत्र (२९) ऋषिभाषित सूत्र (३०) देवेन्द्रस्तव सूत्र (३१) तंदुलवैतालिक सूत्र (३२) चंद्रावैद्यक सूत्र (३३) गणिविद्या सूत्र (३४) आत्मविशोधि सूत्र (इस सूत्र का अर्थ अप्रकाशित है मूलपाठ प्रकाशित मिलता है।) (३५) आतुरप्रत्याख्यान सूत्र (३६) महा प्रत्याख्यान सूत्र (३७) द्वीपसागर प्रज्ञप्ति सूत्र ।

क्रमांक २८ से ३७ तक कुल १० आगम स्थानकवासी और तेरापंथी जैन समाज अपनी ३२ की आगम संख्या में नहीं स्वीकारते है किन्तु ये १० आगम निर्दोष एवं पवित्र शास्त्र है ।

उद्देशक- ३ प्रव्रज्या

प्रव्रज्या का वेश धारण :-

[१] पव्वावणायरिए भंते ! केवामेवं पव्वावेइ ? गोयमा! सोभणंसि तिहि णक्खत्त मुहुत्त करण जोगेसु पव्वावणायरिए पव्वावेइ, गोयमा! पवज्जाणं पुण विहि उवदंसेमि समणाउसो! पवज्जाणं समएणं सिस्से पढमं तिक्खुत्तो सद्धं सव्वं निग्गंथाणं वंदेज्जा, णमंसेज्जा तओ पच्छा एगे कडिबंधणं धारित्तए (चोलपट्टए धारित्तए) एगे उरबंधणं धारेज्जा तओ पच्छा गोयमा! सलिंगे मुहपत्तिं मुहेण सद्धिं बंधेज्जा । मुहपत्तिणं भंते! किं पमाणे? गोयमा ! मुहपमाणे मुहपत्तिं । मुहपत्ति णं भंते ! केण वत्थस्स कडे ? गोयमा! एगं वि सेयं वत्थस्स णं अट्ठपडलाए मुहपत्तिं करेह ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! दीक्षा-प्रव्रज्या किस प्रकार दी जाती है ? हे गौतम ! प्रव्रज्याचार्य शुभ तिथी, नक्षत्र, मुहूर्त, करण, योग देखकर शिष्य को दीक्षा देते हैं । हे आयुष्यमान श्रमण ! अब प्रव्रज्या की विधि कहता हूँ ।

दीक्षा के समय शिष्य तिक्खुत्तो के पाठ से श्रमणों को वंदन नमस्कार करे । फिर सर्व प्रथम चोलपट्टक धारण करे फिर गाती-चादर धारण करे । उसके बाद हे गौतम ! स्वलिंग रूप मुखवस्त्रिका मुख पर बांधे। हे भगवन् ! मुखवस्त्रिका का प्रमाण क्या है ? हे गौतम! अपने मुख के नाप की अर्थात् मुख अच्छी तरह ढंक जाय उस प्रमाण की मुँहपत्ति होती है । हे भगवन् ! मुँहपत्ति कैसे वस्त्र की करनी चाहिए? गौतम ! श्वेत वस्त्र की एवं आठ पडवाली, सांधा-जोड रहित मुख प्रमाण मुँहपत्ति बनानी चाहिये ।

[२] कस्सट्ठे णं भंते ! मुहपत्ति णं अट्ठपडलाइं ? गोयमा! अट्ठकम्मं दहणट्ठे, एग कण्णेण दुच्चे कण्णे पमाणं दोरेण सद्धिं बंधेह। मुहपत्ति णं भंते ! के अट्ठे ? गोयमा ! जण्णं मुहस्स अंते सया वट्टइ से तेणट्ठेणं मुहपत्ति । कस्सट्ठे भंते ! मुहपत्तिं मुहसद्धिं बंधेइ ? गोयमा ! मुहपत्तिं बंधेइ सलिंग वाउ जीव रक्खणट्ठे ।

जइ णं भंते ! मुहपत्ति वाउजीव रक्खणट्ठाए, ते किं

सुहुमं वाउकाय जीव रक्खणट्ठाए वा बायर वाउकाय ? गोयमा! णो ति सुहमं वाउकाय जीव रक्खणट्ठाए, बायर वाउकाय जीव रक्खणट्ठाए। अविसेसं एवं ते सव्वे वि अरिहंता पव्वुच्चंति । से केणट्ठेण भंते ! बायर वाउ जीवकायाणं वि सुहुमं नाम धिज्जा ? गोयमा ! अदिस्सइ मंसचक्खूणा, तेणट्ठेणं सुहुमाइं नाम धिज्जाइं । अण्णत्थ रयहरणं जीव रक्खणं उवगरणं वि, णो उवही ।

मुहपत्तिं मुहे बंधे, वाउ जीवस्स रक्खणे ।
तस्सट्ठे मुहपत्तिं, अरिहंता सलिंग भासइ ॥

मुहपत्ति सलिंगे *जाव* विणयमूल धम्मरूवं मुहसद्धिं बंधित्ता तओ पच्छा रयहरणं पायकेसरिया कक्खे दलेइ दलइत्ता करमज्झे पायबंधणं दलेइ, जं वत्थंतो पायाइं ठवित्ता बंधेइ ते पाय बंधणं वत्थं पवुच्चइ । एवं पायठवणं वि, एवं सव्वोवहीयं विण्णाएयव्वा ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! आठ पडवाली मुँहपत्ति क्यों होती है? हे गौतम ! आठ कर्मों का नाश करने के लिये एक कान से दूसरे कान तक डोरे से युक्त मुँहपत्ति मुख पर बाँधनी चाहिये । हे भगवन्! मुँहपत्ति का क्या अर्थ है ? हे गौतम ! जो सदा मुख के पास रहे वह मुँहपत्ति कही जाती है । हे भगवन् ! मुँहपत्ति मुख पर क्यों बांधी जाती है ? हे गौतम ! साधुलिंग के वास्ते तथा वायुकाय के जीवों की रक्षा के लिये ।

हे भगवन् ! मुँहपत्ति वायुजीवों की रक्षा के लिये मुँह पर बांधी जाती है तो क्या सूक्ष्म वायुकाय जीवों की रक्षा के लिये या बादर वायु जीवों की रक्षा के लिये ? हे गौतम ! सूक्ष्म वायु जीवों की रक्षा के लिये नहीं परंतु बादर वायुजीवों की रक्षा के लिये अर्थात् मुख से निकलते शब्दों के वेग से उत्पन्न होने वाली वायु के द्वारा बाहर रहे बादर वायु जीवों की रक्षा के लिये मुँह पर मुखवस्त्रिका बांधी जाती है । ऐसा सभी तीर्थंकरों ने एक समान कथन किया है।

हे भगवन् ! बादर वायु जीवों को भी सूक्ष्म क्यों कहा जाता है ? हे गौतम ! वह बादर वायुकाय चर्मचक्षु से ग्राह्य नहीं होने से सूक्ष्म कही जाती है । स्वलिंग में मुँहपत्ति आदि उपकरण कहे हैं, रजोहरण भी मुनि लिंग और जीव रक्षा का उपकरण है, उपधि नहीं

है अर्थात् वह भी शरीर रक्षार्थ नहीं है संयम रक्षार्थ उपकरण है ।

गाथार्थ– मुँहपत्ति वायु जीवों की रक्षार्थ मुख पर बांधी जाती है । इसीलिये तीर्थंकरों ने इसे साधु लिंग का उपकरण कहा है ।

इस प्रकार दीक्षा विधि में स्वलिंग रूप और विनयमूल धर्म रूप मुँहपत्ति मुख पर बांधने के बाद रजोहरण और पूंजणी काख में रखे जाते हैं । फिर हाथ में झोली देकर उसमें पात्र बांधकर हाथ में रखे। फिर अन्य भी पात्र के उपकरण और सर्व उपधि देना जान लेना चाहिये ।

विवेचन :– इस उद्देशक में दीक्षा की अर्थात् सामायिक चारित्र देने की विधि में साधु वेश एवं उपकरणों का कथन किया गया है । जिसमें क्रमशः चोलपट्टक, चद्दर, मुँहपत्ति, रजोहरण, पात्र एवं पात्र के उपकरण तथा समस्त उपधि कही गई है ।

मुखवस्त्रिका– इसका वर्णन अनेक आगमों में आता है परंतु यहाँ दीक्षा विधि के प्रसंग से इसका विशेष स्पष्टीकरण मूल पाठ में किया गया है तदनुसार आठ पडवाली सफेद वस्त्र की मुँहपत्ति डोरे सहित मुख पर बांधने का मूल पाठ में स्पष्ट कथन है । (जब से जैन संतों ने मुँहपत्ति मुँह पर बांधना बंध कर दिया तब से इस शास्त्र को गुप्त रखा जाने लगा और लोकाशाह की क्रान्ति के बाद तो इसे पूर्ण विलुप्त ही कर दिया गया । जिससे आज बडे-बडे हस्तलिखित भंडारों में भी इस शास्त्र की प्रत नहीं मिलती है तथा नंदीसूत्र की आगम सूची के मूल पाठ में इस सूत्र का नाम होते हुए भी आज४५ और ८४ आगम की लिस्ट में से इसे निकाल दिया गया है ।)

मुखवस्त्रिका के नाप का यहाँ स्पष्ट कथन नहीं करके 'मुख प्रमाण' इतना ही कहा गया है । अन्य ग्रंथों में मुँहपत्ति की चौडाई १६ अंगुल की कही है उसके आधार से परंपरा में लंबाई २१ अंगुल की कही जाती है क्योंकि चौडाई से लंबाई अधिक ही होती हैं । जो १६ × २१ अंगुल करने पर आठ पडवाली मुख प्रमाण मुँहपत्ति व्यवस्थित बनती है ।

प्रश्न : प्रव्रज्या का क्या अर्थ है और वह क्यों ग्रहण की जाती है?

उत्तर : प्रव्रज्या– प्र + व्रज–गतौ = विशेष गति अर्थात् आत्मा की

विशेष गति, प्रगति करने की अवस्था–साधना जो हो उसे प्रव्रज्या कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि विशेष आत्म उन्नति के लिये स्वीकार की जाने वाली अवस्था–साधना को प्रव्रज्या कहा जाता है। यों संसार से विरक्त और आत्माभिमुख बना साधक आत्म विकास में अर्थात् आत्मा के मौलिक गुणों में निखार लाने के लिये जिस साधना को स्वीकार करे वह प्रव्रज्या कही जाती है। प्रव्रज्या ग्रहण करने का मुख्य उद्देश्य है कि चिरकाल से संसाराभिमुख गति करने वाली आत्मा को मानव भव और ज्ञान दशा प्राप्त होने पर मोक्षाभिमुख प्रगति करने की साधना में जीवन भर के लिये जोड देना, एक मात्र आत्म विकास की साधना में कटिबद्ध हो जाना।

दीक्षा पाठ विधि :–

[३] तओ पच्छा आयरियाणं वंदेह नमंसेह पुरत्थाभिमुहे पंजलीउडे चिट्ठेह, पुणो एवं वएज्जा– भंते ! मए सामाइयं चरित्तं पडिवज्जावेह। से आयरिए एवं वएज्जा– देवाणुप्पिया एगं णमोक्कारमंतं भणेह । तओ पच्छा ईरियावहियाए अवर नामे गमणागमणे आलोयणा सुत्तं भणेह ।

भावार्थ :– उसके बाद शिष्य आचार्य को वंदन नमस्कार कर पूर्व दिशा में मुख करके दोनों हाथ जोड कर खडा रह कर यों बोले– हे भगवन् ! मुझे सामायिक चारित्र ग्रहण करावो । तब आचार्य कहे– हे देवानुप्रिय ! एक नवकार मंत्र बोलो और उसके बाद ईर्यावहि–गमनागमन आलोचना सूत्र बोलो ।

[४] तओ पच्छा तस्स उत्तरी करणेणं *जाव* अप्पाणं वोसिरामि, जहा गुरु भणावेइ तहा सीसे भणेज्जा, तओ पच्छा आयरिए एवं वएज्जा– देवाणुप्पिया ! चउ उक्कीत्तणत्थवं झाणओ भणियव्वो, सीसं तहा भणेज्जा अहवा सव्व साहु वि जण्णं सामाइयं चरित्तं समए उवट्ठिए से वि ईरियावहियाए भणिज्जा, झाणागारे वा तस्स उत्तरी *जाव* अप्पाणं वोसिरामि भणिज्जा भणित्ता काउसग्गं करेह चउविसत्थेणं ।

भावार्थ :– उसके बाद तस्सउत्तरी का पाठ अप्पाणं वोसिरामि तक बोले अथवा गुरु बोलावे वैसे शिष्य बोले । उसके बाद आचार्य कहे कि हे देवानुप्रिय ! चार लोगस्स का ध्यान करो अथवा उस समय

दीक्षा स्थान पर जो भी उपस्थित श्रमण हों वे सभी इरियावहि, तस्स उत्तरी ***यावत्*** वोसिरामि बोल कर लोगस्स का कायोत्सर्ग करे ।

[५] तओ पच्छा साहु वि सिस्से वि काउस्सग्गं णमोक्कारेण पारित्ता फुडं एगं चउविसत्थे भणिज्जा, तओ पच्छा सेहो एवं वएज्जा- भंते! मम सामाइयं चरित्तं पडिवज्जावेह ? आयरिए भणेज्जा- हंता पडिवज्जावेमि ।

भावार्थ :- उसके बाद शिष्य एवं अन्य साधु आदि नमस्कार बोल कर कायोत्सर्ग पाले, फिर प्रकट में लोगस्स बोले । फिर शिष्य यों निवेदन करे- हे भगवन् ! मुझे सामायिक चारित्र अंगीकार कराओ। आचार्य बोले- हाँ कराता हूँ ।

[६] तओ पच्छा आयरिए एवं सामाइयचरित्तं पडिवज्जावेह- तं करेसि सामाइयं सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खेइ जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं न करिस्सइ न कारवेस्सइ करंत्तं पि अण्णं ण समणुजाणेस्सइ मणसा, वयसा, कायसा तस्स भंते ! पडिकम्मेह निंदेह, गरिहेह अप्पाणं वोसिरेह ।

भावार्थ :- उसके बाद आचार्य इस प्रकार बोल कर सामायिक चारित्र ग्रहण करावे- तूँ सामायिक चरित्र स्वीकार कर, सामायिक अर्थात् सर्व सावध योग का त्याग, जीवनपर्यंत तीन करण, तीन योग से पाप कार्यों को करे नहीं, करावे नहीं, करने वालों का अनुमोदन करे नहीं, मन से, वचन से और काया से तथा पहले किये पापों का प्रतिक्रमण करे तथा आत्मा एवं गुरु की साक्षी से अपनी पाप आत्मा की निंदा करे और उन पापों से आत्मा को दूर करे ।

[७] सिस्से एवं वएज्जा- करेमि भंते ! सामाइयं सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं ण करेमि ण कारवेमि, करंतं पि अण्णं ण समणुजाणामि मणसा वयसा कायसा तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।

भावार्थ :- इस तरह गुरु के द्वारा बोलने पर शिष्य पुनः उच्चारण करे- हे भगवन् ! मैं सामायिक ग्रहण करता हूँ अर्थात् संपूर्ण सावद्य-पाप कार्यों का प्रत्याख्यान करता हूँ, जीवनपर्यंत तीन करण, तीन योग से पाप कार्य करूँगा नहीं, कराउँगा नहीं और पाप कार्य करने वालों

का अनुमोदन भी करूँगा नहीं, मन से, वचन से और काया से । हे भगवन् ! पूर्व के पापों का प्रतिक्रमण करता हूँ, गुरु एवं आत्मा की साक्षी से मेरी कषाय आत्मा की निंदा गर्हा करते हुए पूर्व पापों से निवृत्त होता हूँ ।

[८] तओ पच्छा सामाइयं चरित्तं पडिवण्णा सव्वे णिग्गंथा वा णिग्गंथी वा थवथुइ मंगले अवर णामे णमोत्थुणं भणेज्जा, तओ पच्छा आयरिए संघ मज्झे समत्तगुणधारणा णामयं सुत्तं सवणं करावेह ।

भावार्थ :- यों सामायिक चरित्र स्वीकार करने के बाद सभी साधु -साध्वी आदि णमोत्थुणं-स्तव स्तुति मंगल पाठ का उच्चारण करे । उसके बाद आचार्य सकल चतुर्विध संघ समक्ष समकित गुण धारणा नामक पाठ का श्रवण करावे ।

विवेचन :- सामायिक चारित्र भाव मंगल की अपेक्षा स्वयं ही शुभ मंगलकारी है फिर भी **लौकिक व्यवहारार्थ आचार्य शुभ दिन मुहूर्त देखकर दीक्षा तिथि तय करे तो वह अयोग्य नहीं है** जिसकी यहाँ आज्ञा सूचित की गई है । क्यों कि द्रव्य-भाव-व्यवहार ये सभी अपने-अपने स्थान पर अपेक्षा से योग्य होते हैं । एकांत कोई आग्रह नहीं रखना चाहिये ।

दीक्षा की विधि भी यहाँ संक्षेप में कही फिर भी वह अति उपयोगी और उपकारक है । परंपरा में कोई पहले इरियावहि का काउसग्ग करके फिर ४ लोगस्स का कायोत्सर्ग करते हैं । यहाँ एक कायोत्सर्ग के सिवाय और कोई कायोत्सर्ग करने का कथन नहीं है तथापि प्रचलित परंपरानुसार यथायोग्य समन्वय कर लेना चाहिये । ३२ आगमों में कायोत्सर्ग में लोगस्स गिनने का कथन कहीं पर भी नहीं है, केवल प्रगट में ही लोगस्स का कथन आता है- दशवैकालिक अध्य. ५ तथा उत्तराध्ययन अध्य. २६ में । परंतु इस शास्त्र में यहाँ दीक्षा विधि के पाठ में ४ लोगस्स, कायोत्सर्ग में करने का स्पष्ट मूल पाठ में विधान है । यह इस सूत्र की ३२ शास्त्रों से अपनी एक अलग महत्ता है ।

इस सूत्र को पढने के पहले मैंने अनेक जगह आगम सारांश आदि पुस्तकों में यही संकेत दिया है कि ३२ आगम देखते लोगस्स

कभी काउसग्ग में नहीं गिना जाता, प्रगट में ही बोला जाता है। जो काउस्सग्ग में लोगस्स गिनने की परंपरा देखी जाती है वह आगमा-धारित (३२ आगम की अपेक्षा) नहीं है । **किंतु इस आगम से कायोत्सर्ग में लोगस्स गिनना भी प्रमाणित हो रहा है । इस प्रकार यह आगम इस परंपरा को बल देने वाला है । इसे पाकर सभी परंपरा प्रेमी प्रसन्नता का अनुभव करेंगे ।**

करेमि भंते का पाठ भी पहले आचार्य उच्चारण करके फिर शिष्य से भी उच्चारण कराते हैं । आचार्य उच्चारण करते समय मध्यम पुरुष की क्रिया बोलते है यथा- पच्चक्खेह, वोसिरेह और शिष्य उत्तम पुरुष की क्रिया बोलता है यथा- पच्चक्खामि, वोसिरामि।

कदाचित् परिषद के लोग भी स्वर में स्वर मिलाने या प्रमाद उडाने दीक्षार्थी के साथ उच्चारण कर सकते हैं, ऐसा भी यहाँ पाठ में संकेत है ।

समकित गुण धारणा :-

[९] णमो अरिहंताणं इसीझईणं च सिद्धाणं च अरिहंता चउविसंपि सलिंगी तित्थयराणं उसभं *जाव* वद्धमाणं च महावीर पज्जवसाणाणं। इणमेव निग्गंथं पावयणं सच्चं अणुत्तरं अरिहंताणं पण्णत्तं णेआउयं संसुद्धं सल्लगत्तणं, सिद्धिमग्गं, मुत्तिमग्गं, णिज्जाणमग्गं णिव्वाणमग्गं अवितहमविसंधि सव्व-दुक्खप्पहीणमग्गं ।

इत्थं ठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करंति, तं धम्मं सद्दहंति पत्तियंति रोयंति फासेंति पालेंति अणुपालेंति । तं धम्मं सद्दहंतो पत्तियंतो रोयंतो फासंतो पालंतो अणुपालंतो तस्स धम्मस्स अरिहंत पण्णत्तस्स णं अब्भुट्ठयंति आराहणाए, विरयंति विराहणाए ।

अण्णाणं परियाणमंति णाणं उवसंपज्जंति, मिच्छादंसणं परियाणामंति समदंसणं उवसंपज्जंति, अचरित्तं परियाणामंति चरित्तं उवसंपज्जंति, अवयं परियाणामंति वयं उवसंपज्जंति, असंजमं परियाणामंति संजमं उवसंपज्जंति । अबंभं परियाणामंति बंभं उवसं पज्जंति, अधम्मं परियाणामंति धम्मं उवसंपज्जंति, उमग्गं परियाणामंति

मग्गं उवसंपज्जंति, पावं परियाणामंति अपावं उवसंपज्जंति, अकप्पं परियाणामंति कप्पं उवसंपज्जंति, कुपडिरूवं परियाणामंति पडिरूवं उवसंपज्जंति, णो दव्वलिंगं परियाणामंति दव्वलिंगं उवसंपज्जंति ।

अकिरियं परियाणामंति किरियं उवसंपज्जंति, अबोहिं परिया-णामंति बोहिं उवसंपज्जंति, जं संभरंति जं च ण संभरंति जं पडिक्कमंति जं च ण पडिक्कमंति तस्स सव्वस्स कालियस्स पावाइं कम्माइं कओ ते पडिक्कमंति । समणे संजय विरय पडिहय पच्चक्खाय पावकम्मे अणियाणो दिट्ठिसंपण्णो मायामोस विवज्जओ ।

अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु, पण्णरस्स कम्मभूमीसु, जावंति केई आयरियोवज्झाय साहू मुहे मुहपत्ति रयहरणं गोच्छगं वत्थ पडिग्गहधरा णाण दंसण चरित्त पंच महव्वय धरा अट्ठारस्स-सहस्स-सीलंग-रहधरा संपयावुड्ढी अक्खयायार तवसा ते सव्वे सिरसा मणसा मत्थएणं वंदंति ।

एयाइं भगवओ सक्खाओ आलोयंति णिंदंति गरिहयंति दुगंच्छियंति ते सव्वाइं पावकम्माइं तिविहेण पडिक्कमंति । तओ पच्छा वंदंति अरिहंत सिद्ध जिण चउवीसं, एवं सवणं करावेइ ।

तओ पच्छा सीसे वि एवं भणेज्जा- णमो अरिहंताणं इसीज्झईणं च सिद्धाणं च अरिहंत चउवीसंपि सलिंगी तित्थयराणं उसभाई वद्धमाणं च महावीरं पज्जवसाणाणं *जाव* वंदामि अरिहंत सिद्धं जिण चउवीसं एवं भणित्तए सिस्से । तओ पच्छा सीसे सव्वं णिग्गंथाणं वंदेज्जा णमंसेज्जा एवामेवं णिग्गंथा वि णायव्वा ।

भावार्थ :- ऋषिध्वज-रजोहरण रखने वाले अरिहंत भगवान को नमस्कार तथा सिद्धों को और २४ तीर्थंकरों को जो कि स्वलिंगी, ऐसे श्री ऋषभदेव भगवान से लेकर महावीर स्वामी तक सभी को नमस्कार हो । उन भगवंतों द्वारा फरमाया हुआ यह निर्ग्रंथ प्रवचन सत्य है, अनुत्तर-श्रेष्ठ है, न्यायपूर्ण है, पूर्ण शुद्ध-निष्कलंक है। माया, निदान और मिथ्यात्व रूप शल्य को काटने वाला है । सिद्ध होने का मार्ग है, कर्मों से मुक्त होने का मार्ग है, संसार से पार होने का मार्ग है, परम शांत-शीतल होने का मार्ग है, दोष एवं विसंगतता से रहित है, सर्व दुखों का अंत करने वाला मार्ग है । इस जिन मार्ग में स्थित जीव सिद्ध होते हैं, सर्वज्ञानी होते हैं, मुक्त

होते हैं, परम निर्वाण को अर्थात् शांति को प्राप्त होते हैं, सर्व दुःखों का अंत करते हैं ।

ऐसे इस वीतराग धर्म की जो श्रद्धा, प्रतीति, रुचि करता है, स्पर्शना, पालना, अनुपालना-निरंतर पालना करता है । वे इस धर्म की श्रद्धा प्रतीति रुचि स्पर्शना पालना अनुपालना करते हुए- (१) इस अरिहंत कथित धर्म की आराधना में उपस्थित होते हैं और विराधना से निवृत्त होते हैं, अलग होते हैं । (२) अज्ञान को छोडते हैं, ज्ञान को धारण करते हैं । (३) मिथ्यात्व का त्याग करते हैं, सम्यक्त्व को धारण करते हैं । (४) अचारित्र का त्याग करते हैं, चारित्र को स्वीकार करते हैं । (५) अव्रत का त्याग करते हैं, व्रतों को धारण करते हैं । (६) असंयम का त्याग करते हैं, संयम को धारण करते हैं (७) अब्रह्मचर्य का त्याग करते हैं, ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं । (८) अधर्म का त्याग करते हैं धर्म को धारण करते हैं । (९) पाप का त्याग करते हैं और अपाप-निष्पाप अवस्था को धारण करते हैं, (१०) अकल्पनीय(आगम निषिद्ध प्रवृत्तियों) का त्याग करते हैं और कल्पनीय(आगम निर्दिष्ट-आगमोक्त प्रवृत्तियों)को स्वीकार करते हैं । (११) गलत का त्याग करते हैं, सत्य का स्वीकार करते हैं, (१२) कुलिंग का त्याग करते हैं, सुलिंग को धारण करते हैं । (१३) अकिरिया का त्याग करते हैं, किरिया को धारण करते हैं । (१४) अबोधि का त्याग करते हैं, बोधि को धारण करते हैं । (१५) कुमार्ग का त्याग करते हैं, सुमार्ग को स्वीकार करते हैं ।

जो कुछ स्मृति में आया अथवा नहीं आया, जिसका प्रतिक्रमण किया या नहीं किया, उन सब दिवस संबंधी त्रिकाल संबंधी किये हुए पाप कर्मों का प्रतिक्रमण करते हैं । वे श्रमण है, संत हैं, विरत हैं, पापकर्मों के त्यागी है, निदान रहित, दृष्टि संपन्न है, माया मृषावाद का त्याग करने वाले हैं ।

ऐसे ढाई द्वीप के १५ कर्मभूमि क्षेत्र में जितने भी आचार्य, उपाध्याय, साधु हैं जो मुख पर मुँहपत्ति एवं रजोहरण, गोच्छग, वस्त्र-पात्र धारण करने वाले हैं, ज्ञान दर्शन चारित्र के धारक, पंच महाव्रतधारी, अठारह हजार शीलांग गुणों को धारण करने वाले हैं,

संयम संपदा की वृद्धि करने वाले, अखंड आचार तप से युक्त हैं, ऐसे उन सभी आचार्य, उपाध्याय साधुओं को शिरसा मणसा-मस्तक झुकाकर भाव सहित वंदना करता हूँ ।

उन भगवंतों की साक्षी से सभी पाप कर्मों की आलोचना, निंदा गर्हा करते हैं । उनसे निवृत्त होते हैं, त्रिविध प्रतिक्रमण करते हैं और अरिहंत सिद्ध २४ तीर्थंकरों को वंदना करते हैं । इस प्रकार आलोचना सबको सुनाते हैं । इसके बाद शिष्य भी इस तरह पूरा उच्चारण करता है । फिर सभी निर्ग्रंथों को वंदना करता है । इस प्रकार वह निर्ग्रंथ कहा जाता है अथवा फिर अन्य निर्ग्रंथ भी गुरु को वंदन करते हैं ।

विवेचन :- यह सम्यक्त्व धारण का संपूर्ण पाठ आवश्यक सूत्र में आता है । यहाँ दीक्षा प्रसंग से नवदीक्षित और समस्त परिषद की जिनशासन के प्रति और श्रमणों के प्रति श्रद्धा भक्ति में विशेष वृद्धि हों इसलिये यह सुनाया जाता है । इससे समकित स्वरूप का ज्ञान भी मिलता है एवं श्रद्धा में पुष्टि होती है । यहाँ के पाठ में साधु के लिये जो अंतिम विशेषण हैं उसमें मुँहपत्ति सहित रजोहरण, गोच्छग का कथन है तथा प्रारंभ के पाठ में तीर्थंकरों के लिये भी रजोहरण एवं स्वलिंग-साधुलिंग का कथन है, यह नई बात है । आवश्यक के पाठ में से और हमारे प्रचलित **णमो चोवीसए** के पाठ में से मुखवस्त्रिका का शब्द कभी लिपिदोष से छूट गया संभव है । जिसे सुधारा जा सकता है क्योंकि मुँहपत्ति साधुलिंग के पहिचान का मुख्य अंग है और इसके होने में किसी को कोई एतराज भी नहीं है। असंयम वगैरह १० शब्दों की जगह यहाँ १४ शब्द हैं ऐसा फर्क वाचनांतर में हो सकता है जो नगण्य है । आगम तात्पर्य से सभी तीर्थंकर स्वलिंग सिद्धों में आते है। अतः यहाँ उन्हें स्वलिंगी स्पष्ट रूप से कहा है जो आगम सम्मत है। ऋषभदेव भगवान आदि १०८ जीव एक समय में एक साथ उत्कृष्ट सिद्ध हुए हैं । १०८ संख्या में सिद्ध स्वलिंग में ही होते है । अतः तीर्थंकरों को स्वलिंगी कहना आगमोचित है इसमें कोई संदेह नहीं है। तीर्थंकरों को आगम में स्वलिंग सिद्ध कहा है उन्हे मुँहपति रजोहरण रहित मानना अलिंग है क्योंकि मात्र जन्मजात जैसा अचेल रहना कोई लिंग नहीं होता है।

समर्थ समाधान अनुसार पूज्य बहुश्रुत समर्थमलजी म.सा.ने कहा था कि **नमो चोवीसाए** के पाठ में किसी पुस्तक में मुँहपत्ति का शब्द मिले तो वह स्वीकार्य है और बहुत जरूरी भी है। तदनुसार इस शास्त्र के उपरोक्त मूल पाठ में मुँहपत्ति शब्द का प्रयोग स्वाभाविक ही मिल रहा है।

दीक्षा विधि के अनंतर शिक्षा :-

[१०] तओ पच्छा पव्वावणायरिए एवं वएज्जा- देवाणुप्पिया जयणा सद्धिं गंतव्वं एवं चिट्ठियव्वं एवं निसीयव्वं एवं तुयट्टियव्वं एवं भुंजियव्वं एवं भासियव्वं एवं उट्ठेइ उट्ठइत्ता पाणेहिं भूएहिं जीवेहिं सत्तेहिं संजमेणं संजमियव्वं, अस्सिं च अट्ठे णो किंचि वि पमाएयव्वं। तओ पच्छा सिस्से तहत्ति करेइ तहामेवं उवएसं समं पडिवज्जेइ । तहा गच्छइ *जाव* अस्सिं च णं अट्ठे णो किंचि वि पमायं करेइ ।

भावार्थ :- फिर प्रव्राजनाचार्य इस प्रकार कहते हैं- हे देवानुप्रिये ! संयमी को यतनापूर्वक गमन करना चाहिये, उसी तरह खडे रहना, बैठना, सोना, बोलना, आहार करना आदि सभी क्रियाएँ यतना से विवेक युक्त करनी चाहिये तथा संयम में सावधानी रखते हुए प्राणी, भूत, जीव, सत्वों की दया पालनी चाहिये तथा संयम कार्य में किंचित भी आलस-प्रमाद नहीं करना चाहिए । इस प्रकार गुरु जो भी उपदेश दे उसे शिष्य **तहत्ति** बोलकर सम्यक् प्रकार से स्वीकार करे और तदनुसार ही सर्व कार्य करे अर्थात् यतना पूर्वक चले, बैठे ***यावत्*** संयम कार्यों में किंचित भी प्रमाद नहीं करे ।

[११] तओ से अणगारे जाए, केवामेवं अणगारे ? इरियासमिए, भासासमिए, एसणासमिए, आयाणभंडमत्तोवगरणो-वहियाई णिक्खेवणा समिए, उच्चार पासवण खेल सिंघाण जल्लमल पारिठावणिया समिए, मणसमिए, वयसमिए, कायसमिए *जाव* अणगार गुण संजुत्ते जाए ।

भावार्थ :- गुरु फिर फरमाते हैं कि इस प्रकार शिष्य अणगार बन जाता है । वह किन गुणों का धारक बन जाता है ? तो कहते है कि वह शिष्य संयम पालन करते हुए- ईर्या समितिवंत, भाषा समितिवंत, एसणा समितिवंत, आदान-निक्षेप समितिवंत तथा लघुनीत बडीनीत

श्लेष्म आदि परठने में समितिवंत एवं मन, वचन, काया से भी समितिवंत वगैरह संयम के सर्व गुणों से युक्त साधु हो जाता है ।

विवेचन :- दीक्षा ग्रहण करने के बाद साधक का लक्ष्य और विवेक अत्यंत जागृत हो जाता है, उसे अपने को संयमवान समझकर हर कार्य-प्रवृत्ति करना होता है । सदा याद रखना होता है कि अब मैं गृहस्थ नहीं हूँ, संयम के नियमों में उपस्थित हूँ, मेरा बोलना, चलना पूर्ण संयमित भगवान की आज्ञा अनुसार रहे, मेरी किसी भी प्रवृत्ति के अविवेक से किसी भी प्राणी को, छकाय के जीवों को कष्ट नहीं होवे वैसा निरंतर ध्यान रखना है । सभी समिति, गुप्ति, महाव्रतों का ध्यान रखना है । इस प्रकार करते हुए, सावधान रहते हुए वह सच्चे अर्थ में गुणों से संपन्न और सत्य रूप में अणगार कहलाने योग्य बनता है ।

दीक्षार्थी की उपधि :-

[१२] गोयमा ! निग्गंथस्स णं तप्पढमयाए संपव्वयमाणस्स कप्पइ मुहपत्तिं वा रयहरणं सुत्तं गोच्छगं पडिग्गहमायाय तिहिं कसिणेहिं वत्थेहिं आयाय संपव्वइत्तए । अवसेसं जहा कप्पे ।

भावार्थ :- निर्ग्रंथ को दीक्षित होने के समय प्रथम जो उपधि कल्पती है वह कहते हैं- मुखवस्त्रिका, रजोहरण, डोरा, गोच्छग पात्र तथा तीन अखंड वस्त्र प्रमाण(७२ हाथ) वस्त्र ग्रहण कर दीक्षित होना कल्पता है । शेष बृहत्कल्प सूत्र के समान समझना । क्योंकि यह संपूर्ण सूत्र बृहत्कल्प सूत्र उद्देशक-३ में आया है । अतः तत्संबंधी सारा विवेचन वहाँ से जानना ।

पांच महाव्रतारोपण(उपस्थापना) विधि :-

[१३] उवट्ठावणायरिए णं भंते ! किं करेइ ? कइ विहेणं भंते! सेह भूमिए ? गोयमा ! उवट्ठावणायरिए सामाइय चरित्ते पच्छा पंचमहव्वए छट्ठं रत्तिं च भोयणं सपडिकम्मणं आरोवणं करेइ ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! उपस्थापनाचार्य क्या करते हैं ? और शेक्ष काल कितने प्रकार का होता है ? हे गौतम ! उपस्थापनाचार्य सामायिक चारित्र लेने के बाद यथासमय पाँच महाव्रत और छट्ठा रात्रिभोजन विरमण व्रत तथा सप्रतिक्रमण धर्म की आरोपणा करते हैं

अर्थात् स्पष्टीकरण सहित महाव्रत आदि अंगीकार कराते हैं । इसे बडी दीक्षा या उपस्थापना कहते हैं । प्रथम और अंतिम तीर्थंकर के शासन में इस प्रकार पुनः बडी दीक्षा स्पष्टीकरण पूर्वक दी जाती है।

[१४]गोयमा ! तओ सेह भूमीओ पण्णत्ताओ तंजहा- उक्कोसा, मज्झिमा, जहण्णा । उक्कोसा छमासा, मज्झिमा चउमासा, जहण्णा सत्त राइंदियाइं । तओ पच्छा उवट्ठावणं करेज्जा ।

अहवा गोयमा ! आयरिय-उवज्झाए सरमाणे वा असरमाणे वा परं दसराय कप्पाओ कप्पागं भिक्खुं णो उवट्ठावेइ कप्पाए, अत्थियाइं से केइ माणणिज्जे, णत्थियाइं से केइ छेए वा परिहारे वा, णत्थियाइं से केइ माणणिज्जे कप्पाए, से छेए वा परिहारे वा; *जाव* संवच्छरं तस्स तप्पत्तियं णो कप्पइ आयरियत्तं वा *जाव* गणावच्छेइयत्तं वा उद्देसित्तए वा धारित्तए वा ।

भावार्थ :- तीन शैक्ष भूमि कही गई है अर्थात् नवदीक्षित के बडी दीक्षा की अपेक्षा तीन मर्यादा काल कहे हैं- उत्कृष्ट छ महीना, मध्यम चार महीना और जघन्य ७ रात्रि दिवस । तदनुसार नवदीक्षित को बड़ी दीक्षा जघन्य समय के पहले और उत्कृष्ट समय के बाद में नहीं दी जाती है ।

हे गौतम ! आचार्य-उपाध्याय नवदीक्षित का शेक्षकाल अर्थात् सात दिन रात पूर्ण होने के बाद, उसकी योग्यता पूर्ण हो जाने पर भी ४-५ दिन के अंदर बडी दीक्षा नहीं दे, उसमें कोई सामान्य कारण हो या नहीं हो अर्थात् स्मृति दोष आदि हो जाय तो भी आचार्यादि को प्रायश्चित्त आता है । विशेष कारण कोई माननीय पूज्यनीय वडील आदि का हो तो प्रायश्चित्त नहीं आता है । अन्यथा छेद या तप प्रायश्चित्त आता है ***यावत्*** उत्कृष्ट १ वर्ष तक पद मुक्ति का भी प्रायश्चित्त आता है अर्थात् वे उस गलती-भूल के कारण एक वर्ष अपने पद पर नहीं रह सकते ।

[१५] उवट्ठावणस्स णं भंते ! आरोवणस्स कालं किण्हं भावेण जाणेइ? गोयमा ! जहा साहु सडावस्स य णं भावं जाणित्ता भवइ ते कालस्स उवट्ठाणारोवणं णायव्वो, अवसेसं जहा ववहारे ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! नव दीक्षित बडी दीक्षा के योग्य हो गया

है, यह कैसे जाना जाता है ? हे गौतम ! जिसने प्रतिक्रमण अर्थभाव सहित सीख लिया हो, संयम की दैनिक चर्या का सही अभ्यास कर लिया हो तो उसे बडी दीक्षा के योग्य समझना चाहिये, इत्यादि व्यवहार सूत्र अनुसार जान लेना ।

[१६] उवट्ठावणेणं भंते किं प्पगारे ? गोयमा ! जहा आयारे दसवेयालिए वा उट्ठाणसुए । तओ पच्छा विणएण सद्धिं वायणायरिय समीवे लोगुत्तरियं वेयं जाणेज्जा ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! उपस्थापना किस प्रकार होती है ? हे गौतम ! आचारांग, दशवैकालिक तथा उत्थानसूत्र के अनुसार जानना अर्थात् प्राचीन काल में आचारंग प्रथम अध्ययन से बडी दीक्षा दी जाती थी और अब दशवैकालिक सूत्र के चौथे अध्ययन से बड़ी दीक्षा दी जाती है अर्थात् उस पाठ में छकाय के जीवों का विस्तृत वर्णन एवं प्रत्याख्यान की प्रतिज्ञा का पाठ है ।

बडी दीक्षा के बाद शिष्य वाचनाचार्य के पास विनय पूर्वक लोकोत्तर आगमों का अध्ययन करे ।

विवेचन :- आगमानुसार नवदीक्षित साधु का जघन्य शैक्षकाल सात अहोरात्र का है उसके बाद उसे योग्य होने पर कभी भी बडी दीक्षा दी जा सकती है । उत्कृष्ट छ महीने के अंदर बडी दीक्षा दे दी जाती है । जघन्य और उत्कृष्ट कहने से यह स्पष्ट हो जाता है कि कम से कम सात दिन रात बीते बिना बड़ी दीक्षा नहीं दी जाती और उत्कृष्ट छ महीने के अंदर बडी दीक्षा दे दी जाती है अर्थात् छ महीने के बाद नहीं और सात दिन रात के पहले नहीं । **इस तरह जघन्य और उत्कृष्ट का सही भाव समझना चाहिये । खोटी परंपरा चलाने वाले अपनी नासमझी से दोष पात्र होते हैं और फिर खोटी प्ररूपणा का दुराग्रह करने पर बुद्धि का दुरूपयोग करके डबल पाप के भागी बनते हैं ।**

सात दिन रात के बाद जो नवदीक्षित साधु संपूर्ण बडी दीक्षा के योग्य हो जाय तो उसे आगमानुसार ४-५ दिन में बडी दीक्षा देना जरूरी होता है । ४-५ दिन की छूट आगमकार ने विशेष दृष्टि से दी है जिसमें- विहार, स्वास्थ्य की अनुकूलता, क्षेत्र की अनुकूलता,

स्वाध्याय अस्वाध्याय का योग, शुभ दिन वार आदि का संयोग भी देखा जा सकता है । ऐसा छूट का परंपरा अर्थ-रहस्यार्थ भाष्य-टीका से समझना चाहिये ।

नव दीक्षित के माता-पिता आदि वडील की दीक्षा आदि का कोई कारण हो तो बडी दीक्षा में विशेष विलंब किया जा सकता है अर्थात्- सात + चार-पाँच = ११-१२ दिन के बाद भी रोकने पर कोई प्रायश्चित्त नहीं आता है । जो उत्कृष्ट छ महिना तक पहुँच सकता है । यदि माता-पिता आदि वडील का कोई कारण नहीं हो तो योग्य बने नवदीक्षित की बडी दीक्षा में ७+४-५ = १२वें दिन का **उलंघन करने पर या हो जाने पर आचार्य-उपाध्याय को तप या छेद का यथोचित प्रायश्चित्त आता है और व्यवहार सूत्र अनुसार १७वीं रात्रि का उल्लंघन करने पर एक वर्ष के लिए पद मुक्ति का प्रायश्चित्त भी आता है ।** यह महत्त्व की बात गच्छ के समस्त वडीलों (पर्याय ज्येष्ठ साधु-साध्वी) को ध्यान रखने जैसी है।

बडी दीक्षा-उपस्थापना वर्तमान में दशवैकालिक सूत्र के छज्जीवनिकाय नामक चौथे अध्ययन से दी जाती है । क्योंकि उसमें ५ महाव्रत, ६ काया का स्वरूप विस्तार से दिया है और प्रतिज्ञा पाठ भी है अतः श्वेतांबर जैन समाज में यह एकमत से प्रवृत्ति चालू है । प्रश्न होता है कि दशवैकालिक सूत्र तो शय्यंभवाचार्य रचित है तो उनके पहले कैसे होता था ? इस प्रश्न का उत्तर परंपरा व्यवस्था आदि से यह प्राप्त होता है कि प्राचीन काल में आचारांग सूत्र के प्रथम अध्ययन के आधार से बड़ी दीक्षा दी जाती थी ।

बड़ी दीक्षा की योग्यता में नवदीक्षित को साधु प्रतिक्रमण अर्थ सहित तथा साधु चर्या की आवश्यक दैनिन्दिनी का अभ्यास हो जाय इत्यादि संयम गुण देखने चाहिये । तथा आगम कथित जघन्य शैक्षकाल सात रात-दिन का पूरा हो जाना चाहिये । तब उसे आगमानुसार यथासमय बडी दीक्षा दी जा सकती है ।

श्रुत अध्ययन :-

[१७] से किं तं भंते ! लोगुत्तरियं वेयं ? गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते तं जहा- मईणाणे *जाव* केवलणाणे, तम्मि सुयणाणं पहाणं। से केणट्ठेणं

भंते ? गोयमा ! परजीवे बोहणट्ठाए । गोयमा ! तस्स णं चत्तारि अणुओगा पण्णत्ता तंजहा- चरणकरणाणुओगे, दव्वाणुओगे, गणणाणुओगे, धम्मकहाणओगे । तेणं अणुओगाणं दुवालसंगे गणीपिडए पण्णत्ता तंजहा- आयारो *जाव* दिट्ठीवाओ, एयं सव्व सुयं सुणेज्जा वा सव्व सुयं भणेज्जा, जहा विहि निसीहे ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! लोकोत्तरिक ज्ञान क्या है ? हे गौतम! वह ज्ञान पाँच प्रकार का है यथा- मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान । इसमें श्रुतज्ञान प्रधान है क्योंकि अन्य जीवों को बोध प्राप्त करने में श्रुत ज्ञान उपयोगी होता है ।

श्रुतज्ञान के चार अनुयोग कहे हैं यथा- (१) चरणकरणानुयोग (२) द्रव्यानुयोग (३) गणनानुयोग (४) धर्मकथानुयोग। इन अनुयोगों में १२ अंग रूप आचार्य का श्रुत भंडार कहा गया है यथा- आचारांग सूत्र ***यावत्*** दृष्टिवाद अंग । शिष्य क्रमशः यह संपूर्ण सूत्र सुने, अध्ययन करे, जो भी अध्ययन क्रम विधि निशीथ, व्यवहार सूत्र आदि में कही गई है तदनुसार अध्ययन करे । भंडार केवल रखने के लिए ही नहीं अपितु बाँटने के लिए भी होता है । वैसे ही आचार्य के श्रुतभंडार का ज्ञान शिष्यादि को वितरित करने के लिये होता है।

[१८] गोयमा ! बारस्सविहा भासा पण्णत्ता । से जहाणामए अद्ध मागहीए भासाए छव्विहा भासा पण्णत्ता तंजहा- पागया, सक्कया, सूरसेणी, पिसायई, अप्पभंस्सई, मागही । तेणं गज्जे वि, पज्जे वि एवं हवइ बारस्सविहि भासा। सोलस्स वयणे सम्मं पगारे सव्वं सिक्खेज्जा ।

भावार्थ :- भाषा बारह प्रकार की कही है अर्थात् अर्धमागधी भाषा में ६ भाषाएँ कही गई है यथा- प्राकृत, संस्कृत, सूरसेनी, पिशाची, अपभ्रंश और मागधी । ये छहों भाषा गद्यरूप भी होती है और पद्य रूप भी होती है । इसलिये भाषा के १२ प्रकार कहे हैं ।

शिष्य भाषा को जाने तथा १६ प्रकार के वचन होते हैं उन्हें भी सम्यक प्रकार से जाने, सीखे, परिचित करे ।

[१९] से णं भंते ! कस्सट्ठाए भणेज्जा ? गोयमा ! पंचहिं ठाणेहिं सुत्तं सिक्खेज्जा तं जहा- णाणट्ठाए, दंसणट्ठाए, तव-चरित्तट्ठाए,

वुग्गहं विमोयणट्ठाए, अहातच्चे भावे जाणिस्सामि ति कटटु । पंचहिं ठाणेहिं गोयमा ! वायणायरिए सुत्तं वाएज्जा तं जहा- संगहणट्ठयाए, उवग्गहट्ठाए, णिज्जरट्ठयाए, सुत्तं वा मे पज्जवजाया भविस्संति, सुत्तस्स वा अवोछिण्णट्ठयाए ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! यह सब क्यों सीखे ? हे गौतम ! १-३. ज्ञान दर्शन चारित्र के लिये, ४. वाद-विवाद अर्थात् ज्ञान चर्चा के लिये और क्लेश से छूटने, मुक्त होने के लिये, ५. यथार्थ भावों को जानने के लिये अध्ययन करना चाहिये ।

पाँच कारणों से वाचनाचार्य शिष्यों को अध्ययन कराते हैं यथा- १. शिष्यों के संग्रह के लिये अर्थात् जिनशासन में अनेक शिष्य सूत्रार्थ को धारण करने वाले हों, २. उपकारार्थ अर्थात् अध्ययन से शिष्य के जीवन में श्रुतज्ञान उपयोगी होगा, वह आहारादि ग्रहण करने में समर्थ बनेगा, ३. कर्मों की निर्जरा के लिये, ४. अपना भी सीखा ज्ञान दूसरों को पढाने से स्थिर रहता है, विस्मृत नहीं होता है, ५. पढाने से श्रुतज्ञान की परंपरा लंबे समय तक निरंतर चलती है जिससे जिनशासन में श्रुतज्ञान का विच्छेद नहीं होता है ।

[२०] गोयमा ! मए तिविहे धम्मे पण्णत्ते तंजहा- सुअहिज्जिए सुज्झाइए सुतवस्सिए । जया सुअहिज्जियं भवइ तया सुज्झाइयं भवइ, जया सुज्झाइयं भवइ तया सुतवस्सियं भवइ । से सुअहिज्झिए सुज्झाइए सुतवस्सिए सुयक्खाएणं मए धम्मे ।

भावार्थ :- हे गौतम ! मैने तीन प्रकार का धर्म कहा है- (१) सूत्रों को जानकर, गुरु का विनय कर, उनके पास से शास्त्रार्थ जाने एवं धारण करे, यह सुअध्ययन सूत्राधीत है । (२) शंका आदि रहित शास्त्र का अभ्यास करे, पूछकर समझे, यह सुध्यात, कहा जाता है (३) इहलोक परलोक की आकांक्षा रहित तप करे, यह सुतपधर्म है। जब सुअध्ययन होगा तभी सुध्यात होगा और जब सुध्यात होगा तभी सुतपस्वित होगा अर्थात् यथार्थ ज्ञान वृद्धि से सुध्यान और सुध्यान चिंतन मनन होने से सुआचरित सुतपस्वित श्रुत होता है । ऐसा यह तीन गुण युक्त धर्म मैंने निरूपण किया है ।

[२१] गोयमा ! णाण सीलाराहणं पडुच्च मए चत्तारि पुरिस जाया

पण्णत्ता तंजहा- सीलसंपण्णे णामं एगे णो सुयसंपण्णे, सुयसंपण्णे णामं एगे णो सीलसंपण्णे, एगे सीलसंपण्णे वि सुयसंपण्णे वि, एगे णो सीलसंपण्णे णो सुयसंपण्णे। तत्थणं जे से पढमे पुरिसजाए से णं पुरिसे सीलवं असुयवं, उवरए अविण्णाय धम्मे, एस णं गोयमा! पुरिसे मए देसाराहए पण्णत्ते । तत्थ णं जे से दोच्चे पुरिसजाए से णं पुरिसे असीलवं सुयवं, अणुवरए विण्णाय धम्मे, एस णं गोयमा ! पुरिसे मए देसविराहए पण्णत्ते । तत्थणं जे से तच्चे पुरिस जाए से णं पुरिसे, सीलवं सुयवं, उवरए विण्णाय धम्मे,एस णं गोयमा ! पुरिसे मए सव्वाराहए पण्णत्ते । तत्थ णं जे से चउत्थे पुरिसजाए से णं पुरिसे असीलवं असुयवं, अणुवरए अविण्णाय धम्मे, एस णं गोयमा ! पुरिसे मए सव्वविराहए पण्णत्ते । अवसेसं जहा विवाहपण्णत्तीए अट्ठमसए, दसमे उद्देसे । से तेणट्ठेणं गोयमा ! विणय सद्धिं णाणं सिक्खेज्जा ।

भावार्थ :- हे गौतम ! उत्कृष्ट ज्ञान, शील की आराधना करने वाले मैने चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा- (१)कोई पुरुष शील संपन्न होते है परंतु श्रुत संपन्न नहीं होते हैं। (२)कोई श्रुत संपन्न होते है परंतु शील संपन्न नहीं होते हैं।(३) कोई श्रुत संपन्न और शील संपन्न दोनों होते हैं और (४) कोई शील संपन्न भी नहीं होते और श्रुत संपन्न भी नहीं होते ।

इसमें हे गौतम ! जो (१) पहला पुरुष शीलवान किंतु शास्त्र जाने नहीं अर्थात् पाप से निवृत्त बने किंतु धर्म को समझे नहीं; ऐसा पुरुष देश आराधक कहा जाता है । (२) दूसरे प्रकार का पुरुष सूत्र का ज्ञाता है किंतु शील चारित्र बिना का है अर्थात् धर्म जाने किंतु पाप से निवृत्ति नहीं करे; ऐसा पुरुष देश विराधक कहा जाता है । (३) तीसरे प्रकार का पुरुष शीलवान और ज्ञाता दोनों है अर्थात् पाप से निवृत्त भी है धर्म को जानता भी है; ऐसा पुरुष सर्व आराधक कहा जाता है। (४) चौथा पुरुष शील एवं ज्ञान उभय से रहित है अर्थात् पाप से निवृत्त भी नहीं और धर्म समझे भी नहीं; ऐसा पुरुष सर्व विराधक होता है । यों श्री भगवती सूत्र शतक-८, उद्देशक-१०, अनुसार आराधक विराधक समझना । इसलिये हे शिष्य ! विनय सहित ज्ञान सीखो ।

[२२] से किण्हं भंते !गुणेहिं सुयणाणं ?गोयमा ! जेहिं जीवे जीवाजीव

वियाणिय तवं खंतिमहिंसियं विजाणइ वा वियरइ, तस्स णं गुणेहिं गोयमा! सुयणाणं पव्वुच्चइ ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! श्रुतज्ञान किस तरह गुणकारी होता है ? हे गौतम ! श्रुत ज्ञान से साधक जीव-अजीव को अच्छी तरह जानता है और जिससे क्षमा, अहिंसा आदि के महत्त्व को समझकर पालन कर सकता है । **इसलिये हे गौतम ! श्रुतज्ञान महान गुणकारी है ।**

[२३] से णं भंते ! के वा पुरिसे जे यावि णाणे आराहिए ? गोयमा! पुव्वावण्णगुणसंपण्णे सुयणाणं सुणमाणा, सुअहिज्जमाणा, ते पुरिसे णाणे आराहिए यावि भवइ ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! कौन ऐसे ज्ञान का आराधक होता है ? हे गौतम ! उपर कहे अनुसार जो गुण सहित सूत्र पढता है, सुनता है और सम्यक अध्ययन और आराधना करता है उसका ज्ञान आराधित कहा जाता है ।

विवेचन :- इन सूत्रों में ज्ञान का महत्त्व स्थापित किया गया है। जिससे शिष्य पूर्ण प्रेरणा पाकर ज्ञान की आराधना कर यथाशीघ्र बहुश्रुत बने, स्वयं ज्ञान सहित सम्यक् आराधना करे और अन्य जीवों को ज्ञान देकर जिनशासन की प्रभावना वृद्धि करे । अतः शिष्य को यथाक्रम से ग्यारह अंग का ज्ञान करना चाहिये अर्थात् जिस समय जो श्रुतज्ञान जिनशासन में उपलब्ध हो उस संपूर्ण श्रुत का ज्ञाता बने। ज्ञान के साथ जो अपने आचार की आराधना करे, उसी का इन सूत्रों में खास महत्त्व दर्शाया है और उसे ही सर्व आराधक होने का कहा है । **इसलिये दीक्षा लेकर शिष्यों को प्रथम कर्तव्य विनय सहित श्रुतज्ञान हासिल करने का पूर्ण पालन करना चाहिये ।** प्रारंभिक दीक्षा काल में जो ज्ञान की उत्कृष्ट आराधना कर लेता है उसका संयम विकास सर्व अपेक्षा से सफल गिना जाता है उसे स्वतः अन्य अनेक गुणों एवं कर्तव्यों का सहज सुंदर चांस मिल जाता है ।

श्रुत पढने के और पढाने के ५-५ अतिसुंदर हेतु भी इन सूत्रों में कहे हैं जो भावार्थ में स्पष्ट है । अर्धमागधी भाषा के निर्माण में रही ६ भाषाओं का खुलाशा है । तथा वचन भाषा संबंधी १६ बोलों की जानकारी भी शुद्ध बोलने के लिये जरूरी कही है वे इस सूत्र के

छट्ठे उद्देशक के १६ वें बोल में स्पष्ट रूप से दिये है । साधक उन्हें भी ध्यान से समझें।

प्रव्रज्या वाचना के योग्यायोग्य :-

[२४] तओ णो कप्पइ पव्वावित्तए, तंजहा- पंडए, वाइए कीवे। एवं णो मुंडावित्तए णो उवट्ठावित्तए णो संभुंजित्तए णो संवसित्तए ।

भावार्थ :- तीन को दीक्षा देना नहीं कल्पता है यथा जन्म से नपुंसक, विचारोदीपक वात रोगी और क्लीब को । अनजान से दीक्षा दी हो तो फिर बडी दीक्षा, मुंडन आदि कार्य करने नहीं कल्पते है एवं ज्ञात होते ही उसे मुक्त कर दिया जाता है ।

[२५] भंते! को वा अवायणिज्जे पण्णत्ते ? गोयमा ! तओ अवायणिज्जा पण्णत्ता तंजहा-अविणीए, विगइपडिबद्धे, अविओसविय पाहुडे ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! वाचना के अयोग्य कौन होते हैं ? हे गौतम! तीन व्यक्ति वाचना के अयोग्य होते हैं- अविनीत, विगय प्रतिबद्ध-विगयासक्त और क्लेश को नहीं मिटाने वाला अर्थात् क्लेश उपशांत नहीं करनेवाला, सदा क्लेशी व्यक्ति ।

[२६] भंते ! को वा वायणिज्जा ? गोयमा तओ कप्पंति वाइत्तए- विणीए, अविगइपडिबद्धे, विओसविय पाहुडे ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! वाचना के योग्य कौन होते हैं ? हे गौतम ! तीन व्यक्ति वाचना के योग्य होते हैं- विनीत, विगय त्यागी और क्लेश नहीं रखने वाला, नहीं करने वाला, उपशांत कषायी । कभी क्लेश हो जाय तो उसे पकडकर नहीं रखे, उपशांत हो जावे ।

[२७] से किं भंते ! पवयणकुसला सयमेवं वि पवज्जा गिण्हेज्जा? हंता गोयमा ! गिण्हेज्जा।

भावार्थ :- हे भगवन् ! कोई प्रवचन में कुशल-पारंगत व्यक्ति स्वयमेव दीक्षा ले सकता है ? हाँ गौतम ! ले सकता है ।

[२८] सलिंगोवगरण उवही भंडमत्ताइं भंते ! केवामेवं उप्पाएंति? गोयमा ! गामंसि वा णगरंसि वा जाव रायहाणिंसि वा सयमेवं वि करेह, अण्णेण वि करावेह । जे भवइ गहण अडवियंसि वा तस्स णं गाढागाढे कारणेहिं देवा वि दलयंति, अणाईकालेणं जीयाचारं

निच्चमेवं भवइ, देवाणं अयं भावणावि भवइ सलिंगोवगरण भंड-माइयाइं उवहि वि दलयंति, अहवा दढभावेणं जे भवइ जीवा तस्स णं देवा दलयंति। गोयमा ! केवलीणं सव्व ठाणे देवा दलयंति, जहा- भरहे राया । से तं साहु पवज्जा सामग्गियं ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! दीक्षार्थी को दीक्षा के साधुलिंग के उपकरण उपधि कैसे प्राप्त होते हैं ? हे गौतम ! ग्राम ***यावत्*** राजधानी में दीक्षार्थी स्वयं उपकरण-सामग्री प्राप्त करता है या अन्य से करवाता है । यदि कोई गहन अटवी वन प्रदेश में दीक्षा लेता है तो उसे ऐसी गाढ परिस्थिति में देवता भी लाकर देते हैं । ऐसा अनादि काल से कई देवताओं का जीताचार होता है । जिससे देवताओं को सहज भावना हो जाती है और वे साधुलिंग के उपकरण-पात्रादि कहीं से लाकर देते हैं । अथवा जो दृढ परिणामी और विशेषज्ञानी जीव होते हैं उन्हें देवता लाकर देते हैं अन्य हर किसी को नहीं देते । हे गौतम ! जिसे गृहस्थ लिंग या अन्यलिंग में केवलज्ञान हो गया हो तो उसे भी देवता साधु योग्य लिंग सामग्री देते हैं जैसे- भरत राजा को दिया । इस तरह यह साधु की दीक्षा सामग्री का कथन हुआ ।

विवेचन :- इन सूत्रों में वाचना तथा दीक्षा के योग्य अयोग्य का निर्देश है जिसका विवेचन व्यवहार सूत्र से जानना । विशेष में यहाँ स्वयं दीक्षा कौन ले सकते हैं, उसका सूचन किया है अर्थात् सामान्य व्यक्ति स्वयं दीक्षा नहीं ले सकता । विशिष्ट ज्ञानी, प्रत्येक बुद्ध, स्वयं बुद्ध, तीर्थंकर आदि ही स्वयं दीक्षा ले सकते हैं ।

उपकरणों के संबंध में बताया है कि दीक्षार्थी या उसके सहयोगी ग्राम ग्रामांतर जहाँ भी मिले प्राप्त करते हैं । कभी कोई खुद तैयार भी कर सकते हैं, करवा सकते हैं । संसार में सभी तरह के व्यापारी होते ही हैं । विशेष परिस्थिति में जीताचार वाले देव भी मदद करने उपस्थित हो जाते हैं अर्थात् फरसना अनुसार संयोग जुड जाता है। किसी को केवल ज्ञान हो जाय और लंबी उम्र हो तो देवों का अवश्य संयोग होता है ।

श्रावक धर्म निरूपण :-

[२९] से किं तं भंते ! सावग्ग धम्मस्स धारणा ? गोयमा ! एक्कारस्स विहा पण्णत्ता- सम्मत्त सावय धारणा, कयव्वयकम्म धारणा, सामाइयकओ धारणा, पोसहोववासनिरए धारणा, एग रत्तिं काउस्सग्गे धारणा, बंभयारी असिणाई विडयभोई मोलिकडस्स धारणा, सचित्त परिण्णाय धारणा, आरंभ परिण्णाय धारणा, पेसपरिण्णाय धारणा, उद्दिट्ठभत्त परिण्णाय धारणा, समणभूए यावि धारणा भवइ ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! श्रावक धर्म की धारणा किस प्रकार है? हे गौतम ! श्रावक धर्म में ग्यारह पडिमा कही कही गई है । जो आदर्श श्रावक की विशेष कठिन प्रतिज्ञाएँ हैं, यथा- (१) सम्यक्त्व श्रावक प्रतिज्ञा- इसमें बिना आगार के समकित के नियम गुणों का पालन दृढता से किया जाता है । (२) कृतव्रत पडिमा- इसमें अनेक छोटे बडे प्रत्याख्यान करके उनका दृढता से आगार बिना पालन करना होता है । (३) सामायिक कृत प्रतिज्ञा- इसमें तीनों समय सामायिक करना होता है दोषरहित एवं यथासमय दृढ संकल्प से सामायिक की जाती है एवं १४ नियम सदा व्यवस्थित धारण किये जाते है । (४) महिने में ६ दिन प्रतिपूर्ण पौषधव्रत किया जाता है छूट आगार के बिना एवं दोषरहित । (५) रात्रि में या यथासमय कायोत्सर्ग करना होता है अथवा पौषध के दिनों में रात्रि भर कायोत्सर्ग किया जाता है। (६) संपूर्ण शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है । साथ ही स्नान त्याग, रात्रिभोजन त्याग तथा ढीले कपडे रखे जाते हैं । धोती भी तंग पटली लगाकर नहीं पहनी जाती है । (७) सचित्त खाने का पूर्ण रूप से त्याग किया जाता है । (८) आरंभ समारंभ खुद करने का त्याग होता है अर्थात् अपने हाथ से सावद्य कार्य नहीं किये जाते हैं। (९) सावद्यकार्य करने का आदेश भी नहीं दिया जाता । खुद के लिये भी कुछ खाना बनवाने आदि का आदेश-निर्देश नहीं किया जाता । (१०) अपने निमित्त से किसी ने कुछ बना दिया हो तो उसका उपयोग भी नहीं किया जाता । (११) साधु जैसी चर्या का, वेशभूषा का, गौचरी के नियमों का, पालन कर गोचरी लाना आदि संपूर्ण साध्वाचार का पालन श्रावक अवस्था में रहते हुए करना होता

है । ये श्रावक की विशिष्ट साधना के ११ नियम है इनका विशेष खुलाशा ब्यावर से प्रकाशित दशाश्रुतस्कंध में देखना चाहिये ।

[३०] से केवामेवं भंते ! समत्तधारणा धरावेइ ? गोयमा ! से एवामेवं समत्तगुणधारणा गुरु धरावेइ- पढमे सलिंगं धरावेइ, अहवा उत्तरासणे धरावेइ, तओ पच्छा पंचपरमेट्ठीणं मज्झिमा एगट्ठसयं गुणाणं णाणं दलेइ, एवं जीवाजीवमाईयाइं णवण्णं तत्ताणं णाणं वि दलेइ, तओ पच्छा समत्तगुणधारणा णामं सुत्तं भणेइ- णमो अरिहंताणं इसिज्झईणं *जाव* जिण चउवीसं । सावग्गविहि अणुसारे सवणं करावेइ, जहा दसासुयखंधे एवं सव्वे वि धम्माणं गुण-अइयाराइं भावणा य धरावेइ, एवं सावग्गस्सणं धम्मधारणा सामग्गीयं णायव्वं ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! समकित धारणा श्रावक को किस प्रकार कराई जाती है ? हे गौतम ! समकित गुण धारण श्रावक को गुरु धारण करवाते हैं । सबसे पहले उसे मुँहपत्ति धारण करवाते हैं अथवा उत्तरासन लगाना बताते हैं फिर उसे पंच परमेष्ठी के १०८ गुण(मध्यम गुण) का ज्ञान कराते हैं । फिर जीवाजीव का ज्ञान देते हुए नव तत्त्वों का ज्ञान देते हैं । उसके बाद सम्यक्त्व गुण धारणा के पाठ से(णमो चोवीसाए के पाठ से) चौवीस जिनेश्वरों की स्तुति पर्यंत श्रावक विधि अनुसार उसे सुनाते हैं । विशेष में दशाश्रुत स्कंध आदि शास्त्र में जो श्रावक का वर्णन है वह सब जानना । यों श्रावक धर्म के सर्व गुण एवं १२ व्रत तथा उनके अतिचार एवं शिक्षाएँ भावनाएँ समझाते हैं । यह श्रावक धर्म धारणा की सामग्री जाननी चाहिये ।

[३१] भंते ! धम्म धारणाणं वा पडिमाणं वा को पइविसेसो ? गोयमा ! धम्मधारणा जावज्जीवाए, पडिमाणं कालपमाणं हवइ, जहा एग पडिमा य एग मासोक्कोसं दंसण विसोहि कालो । एवं इक्कारस्समियं एक्कारस्स मासोक्कोसं साहू रूवस्स आराहणा कालो । एयं च णं कालेणं पुणो पुणो आराहिया यावि भवइ । सेवं भंते ! सेवं भंते ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! धर्म धारणा और पडिमा में क्या विशेषता है? हे गौतम ! धर्म धारणा जीवन पर्यंत की होती है । पडिमा अल्प समय के लिये होती है । जैसे- पहली समकित प्रतिमा एक महिने की उत्कृष्ट होती है । इस प्रकार ***यावत्*** ग्यारहवीं पडिमा उत्कृष्ट

ग्यारह मास की होती है जो कि साधु स्वरूप में रहकर आराधना की जाती है । इस कहे गये समय में पडिमाओं को वापिस-वापिस भी अनेक बार धारण की जा सकती है । अब इस उद्देशक की समाप्ति रूप शिष्य की विनय प्रतिपत्ति का कथन है । वह विनय भक्ति के शब्दों से स्वीकार करता है कि हे भगवन् ! आपने यथार्थ फरमाया है मुझे बराबर समझ में आ गया है ।

[३२] इच्चेयं समुट्ठाणसुयस्स पवज्जा णामयं तइओ उद्देसो हियं सुहं खमं णिस्सेयसं अणुगामियं ते सव्व जीवाणं भविस्सइ ।

भावार्थ :- इस प्रकार यह प्रव्रज्या नामक तीसरा उद्देशक श्रमण प्रव्रज्या और श्रमणोपासक प्रव्रज्या रूप दोनों प्रकार के विश्लेषण के साथ पूर्ण हुआ । जो जीवों के लिये हितकारी सुखकारी आदि है ।

विवेचन :- प्रस्तुत सूत्रों में श्रावक जीवन के सुसंस्कार की विचारणा की गई है । जिसमें सबसे पहले ११ पडिमा का पाठ है। संभवत: वह पाठ काल दोष से आगे पीछे हो गया है । क्योंकि भंडार में इस शास्त्र की प्रति अस्तव्यस्त बिखरी मिली थी । अत: विवेक से स्वत: समझ लेना कि पहले सम्यक गुण धारणा आदि पाठ होकर फिर अंत में पडिमाओं के पाठ का होना समुचित होता है ।

गुरुदेव श्रावक को सर्व प्रथम समकित की सही जानकारी देकर मिथ्यात्व से मुक्त कराते हैं । उसके भी पहले शिष्टाचार रूप श्रावक के पाँच अभिगम अर्थात् श्रमणों के दर्शन हेतु आने के समय मुखवस्त्रिका धारण करना या उत्तरासन मुख के आगे लगाना, यह धर्म क्रिया की प्रथम पहिचान रूप है, इसे सिखाते हैं, अभ्यस्त कराते हैं । **फिर जीव, अजीव का ज्ञान समझाते हुए उसे नव तत्त्वों का ज्ञान समझाया जाता है जिसमें आत्म स्वरूप, कर्म स्वरूप *यावत्* मोक्ष स्वरूप एवं परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान कराया जाता है ।** नव तत्त्वों के भी पहले नमस्कार मंत्र अर्थ सहित समझाया जाता है, जिसमें पंच परमेष्ठी के १०८ गुण सरल करके समझाये जाते हैं । उसके बाद क्रम से सामायिक प्रतिक्रमण का बोध दिया जाता है । इस तरह धर्म का प्राथमिक ज्ञान कराकर फिर उसे सम्यक्त्व गुण धारणा के पाठ से अर्थात् णमोचोवीसाए के पाठ से मूल समकित गुण की प्रतिज्ञा

कराई जाती है । उसमें उस पाठ का पूरा सरलार्थ, भावार्थ समझाया जाता है । जिससे वह जिनमत को, निर्ग्रंथ प्रवचन रूप वीतराग धर्म को भलीभांति समझ कर स्वीकार कर लेता है । इस तरह श्रावक को सच्चे गुणों से युक्त बनाया जाता है । फिर क्रमशः आगे बढने के लिये श्रावक की ११ पडिमा का स्वरूप समझाया जाता है । जिससे कभी भी जीवन में हिम्मत बढने पर वह श्रावक उन पडिमाओं की आराधना कर सके । **उसके पहले यथाक्रम से श्रावक के १२ व्रतों का स्वरूप और उनके अतिचार समझा कर उसे १२ व्रतधारी बनाया जाता है ।**

यहाँ संक्षिप्त में महत्त्व की बात बतादी है कि श्रावक व्रत और पडिमा में क्या अंतर-विशेषता हैं ? तो कहा- व्रत जीवनभर के लिये होता है और पडिमा एक नियत समय की अर्थात् एक महीना ***यावत्*** ग्यारह महीने की होती है यही दोनों में मूल अंतर है । विशेष में व्रत मर्यादा ऐच्छिक एवं श्रावक के आगारों सहित होती है । किंतु पडिमाओं का जो आगम में स्वरूप कहा है उसी अनुसार पूर्ण रूप से और दृढता से बिना आगार-छूटछाट के पालन करनी होती है । पडिमाधारण करने वाला श्रावक गृहस्थ जीवन चर्या से निवृत्त होकर पूरी तैयारी और मनोबल पूर्वक करता है, यह भी खास फर्क है । श्रावक की पडिमाओं का विशेष खुलाशा दशाश्रुत स्कंध में एवं बारह व्रतों का खुलाशा उपासक दशा सूत्र में देखना चाहिये ।

इस प्रकार इस प्रव्रज्या उद्देशक में साधु और श्रावक दोनों की प्रव्रज्या का विश्लेषण किया गया है ।

★ ★ ★ ★ ★

नंदी सूत्र की आगम सूचि में प्रकीर्णक संबंधी पाठ कल्पित और प्रक्षिप्त है । पढें- जैन आगम परिचय पृष्ठ -३७ राजकोट से जैनागम नवनीत प्रकाशन समिति से प्रकाशित एवं आगम मनीषी द्वारा संपादित ।

उद्देशक- ४ : दिनचर्या-रात्रिचर्या

साधु की अहोरात्रिक समाचारी :-

[१] से णं भंते ! निग्गंथा वा निग्गंथी वा दिवसे किं करेइ? गोयमा! दिवसस्स पढमं पोरिसियं सज्झायं करेइ, बीयं झाणं झियायई, तईयाए भिक्खायरियाए पुणो चउत्थीए सज्झाए । अहवा गोयमा ! काले कालं समायरे जहा गुरुणं आणा- पाएकाले आवस्सए णं पच्छा गुरुणं वंदेज्जा णमंस्सेज्जा तओ पच्छा भंडे पडिलेहणा करेज्जा, जहा उत्तरज्झयणे ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! श्रमण श्रमणी दिवसभर में क्या प्रवृत्ति करते हैं ? हे गौतम ! दिन के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करते हैं, दूसरे प्रहर में ध्यान करते हैं, तीसरे प्रहर में गोचरी वगैरह एवं चोथे प्रहर में पुनः स्वाध्याय करते हैं । अथवा हे गौतम ! कालोकाल जैसी गुरु आज्ञा होती है उसके अनुसार संयम धर्म की प्रवृत्ति करते हैं अर्थात् प्रातः काल उठकर पहले सुबह का प्रतिक्रमण करते हैं, फिर सूर्योदय होने पर गुरुवंदन करके भंडोपकरणों की प्रतिलेखना करते हैं । प्रतिलेखन की विधि उत्तराध्ययन सूत्र के २६वें अध्ययन में कहे अनुसार जानना ।

[२] तओ पच्छा जहा गुरु वएज्जा तहामेवं करेज्जा । वेयावच्चे वएज्जा वेयावच्चं करेज्जा, सज्झायं वएज्जा सज्झायं करेज्जा। वेयावच्चे दसविहे पण्णत्ते, सज्झाए पंचविहे, जहा उववाईए तहा वेयावच्चे वा सज्झाए वा करेज्जा ।

भावार्थ :- उसके बाद जैसा गुरु कहे वैसा करते हैं अर्थात् कोई भी सेवा कार्य कहे तो पहले उसे करते हैं, स्वाध्याय ज्ञान ध्यान वृद्धि का कहे तो वह करते हैं । वैयावृत्य १० प्रकार के एवं स्वाध्याय ५ प्रकार के, औपपातिक सूत्र अनुसार जानना । इस तरह प्रथम द्वितीय प्रहर में स्वाध्याय या सेवा कार्य तथा ध्यान करे । ध्यान का तात्पर्य यह है कि विद्यार्थी जीवन वाला श्रमण नया-नया ज्ञान सीखे, सूत्रार्थ सीखे एवं बहुश्रुत श्रमण अपने सीखे हुए ज्ञान की विचारणा, अनुप्रेक्षा, ध्यान आदि करे ।

[३] तओ पच्छा तइयाए पोरिसीए एवं करेज्जा- अतुरियं

अचवलं असंभंते मुहपत्तिं पडिलेहेज्जा, मुहपत्तिं पडिलेहित्ता मुहपत्तिं पमजेज्जा, मुहपत्तिं पमज्जित्ता मुहपत्तिं मुहे बंधेज्जा, मुहपत्तिं मुहे बंधेत्ता गोच्छगं पडिलेहेज्जा गोच्छगं पडिलेहित्ता अंगुलियाओ गोच्छगं गिण्हित्ता भायणाइं, सव्वं वत्थाइं पडिलेहेज्जा, पडिलेहित्ता सव्वं वत्थाइं जहा ठाणे ठाइज्जा, भायणाइं उग्गाहेइ उग्गाहेत्ता, जेणेव गुरु तेणेव उवागच्छेज्जा, तेणेव उवागच्छेत्ता गुरुणं वंदेज्जा, णमंसेज्जा, गुरुणं वंदित्ता णमंसित्ता एवं वएज्जा- तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे गच्छामि णं भंते ! भिक्खायरियं । एवं आणा गिण्हेत्ता तओ पच्छा भिक्खायरियं गच्छेज्जा, उग्गमुपायणेसणा सुद्धं भिक्खं गिण्हेज्जा, आलोएज्जा, तओ पच्छा आहारमाहारेज्जा जहा दसवेकालिए वा पण्हावागरणे वा ।

भावार्थ :- उसके बाद तीसरे प्रहर में इस तरह करे- सर्व प्रथम उतावल रहित मानस वाला बन कर मुँहपत्ति का प्रतिलेखन करे, आवश्यक हो तो प्रमार्जन करे । फिर मुँहपत्ति को मुख पर बांधे । फिर गोच्छग को अंगुलियों में पकड कर उससे पात्रों की प्रतिलेखना प्रमार्जना करे । उसके साथ वस्त्रों की, झोली आदि की भी प्रतिलेखना करे । झोली में पात्रों को व्यवस्थित लेवे । शेष वस्त्र पात्र को यथास्थान व्यवस्थित रखे । पात्र झोली ग्रहण कर गुरु के पास जाकर वंदन नमस्कार पूर्वक आज्ञा लेकर अर्थात् हाथ जोडकर मस्तक झुकाकर गुरु से निवेदन करे कि आपकी आज्ञा होने पर मैं गोचरी जाना चाहता हूँ यों आज्ञा लेकर फिर गोचरी जावे । भिक्षाचारी करता हुआ श्रमण उद्गम के, उत्पादना के एवं एषणा के यों ४२ दोषों को टालकर शुद्ध गोचरी करे । गोचरी में भ्रमण करते हुए, गवेषणा करते हुए कुछ भी हैरान नहीं होवे, प्रसन्न चित्त एवं उत्साह युक्त गवेषणा के नियमों का पूरा पालन करे । फिर गुरु के पास आकर आलोचना प्रतिक्रमण करके फिर आहार करे । यहाँ दशवैकालिक के पाँचवें अध्ययन में कही सारी विधि समझ लेना तथा प्रश्नव्याकरण में भी आहार करने की विस्तृत विधि है उसका भी पालन करना ।

[४] गोयमा ! जेणं जीवाणं वा अजीवाणं वा सव्वं दव्वाणं सव्वं पज्जवाणं सरूवे णाए तेणं बितीयं पोरिसियं वा ततीयं पोरिसियं वा

पंचविहं सज्झायं करेज्जा- वायणाए पुच्छणाए परियट्टणाए अणुपेहा धम्मकहा पुणो पुणो करेज्जा, अहवा दसविहे वेयावच्चे करेज्जा । इमे बितीए उत्तमे सव्व जीवाणं आराहए एगे भवे पालंतो वि जीवा गच्छंति सुग्गइं ।

भावार्थ :- हे गौतम ! जिसने जीव अजीव सभी द्रव्यों को, उनकी पर्यायों को अच्छी तरह समझ लिया है अर्थात् पूर्ण ज्ञान हासिल कर लिया है वह दूसरे और तीसरे प्रहर में पाँच प्रकार की स्वाध्याय करे- वाचना, पृच्छा, परियट्टणा, अनुप्रेक्षा एवं यथा प्रसंग बारंबार सूत्रार्थ की वागरणा करे, अन्यों को समझावे अथवा वैयावृत्य करे अर्थात् स्व की, पर की या संघ की सेवा रूप वैयावृत्य के कर्तव्य करे । संयम जीवन में अध्ययन पूर्ण करके फिर यह शासन सेवाकृत्य करना रूप दूसरे उत्तम कार्य की(प्रथम उत्तम स्व स्वाध्याय स्व का ज्ञानध्यान) आराधना से जीव अनेक तरह से निर्जरा के साथ शुभ कर्मों का उपार्जन करता हुआ एक भव की उत्तम उत्कृष्ट आराधना से सुगति को प्राप्त करता है ***यावत्*** शीघ्र मुक्ति प्राप्त करता है ।

[५] धम्माधम्मे कोविए समणे जीवाणं उवएसं करेज्जा, तइए जामे इमेणं पुणो पुणो विचिंतित्तए, धम्मं झाणं झियायेज्जा, आसव्वेणं खवणए आयाणं सम्मं पयारेण य इमे बिईए उत्तमे आराहेज्जा। चउत्थीए पोरिसीए सज्झायं करेज्जा वा भंडोवगरणाइं पडिलेहणा करेज्जा अहवा सेह वुड्ढ थेर गणावच्छेइए आयरिय-उवज्जायाणं सम्मं वेयावच्चं करेज्जा ।

भावार्थ :- धर्माधर्म में कोविद बना हुआ श्रमण जीवों को उपदेश देकर धर्म में जोडता है, वह दूसरे तीसरे प्रहर में अपने आगम ज्ञान की अनुप्रेक्षा कर अनेक रहस्यों को प्राप्त करता है, धर्म ध्यान में आत्मा को जोडता है, जिससे आश्रव द्वारों को रोक कर कर्म क्षय में आत्मा को सम्यक् प्रकार से जोडता है अथवा प्रसंगानुसार सेवा लाभ रूप दूसरे उत्तम कृत्य की आराधना करता है । चौथी पोरसी में श्रमण स्वाध्याय करे तथा भण्डोपकरणों की, वस्त्र पात्रादि की प्रतिलेखना करे तथा वृद्ध, शैक्ष, स्थविर, पदवीधर, गुरु आदि की सम्यक् प्रकार से सेवा-वैयावृत्य करे, सामुहिक संयम के कार्य करे ।

[६] रत्तिम्मि भंते ! समणे किं करेइ ? गोयमा ! पढमं पोरिसीए सज्झायं करेज्जा, बीयं झाणं झियाएज्जा, तइयाए निद्दमोक्खं करेज्जा, चउत्थीए पुण सज्झायं करेज्जा, तओ पच्छा सडावस्सयं करेज्जा पुव्वुत्त विहीए । सेवं भंते ! सेवं भंते ।

भावार्थ :- रात्रि में हे भगवन् ! श्रमण क्या करे ? हे गौतम! प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय(प्रतिक्रमण के बाद) करे । दूसरे प्रहर में ध्यान आत्म विचारणा कर शयन करे । तीसरे प्रहर में निद्रा से मुक्त होकर फिर चौथे प्रहर में स्वाध्याय करे । इसके साथ उभय काल यथा समय (उत्तराध्ययन में कहे समय अनुसार) प्रतिक्रमण करे । इस तरह दिनचर्या एवं रात्रिचर्या जानकर शिष्य विनय प्रतिपत्ति करते हुए कहता है कि हे भगवन् ! आपने जैसा फरमाया वह यथार्थ रूप है और मुझे यथार्थ रूप में समझ में आ गया है ।

[७] इच्चेयं समुट्ठाणसुयस्स दिवसरत्तिचरिया नामं चउत्थो उद्देसो, हियं, सुहं, खमं, णिस्सेयसं, आणुगामियं ते सव्व जीवाणं भविस्सइ।

भावार्थ :- इस प्रकार समुत्थान सूत्र का यह दिवस रात्रि चर्या नामक चौथा उद्देशक पूर्ण हुआ । जो सर्व जीवों के लिये हितकर ***यावत्*** **अनुगामी-आत्मा के साथ जाने वाला है अर्थात् इसमें निर्दिष्ट सुकृत्यों की आराधना परभव में साथ चलने वाली होती है ।**

विवेचन :- इस उद्देशक में दिवस रात्रि की श्रमणचर्या बताई है । श्रावकचर्या तो एक निश्चित नहीं होती है, प्रत्येक गृहस्थ का जीवन भिन्न-भिन्न तरह का होता है । उसके रहन सहन, खान-पान, व्यापार-वाणिज्य में अनेक विविधताएँ होती है ।

साधु के लिये मोटे रूप में स्वाध्याय, ध्यान, गोचरी और निद्रा त्याग आदि कार्यों का कथन है । स्पष्टीकरण में प्रतिलेखन, प्रतिक्रमण, सेवा कार्य और गुरु आज्ञानुसार विहार, प्रवचन धर्म प्रभावना आदि कार्य होते हैं । यह सारी दिनचर्या उत्तराध्ययन के २६ वें अध्ययन से समझ लेनी चाहिये । वहाँ पोरषी का माप, बिना घडी के रात्रि में नक्षत्रों से और दिन में सूर्य के आधार से समझने का निर्देश और हिसाब बताया गया है । जिज्ञासु बुद्धिमान साधक उत्तराध्ययन के विवेचन से समझने का प्रयत्न करे ।

यह चर्या सामान्य रूप से श्रमण की कही जाती है तथापि अध्ययनशील श्रमण और अध्ययन पूर्ण किये बहुश्रुत श्रमण के लिये कुछ अंतर होता है, साथ ही सेवाभावी सेवानिष्ठ श्रमणों की चर्या विशेष अलग से स्वतः समझ लेनी चाहिये जैसे कि- (१) अध्ययन शील विद्यार्थी जीवन वाले श्रमणों की चर्या आवश्यक कार्य-प्रतिलेखन, प्रतिक्रमण के सिवाय अवशेष समय गुरु वडील उपाध्याय आदि के सूचन मार्गदर्शन अनुसार ज्ञान वृद्धि रूप यथा समय होती है । उसमें स्वाध्याय, नया सीखना-पढना एवं सीखे हुए ज्ञान को उपस्थित रखने रूप दिनचर्या मुख्य होती है । (२) अध्ययन पूर्ण हुए बहुश्रुत मुनि धर्म प्रभावना के कार्य के सिवाय या आवश्यक सेवा के सिवाय स्वाध्याय, ध्यान, विशिष्ट अभिग्रह आदि साधनाओं में प्रवृत्त होते हैं, गुरु आज्ञा को आगे रखते हुए । (३) सेवानिष्ठ संतों को आवश्यक चर्या प्रतिलेखन, प्रतिक्रमण, यथासमय चारों प्रहर में कुछ स्वाध्याय के सिवाय संपूर्ण समय गुरु आज्ञा अनुसार सेवा सुश्रुषा रूप दिवस रात्रि की चर्या में मुख्य रूप से व्यतीत करना होता है । अवशेष समय प्रमाद में नहीं रहते हुए स्वाध्याय, ध्यान, आत्मजागरण में लगाना होता है । इस तरह आगम की समुच्चय दिनचर्या को भी व्यक्ति की स्टेज अनुसार थोडी अलग-अलग रूप में अपने विवेक ज्ञान से समझ लेनी चाहिये ।

दूसरे प्रहर के ध्यान में, सीखे हुए ज्ञान की तत्त्वानुप्रेक्षा, आत्म चिंतन एवं उत्कालिक सूत्रों की स्वाध्याय भी समझ लेनी चाहिए। रात्रि के दूसरे-तीसरे प्रहर में भी प्रथम प्रहर की स्वाध्याय आदि के बाद शयन निद्रा जरूरी लगे तब आत्म जागरण एवं शयन विधि करके सो जाना होता है और तीसरे प्रहर में जब निद्रा खुल जाय तो उठकर शारीरिक प्रवृत्ति आलस से मुक्त होकर समय रहे तो उत्कालिक सूत्र की स्वाध्याय करना और चौथा प्रहर आ जाय तो कालिक सूत्र की स्वाध्याय तथा नया ज्ञान सीखने वाले गुरु आज्ञा अनुसार स्वाध्याय या थोकडे आदि कोई भी ज्ञान प्रवृत्ति में लग जावे। विशेष यह है कि रात्रि के प्रथम प्रहर के बाद कोई भी प्रवृत्ति में लघु उच्चारण से बोलने का विवेक रखने का निर्देश किया गया है

जिससे अन्य सोने वालों को किसी प्रकार से विघ्न न होवे। धारणा से यह दिनचर्या स्थविर कल्पी की अपेक्षा है, जिनकल्पी आदि साधक अल्पतम निद्रा लेते हैं उनके लिये उत्कृष्ट १ प्रहर की ही निद्रा कही गई है। वे विशष्टि मनोबली साधक होते हैं । स्थविर कल्पी में भी कई अप्रमत्त स्वभाव, शरीर के अभ्यास वाले श्रमण कम निद्रा से निर्वाह कर सकते हैं ।

२७ आगमों के नाम

वर्तमान में स्थानकवासी और तेरापंथी जैन समाज जिन ३२ आगमों को प्रामाणिक रूप से स्वीकार करते हैं वे वास्तव में २७ ही होते हैं । क्योंकि ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति एक शास्त्र है, दो नाम उसके मध्यकाल में कल्पित किये गये है एवं उपांग सूत्र भी एक शास्त्र है और पाँच नाम उसके भी मध्यकाल में कल्पित किये गये है । २७ आगम-

१. आचारांग सूत्र २. सूगडांग सूत्र ३. ठाणांग सूत्र ४. समवायांग सूत्र ५. भगवती सूत्र ६ज्ञाताधर्मकथा सूत्र ७. उपाशकदशा सूत्र ८. अंतगडदशा सूत्र ९. अनुत्तरोपपातिक सूत्र १०. प्रश्नव्याकरण सूत्र ११. विपाक सूत्र १२. औपपातिक सूत्र १३. राज प्रश्नीय सूत्र १४. जीवाभिगम सूत्र १५. प्रज्ञापना सूत्र १६. जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र १७. ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति (चंद्र प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति) १८. उपांग सूत्र (निरयावलिकादि-५) १९. निशीथ सूत्र २०. दशाश्रुतस्कंध सूत्र २१. बृहत्कल्प सूत्र २२. व्यवहार सूत्र २३. उत्तराध्ययन सूत्र २४. दशवैकालिक सूत्र २५. नंदी सूत्र २६. अनुयोगद्वार सूत्र २७. आवश्यक सूत्र ।

उद्देशक- ५ : छ आवश्यक

आवश्यक का स्वरूप :-

[१] से किं तं भंते ! आवस्सयं ? गोयमा ! समणेणं सावएणं अवस्सं कायव्वं हवइ जम्हा अंतो अहो निसस्स तम्हा आवस्सयं नाम । कई विहेणं भंते ! आवस्सए ? कई अज्झयणा आवस्सयस्स णं ? गोयमा ! आवस्सए णं छव्विहे, आवस्सयस्स णं छ अज्झयणाइं, तंजहा- सावज्जं जोगं विरइ, उक्कित्तणं, गुणवओ य पडिवत्ति, खलियस्स णिंदणा, वणतिगिच्छा, गुणधारणा चेव । से किं तं भंते ! सावज्जं जोगं विरइ ? गोयमा ! सामाइएणं णामे सावज्जं जोगं विरइ । एवा-मेवं चउविसत्थवे वंदणे पडिक्कमणे काउसग्गे पच्चक्खाणे ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! आवश्यक किसे कहते हैं ? हे गौतम ! श्रमण और श्रावक के जो दिन और रात्रि में अवश्य करणीय होता है उसे आवश्यक कहते हैं ।

हे भगवन् ! आवश्यक के कितने प्रकार है ? आवश्यक के कितने अध्ययन है ? हे गौतम ! आवश्यक के ६ प्रकार है, वे ही आवश्यक के छ अध्ययन है यथा- सावद्ययोग विरति, उत्कीर्तन, गुणवानों की विनय प्रतिपत्ति, पाप की निंदा-प्रतिक्रमण, व्रण चिकित्सा और गुणधारणा, ये छ प्रकार की क्रिया ६ अध्ययन में होती है ।

हे भगवन् ! सावद्य योग विरति क्या है ? हे गौतम ! सामायिक साधना यह सावद्य योग विरति है । इसी तरह चतुर्विंशति स्तव, वंदना, प्रतिक्रमण कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान, क्रमशः इन छ आवश्यक का स्वरूप समझना ।

[२] आवस्सए णं भंते ! कई विहे पण्णत्ते ? गोयमा ! आवस्सए तिविहे पण्णत्ते तंजहा- लोइए, लोगुत्तरिए, कुप्पावयणीए *जाव* जहा अणुओगदारे । लोगुत्तरिए दुविहे पण्णत्ते तंजहा- दव्वलोगुत्तरियं आवस्सयं, भाव लोगुत्तरियं आवस्सयं ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! आवश्यक के अन्य अपेक्षा से कितने प्रकार है ? हे गौतम ! तीन प्रकार है यथा- लौकिक, लोकोत्तर और कुप्रावचनिक । आगे का विस्तृत वर्णन अनुयोगद्वार सूत्र से जानना ।

लोकोत्तरिक आवश्यक दो प्रकार का है- द्रव्य लोकोत्तरिक आवश्यक और भाव लोकोत्तरिक आवश्यक ।

[३] से किं तं भंते ! दव्वलोगुत्तरियं आवस्सयं ? गोयमा ! जे इमे समणगुण मुक्कजोगी छकायणिरणुकंपा, हया इव उद्दामा, गया इव निरंकुसा, घट्ठा मट्ठा तुप्पोट्ठा पंडुरपडपावरणा, जिणाणं अणाणाए सच्छंदं विहरिऊणं उभओकालं आवस्सगस्स उवट्ठवंति एवं सावयवयाइ वि भट्ठओ हवइ दव्वावस्सयं । से तं लोगुत्तरियं दव्वावस्सयं ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! लोकोत्तरिक द्रव्य आवश्यक किसे समझना? हे गौतम ! जो ये श्रमण गुण से रहित साधु होते हैं, छकाय जीवों के अनुकंपा धर्म से रहित होते हैं, घोडों की तरह उन्मत्त होते हैं, हाथी की तरह निरंकुश होते हैं, अंगोपांग को टीपटाप श्रृंगारित और स्वच्छ रखते हैं, कपडे भी उज्जवल-धवल रखते है, जिनेश्वर की आज्ञा से बाहर स्वछंदी होकर विचरण करते हैं, वे साधु जो उभयकाल प्रतिक्रमण करते हैं एवं ऐसे ही भ्रष्ट श्रावक भी जो प्रतिक्रमण करते हैं वह उनका लोकोत्तरिक द्रव्य आवश्यक होता है।

[४] से किं तं भंते ! लोगुत्तरियं भावावस्सयं ? गोयमा ! जण्णं इमे समणे वा समणी वा सावए वा साविए वा तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे तब्भावणा भाविए एगग्गचित्तेणं अणत्थ कत्थई मणं अकरेमाणे उभओ कालं आवस्सयं करेइ, से तं लोगुत्तरियं भावावस्सयं ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! लोकोत्तरिक भाव आवश्यक किसे कहते हैं ? हे गौतम ! जो ये श्रमण, श्रमणी, श्रावक, श्राविका अपने व्रत नियम में भगवदाज्ञानुसार विचरण करते हैं, समाचारी का और परीषहों का सम्यक् आचरण करते हैं, वे उभय संध्या स्थिर चित्त से, एकाग्र मन से, अंतर्मुखी लेश्या, अध्यवसाय से युक्त होकर प्रतिक्रमण करते हैं, प्रतिक्रमण में ही अध्यवसायों की तीव्रता रखते हैं, प्रतिक्रमण के अर्थ परमार्थ में दत्त चित्त होकर उसी में सर्वात्मना अर्पित होकर एकाग्र मनसे, जिनवचन में धर्मानुरक्त होकर, प्रतिक्रमण की भावना से ही भावित्तात्मा होकर, अन्यत्र किसी सोच में मन को नहीं जाने देते हुए प्रतिक्रमण करते हैं तो वह उनका लोकोत्तर भाव आवश्यक होता है ।

[५] भंते ! से किं तं पियकरणे ? गोयमा ! मुहपत्तिमादियं धम्मोवगरणं पियकरणं जाणेइ, एगमणे अविमणे जिणवयणे धम्माणुरागरत्ते, से पियं करे पियधम्मे दढधम्मे भवइ ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! प्रियंकर किसे कहते हैं ? हे गौतम ! उपरोक्त सही तरीके से धर्म की प्रवृत्ति रुचिपूर्वक करते हैं वे धर्म के प्रियंकर-प्रियधर्मी कहे जाते हैं । ऐसे प्रियंकर साधक धार्मिक उपकरण मुँहपत्ति आदि लगाने में सामायिक की पूरी वेशभूषा पहिनने में किंचित भी आलस-उपेक्षा नहीं करते किंतु लगन अहोभाव पूर्वक धार्मिक उपकरणों का उपयोग करते हैं, वे धर्म के प्रियंकर-प्रियधर्मी द्रढधर्मी होते हैं । वे एकाग्र मन से, अविक्षिप्त मन से जिन वचन में धर्मानुरागी होते हैं ।

विवेचन :- प्रस्तुत सूत्रों में कहा गया आवश्यक संबंधी विशेष कथन अनुयोग द्वार सूत्र में है । तत्संबंधी विस्तार वहाँ से जानना और यहाँ जो द्रव्य भाव आवश्यक का कथन किया गया है उसका भी विवेचन विस्तार अनुयोग द्वार में पूर्णतया है । प्रियंकर की बात यहाँ विशेष है ।

उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन-११ की गाथा-१४ में भी **पियं करे पियंवाई** शब्द आता है वैसा ही यहाँ प्रियकरण शब्द है । **धर्माचरण को प्रेमपूर्वक प्रसन्नता पूर्वक करने वाला और धर्म के लिये सदा प्रियकारी बोलने वाला, धर्माचरण के प्रति भी प्रियवादी- मुखवस्त्रिका बांधना आदि किसी भी धर्म प्रवृत्ति नियम की उपेक्षा अवर्णवाद नहीं बोलने वाला, सभी धर्माचरणों के प्रति अंतर्प्रेम रखने वाला यहाँ धर्मप्रिय-प्रियंकर अर्थात् जिनवचनों में धर्मानुरागरंजित कहा गया है ।** सार यह है कि यहाँ धर्म के प्रियकारी की परिभाषा में मुँहपत्ति आदि उपकरणों का सही सदुपयोग करने वाले को महत्त्व दिया गया है । इसके फलितार्थ से सामायिक की पूर्ण वेशभूषा को भी स्वतः महत्त्व हो जाता है । धर्मप्रिय श्रावकों को **धर्मकरणी की किसी भी प्रवृत्ति में तर्क आलस नहीं करना चाहिये । वेशभूषा के प्रति मन वचन से उपेक्षावृत्ति नहीं होनी चाहिये कि- सामायिक में कपडे नहीं बदले तो क्या ? मुँहपत्ति नहीं बांधे तो क्या ? ऐसा मानस**

नहीं रखकर विधि के प्रति भी पूर्ण अहोभाव रखने वाला सरल मन, अर्पित मन रखने वाला सच्चे अर्थ में प्रेमपूर्वक, जिन वचनानुराग पूर्वक प्रवृत्ति करने वाला होता है । उसे धर्म कार्यों का प्रियकारी कहा जाता है ।

विधि सहित आवश्यक :-

[६] से किं तं भंते ! भावावस्सयस्स विहि ? गोयमा ! भावावस्सयस्स णं पुण विहि सअट्ठं सहेउं सणिमित्तं उवदंसेमि ।

गोयमा ! जया आवस्सयस्स णं समए समा पडिवण्णेत्तो तया पढमं संप्पइकाले गुरुणं वा अरिहंताणं भगवंताणं अहवा जे भवंति वट्टमाणे तस्स णं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेमि वंदामि नमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि मत्थेण वंदामि, एवं वंदेज्जा णमंसेज्जा एवं वंदित्ता णमंसित्ता तओ पच्छा इरियावहियाए (गमणागमणे) आलोयणा सुत्तं भणेज्जा ।

भणित्ता तओ पच्छा तस्स उत्तरी *जाव* अप्पाणं वोसिरामि झाणागारे सुत्तं भणेज्जा भणित्ता तओ पच्छा झाणंतो उक्कित्तणं पडिपुण्णं थवं भणेइ भणित्ता तओ पच्छा णमोक्कारेणं पारित्ता फुडं चउवीसत्थो भणेज्जा भणित्ता वामं जाणुं अंच्चेइ अंच्चेत्ता दाहिणं जाणुं धरणीतलंसि ठवित्ता उभए थवे भणेज्जा ।

पढमं बितीयं अरिहंताणं सिद्धाणं भगवंताणं तओ पच्छा गुरुणं तिक्खुत्तो पाठ सद्धिं वंदेज्जा णमंसेज्जा वंदित्ता णमंसित्ता पढमं आवस्सय सामाइयस्स णं आणं गिण्हेइ ।

भावार्थ :- हे गौतम ! भाव आवश्यक की संपूर्ण विधि क्रम से दर्शाई जाती है- जब जहाँ आवश्यक-प्रतिक्रमण करना हो वहाँ उस समय जो गुरु भगवंत या अरिहंत भगवंत अथवा जो भी साधु-साध्वी विराजमान हो उन्हें तिक्खुत्तो के पाठ से उनके दक्षिण-दाहिनी तरफ से तीन प्रदक्षिणा अर्थात् करबद्ध अंजलि से आवर्तन करते हुए ऐसा बोले कि- हे भगवन् ! प्रतिक्रमण प्रारंभ करने की आज्ञा लेने के लिये तीन आवर्तन पूर्वक आपको वंदन नमस्कार करता हूँ, आपका सत्कार सन्मान करता हूँ, आप कल्याणकारी, मंगलकारी, देव समान

और ज्ञानवंत हो मैं आपकी पर्युपासना पूर्वक मस्तक झुकाकर वंदन करता हूँ । इस प्रकार वंदन नमस्कार करके फिर यथास्थान स्थित होकर गमनागमन-आलोचना सूत्रपाठ बोले । उसके बाद तस्सउत्तरी का पाठ बोलकर ध्यान के आगार बोलकर अप्पाणं वोसिरामि बोलने के साथ ध्यान शुरू करे, ध्यान में एक लोगस्स पूरा बोले(मन में) । फिर नवकार से कायोत्सर्ग को पालकर प्रगट में लोगस्स का पाठ बोले । फिर बायाँ घुटना ऊँचा रखकर सिद्ध और अरिहंतों की दो णमोत्थुणं से स्तुति करे । फिर गुरु को तिक्खुत्तो के पाठ से वंदन नमस्कार करके प्रथम सामायिक आवश्यक की आज्ञा लेवे ।

यहाँ कायोत्सर्ग से इरियावाहि-क्षेत्रशुद्धि करके फिर गुरु वंदन करके प्रतिक्रमण का प्रथम आवश्यक शुरू किया जाता है ।

[७] एसट्ठाणे भंते ! केणट्ठेणं सामाइयं जाणेज्जा ? गोयमा! एसठाणे णाणदंसणचरित्ततवअइयाराणं चिंताए सामाइयं आवस्सयं। तओ पच्छा- इच्छाकारेणं संदिसह भगवं देवसियं सामाइयं ठाएमि देवसिय-णाण-दंसण-चरित्त-तव अइयार चिंतणत्थं करेमि काउसग्गं ।

तओ पच्छा णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आयरियाणं णमो उवझायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं । एसो पंच णमुक्कारो, सव्व पावप्पणासणो ! मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं ।

तओ पच्छा करेमि भंते ! सामाइयं सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जावजीवाए तिविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अण्णं ण समणुजाणामि मणसा वयसा कायसा तस्स भंते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! सामायिक आवश्यक की जो आज्ञा ली, वह सामायिक शब्द किस अर्थ में है ? हे गौतम ! यह सामायिक शब्द प्रथम आवश्यक रूप ज्ञान दर्शन चारित्र के अतिचार चिंतन के अर्थ में हैं । अब प्रतिक्रमण शुरू करने के लिये अर्थात् प्रथम आवश्यक शुरू करने के लिये इस प्रकार बोले- हे भगवन् ! इच्छा पूर्वक आप आज्ञा दीजिये कि मैं दिवस संबंधी ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप के अतिचारों का चिंतन करने के लिये कायोत्सर्ग करूँ अर्थात् वर्तमान में प्रचलित

इच्छामि णं भंते ! यह छोटा सा पाठ बोलकर प्रतिक्रमण शुरु करे। प्रचलित पाठ में पडिक्कमणं ठाएमि बोलते हैं उसकी जगह यहाँ सामाइयं(आवस्सयं) ठाएमि ऐसा पाठ है । उसके बाद नमस्कार मंत्र का पाठ, फिर करेमि भंते का पाठ पूरा बोलने का कथन है । जिसका अर्थ प्रतिक्रमण सूत्र से जानना ।

[८] तओ पच्छा चत्तारि मंगलं– अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगल, साहू मंगलं, केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलं, चत्तारि लोगुत्तमा– अरिहंता लोगुत्तमा सिद्धा लोगुत्तमा साहू लोगुत्तमा, केवली पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो, चत्तारि सरणं पवज्जामि– अरिहंते सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवली पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि । जइ अण्णेणं सवणं करावेइ तया एए सद्दे भणेज्जा– अरिहंता सरणं पवज्जेहि *जाव* केवली पण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जेहि। तओ पच्छा इच्छामि ठामि काउसग्गं *जाव* मिच्छामि दुक्कडं ।

तओ पच्छा तस्सउत्तरी करणेणं *जाव* अप्पाणं वोसिरामि । झाणंतो णाणदंसणचरित्त तवं सव्वाइयाराणं अणुप्पेहं करेइ करेत्ता इच्छामि आलोइयं *जाव* तस्स मिच्छामि दुक्कडं ! तओ पच्छा णमो अरिहंताणं *जाव* णमो लोए सव्व साहूणं भणित्ता, काउस्सग्गं पारेज्जा पारेत्ता गुरुणं तिक्खुत्तो पाठ सद्धिं वंदेज्जा णमंसेज्जा वंदित्ता णमंसित्ता बिईयं आवस्सयस्स णं आणं गिण्हेइ ।

फुडं चउवीसत्थं भणेज्जा, भणित्ता तओ पच्छा गुरुणं तिक्खुत्तो पाठ सद्धिं वंदेज्जा, णमंसेज्जा वंदित्ता णमंसित्ता तइयं आवस्सयस्स णं आणं गिण्हेइ गिण्हेत्ता तइयं आवस्सयं करेह तंजहा– इच्छामि खमासमणो एवं जहा वंदणा विही सुत्ते तहा उभय सुत्तो भणेज्जा ।

भावार्थ :– उसके बाद चत्तारि मंगल का पाठ चार शरण तक बोलना, उसका अर्थ भावार्थ प्रतिक्रमण से जानना । यदि मंगल पाठ दूसरों को भी उच्चारण कर सुनाना हो तो क्रिया शब्दों में **सरणं पवज्जेहि** बोलना । इसके बाद इच्छामि ठामि काउसग्गं का पाठ बोलना । फिर तस्स उत्तरी का पाठ बोलकर कायोत्सर्ग में अतिचारों का चिंतन करना अर्थात् ज्ञान दर्शन चारित्र के समस्त अतिचारों की आलोचना करके नमस्कार मंत्र बोलकर कायोत्सर्ग पूर्ण करना, (कायोत्सर्ग शुद्धि

का पाठ बोल कर) फिर गुरुवंदना तिक्खुत्तो के पाठ से करके दूसरे आवश्यक की आज्ञा लेकर लोगस्स प्रगट बोलना। फिर तिक्खुत्तो के पाठ से वंदन कर तीसरे आवश्यक की आज्ञा लेकर पूरी विधि सहित दो बार खमासमणा देना अर्थात् समवायांग सूत्र में कही संपूर्ण विधि युक्त उत्कृष्ट वंदन करना ।

[९] तओ पच्छा पुणो गुरुणं तिक्खुत्तो पाठसद्धिं वंदेज्जा णमंसेज्जा, वंदित्ता णमंसित्ता चउत्थस्स आवस्ययस्स णं आणं गिण्हेइ, आणं गिण्हेत्ता फुडं सव्वे अइयाराणं उच्चारेमाणे पुणो गुरुणं तिक्खुत्तो पाठसद्धिं वंदेज्जा णमंसेज्जा वंदित्ता णमंसित्ता आणं गिण्हेइ आणं गिण्हेत्ता पुणो समत्त गुण धारणा सुत्तं संपुण्णं समण सुत्तं भणेज्जा ।

तओ पच्छा पुणो इच्छामि खमासमणो *जाव* अप्पाणं वोसिरामि, तओ पच्छा सव्वे णिग्गंथा णमोक्कार मंते अवरणामे पंचपरमेट्ठी मूल महामंतं णमोक्कारं जहासत्ती पुणो पुणो वंदेज्जा णमंसेज्जा ।

भावार्थ :– फिर गुरु वंदन तिक्खुत्तो के पाठ से करके चौथे आवश्यक की आज्ञा लेकर संपूर्ण अतिचारों को प्रगट बोल कर फिर गुरु वंदना पूर्वक श्रमणसूत्र की आज्ञा लेवे । पाँचों पाठ पूरे बोलकर दो बार खमासणा देवे । फिर पंच परमेष्ठी को शक्ति अनुसार सभी निर्ग्रंथ वंदन नमस्कार करे अर्थात् पांच पद की भाववंदना से परमेष्ठी नमस्कार करे ।

[१०] तओ पच्छा गुरुणं वंदित्ता णमंसित्ता पंचमं काउसग्ग आवस्सयस्स णं आणं गिण्हेइ आणं गिण्हेत्ता; आवस्सहि इच्छाकारेण संदिसह भगवं देवसियं णाण-दंसण-चरित्त-तव-अइयार पायच्छित्त विसोहणट्ठं करेमि काउसग्गं। एसट्ठाणे गोयमा ! एवामेव भणेज्जा राइयं काले राइयं *जाव* संवच्छरीयं भणेज्जा। एवं सव्वे ट्ठाणे पक्खीए चाउमासिए वि णायव्वा ।

णमो अरिहंताणं *जाव* णमो लोए सव्वसाहूणं ! इच्छामि आलोइयं *जाव* तस्स मिच्छामि दुक्कडं । तस्स उत्तरी *जाव* अप्पाणं वोसिरामि । झाणंतो चत्तारि उक्कित्तणथवं झाणं झाएज्जा पडिपुण्णं चिंतिज्जा चिंतित्ता काउसग्गं णमोक्कारेण पारेत्ता । वंदइ वंदित्ता तओ पारिय काउसग्गे गुरुं वंदित्ताणं तओ फुडं चउवीसत्थं भणेज्जा, उभओ

दंडजुत्तं । तओ पच्छा गुरुणं वंदेज्जा णमंसेज्जा वंदित्ता णमंसित्ता पच्चक्खाणे करावेज्जा वा करेज्जा तओ पच्छा उभए थवं भणेज्जा पुव्ववुत्तं जहा भणिअं तओ पच्छा वंदेज्जा णमंसेज्जा।

भावार्थ :- फिर गुरुवंदना करके पाँचवें आवश्यक की आज्ञा लेकर देवसी प्रायश्चित्त, का पाठ बोले । उसमें देवसी के स्थान पर राइय, पक्खी, चोमासी ऐसा प्रसंगानुसार परिवर्तन करके बोलना चाहिये। ***यावत्*** संवत्सरी हो तो संवत्सरी का शब्द बोलना चाहिये। फिर नमस्कार मंत्र, इच्छामि ठामि का पाठ बोलना । उसमें ठामि के स्थान पर आलोइयं बोलना । फिर तस्स उत्तरी का पाठ बोलकर कायोत्सर्ग करना । (बीच में करेमि भंते का पाठ बोलने की परंपरा है किंतु यहाँ कोई कारण से छूट गया लगता है ।) फिर काउसग्ग में चार लोगस्स का ध्यान करना । नमस्कार मंत्र बोलकर कायोत्सर्ग पूर्ण करना । (फिर कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ) प्रगट लोगस्स का पाठ बोलना । फिर दो बार खमासणा देना । फिर गुरुवंदन कर पच्चक्खाण करना। फिर दो णमोत्थुणं देना पूर्ववत् । फिर वंदन नमस्कार सभी श्रमणों को दीक्षा पर्याय में वडील के क्रम से वंदन करना ।

[११] पढमं पोरसिए सज्झायं करेइ बिइयं झाणं झियायइ तइयाए णिद्दामोक्खं सज्झायं पुण चउत्थीए तओ राइयं वि सडावस्सयं करेज्जा, णण्णत्थ पंचमे काउसग्गे एवं करेज्जा- झाणंतो चत्तारि उक्कित्तणथवं पडिपुण्णं भणेज्जा भणेत्ता एवं चिंतेज्जा- 'किं तवं पडिवज्जामि' एवं चिंतित्ता णमोक्कारेणं काउसग्गं पारित्ता *जाव* पच्चक्खाणे करावेज्जा वा करेज्जा पच्चक्खाणे करेत्ता करावित्ता पढमं सिद्धाणं संथवं करेइ बिइयं अरिहंताणं करेइ सेसं जहा देवसियं णवरं तइयाए पोरिसिए भिक्खायरियं सेसं जहा उत्तरज्झयणे ।

एवं विहिणा छ आवस्सयं करेमाणा जीवा भंते ! किं जणयंति ? गोयमा ! भावावस्सयं करेमाणा जीवा णाणदंसण चरित्ततवविसोहिं जणयंति । णाणदंसणचरित्ततवस्स विसोहिं गया य जीवा णाणावरणिज्जाइं, अट्ठण्हं कम्मवग्गणाणं खयं करेंति *जाव* सिद्धा भवंति ।

भावार्थ :- रात्रि के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे प्रहर में ध्यान

तीसरे प्रहर में निद्रा पूर्ण करके पुनः चोथे प्रहर में स्वाध्याय एवं प्रतिक्रमण करे ।

पाँचवें कायोत्सर्ग आवश्यक में ४ लोगस्स का ध्यान करके तपस्या की भावना करें कि आज मुझे क्या तप प्रत्याख्यान करना? फिर नवकार मंत्र से कायोत्सर्ग पालना । प्रत्याख्यान करना या कराना । फिर दो णमोत्थुणं से सिद्धों की एवं अरिहंतों की स्तुति गुणगान तथा वंदन करना । शेष पूर्व कहे अनुसार ***यावत्*** तीसरे प्रहर में गोचरी करे । अन्य सब उत्तराध्ययन सूत्र अनुसार जानना ।

हे भगवन् ! विधिपूर्वक छ आवश्यक करते हुए जीवों को क्या लाभ होता है ? हे गौतम ! उपरोक्त भावावश्यक करते हुए जीवों के ज्ञान दर्शन चारित्र और तप की विशुद्धि होती है और उस विशुद्धि से ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों की वर्गणा का क्षय होता है एवं क्रम से जीव संपूर्ण कर्म क्षय कर मुक्त होता है ।

विवेचन :- प्रस्तुत सूत्रों में प्रतिक्रमण करने की विधि दर्शाई गई है जो लगभग परंपरानुसार है । विशेष में प्रथम चार लोगस्स का ध्यान और फिर अतिचारों के चिंतन का कायोत्सर्ग का कथन है। उस कायोत्सर्ग के पहले चत्तारि मंगल का पाठ बोलने की बात विशेष है । प्रत्येक आवश्यक के पूर्व तिक्खुत्तो के पाठ से वंदन करने का भी निर्देश किया गया है । देवसी प्रतिक्रमण के पाँचवें आवश्यक में चार लोगस्स का ध्यान कहा है । उसके साथ सभी जीवों के प्रति क्षमापना चिंतन करना भी जरूरी है । उसके लिये चौथे आवश्यक में श्रमण सूत्र के पाँच पाठ के बाद क्षमापना पाठ श्लोक रूप में है । जिसके लिये गद्यरूप में ६ कायजीवों के प्रति क्षमापना चिंतन भी कर लेना चाहिये । वह इस प्रकार है- गमनागमन करते हुए या अन्य कोई कार्य करते हुए पृथ्वी के जीवों की विराधना हुई हो तो उन जीवों से क्षमा मांगता हूँ । पानी के जीव- ओस झाकल, वर्षा, स्नेहकाय या फ्रीज, ए.सी. द्वारा जीवों की विराधना हुई हो तो उन पानी के जीवों से क्षमा मांगता हूँ । इसी तरह अग्नि जीवों का वायु जीवों का नाम लेकर तथा विद्युत की अग्नि, पंखे की हवा आदि से उन जीवों की विराधना हुई हो तो उनसे क्षमा माँगता हूँ । इसी तरह

अलग-अलग नाम लेकर वनस्पति, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय, जीवों की क्षमा मांगनी । पंचेन्द्रिय में नारकी देवता संबंधी प्ररूपण या मानसिकता से कोई आशातना हुई हो तो उनसे क्षमा माँगता हूँ । तिर्यंच पंचेन्द्रिय में जलचर, पशु या पक्षी को अपनी कोई प्रवृत्ति से किलामना हुई हो तो क्षमा माँगता हूँ । मनुष्य संबंधी स्त्री पुरुष, धर्मी अधर्मी, जैन जैनेतर, श्रमण श्रमणी, श्रावक श्राविका संबंधी कोई राग द्वेष, निंदा विकथा प्रवृत्ति से आशातना हुई हो एवं परिवार के, मित्र समुदाय के या विरोधी के प्रति कोई भी दुर्व्यवहार हुआ हो तो समभाव और कर्म सिद्धांत का विचार कर उन सभी से क्षमा माँगता हूँ। इस प्रकार देवसिक प्रतिक्रमण में क्षमापना चिंतन करना चाहिये। क्योंकि प्रतिक्रमण का प्राण या हार्द **अतिचार शुद्धि और कषाय मुक्ति** ये दो ही मुख्य है ।

रात्रि प्रतिक्रमण के पाँचवें आवश्यक में चार लोगस्स के ध्यान के साथ तप का चिंतन करना चाहिये । जिसकी सूचना उत्तराध्ययन सूत्र के २६वें अध्ययन में दी गई है । उसी के विवेचन रूप में व्याख्या में तप चिंतन की पूरी विधि का पाठ भी दिया गया है । श्वे. मू. पूजक समाज में उस पाठ का प्रचलन प्रतिक्रमण की पुस्तकों में है तथा आगम सारांश की पुस्तकों में भी आवश्यक सूत्र सारांश के परिशिष्ट में वह तप चिंतन का पाठ संकलित किया गया है ।

सार यह है कि दैवसिक प्रतिक्रमण में क्षमापना चिंतन और रात्रि प्रतिक्रमण में तप चिंतन, ४ लोगस्स के साथ अवश्य करना चाहिये । लोगस्स के पाठ के लिये मूलपाठ में ऐसा स्पष्ट कहा गया है कि **पूरा पाठ बोलना** जिसका तात्पर्य यह है कि अंतिम गाथा के तीन चरण नहीं छोडना । इससे तीन चरण छोडने की परंपरा का निषेध होता है । शेष विधि परंपरानुसार एवं उत्तराध्ययन सूत्र के समाचारी अध्ययन अनुसार एवं आवश्यक सूत्र अनुसार बराबर है ।

अंतिम ग्यारहवें सूत्र में यहाँ भाव आवश्यक करने का फल दर्शाया गया है जो प्रतिक्रमण की प्रेरणात्मक पर्याप्त भार वाला है। एकाग्रचित पूर्वक प्रतिक्रमण करने से ऐसा अनुपम लाभ अवश्य संभव है ।

पाँच एवं छ प्रकार के प्रतिक्रमण :-

[१२] कई विहेणं भंते ! आवस्सयं ? गोयमा ! पंचविहं आवसयं, तंजहा- देवसियं राइयं पक्खियं चउमासियं संवच्छरियं । पक्खिए वा चउमासिए वा संवच्छरीय दिवसे पढमं देवसियं पच्छा पव्वदिवसं *जाव* संवच्छरियं आवस्सयं करेज्जा णणत्थ देवसियं पच्चक्खाण वि पच्छा करेज्जा ।

कई विहेणं भंते ! पडिक्कमणे ? गोयमा ! छव्विहे पडिक्कमणे पण्णत्ते तंजहा- उच्चार पडिक्कमणे, पासवण पडिक्कमणे, इत्तरिए, आवकहिए, जं किंचि मिच्छा, सोवणंतिए काले पडिक्कमणे सया करेज्जा । मोक्खमग्ग विसोहणट्ठे गोयमा! पडिक्कमणे अत्थि । पडिक्कमणे करेमाणा जीवा मुत्तिमग्गे खिप्पं गमिस्संति ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! आवश्यक कितने प्रकार के होते हैं ? हे गौतम ! आवश्यक के पाँच प्रकार है- देवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक एवं संवत्सरिक । इसमें पक्खी चौमासी संवत्सरी के दिन दो बार आवश्यक होता है । पहली बार देवसिक और दूसरी बार उस पर्व दिन का । विशेष यह है कि प्रत्याख्यान अंत में एक बार होता है।

हे भगवन् ! प्रतिक्रमण कितने प्रकार के है ? हे गौतम ! प्रतिक्रमण ६ प्रकार के है- (१) उच्चारप्रतिक्रमण (२) पासवणप्रतिक्रमण (३) अल्पकालिक प्रतिक्रमण (४) आजीवन का प्रतिक्रमण (५) तत्काल मिच्छामि दुक्कडं रूप प्रतिक्रमण (६) स्वप्नांतिक प्रतिक्रमण। यथासमय ये प्रतिक्रमण करने चाहिये । हे गौतम ! ये प्रतिक्रमण मोक्ष मार्ग की आराधना में विशुद्धि कारक है और इस तरह विशुद्धि युक्त प्रतिक्रमण करने वाले शीघ्र मोक्ष गति को प्राप्त करते हैं ।

विवेचन :- यहाँ मूल पाठ से पर्व दिवसों के दो प्रतिक्रमण की पुष्टी होती है । फिर भी परंपरा से कई श्रमण समुदाय दो प्रतिक्रमण साल में कोई दो बार कोई तीन बार और कोई ४ बार अपनी अपनी समझ अनुसार करते हैं । परंतु प्रस्तुत सूत्रानुसार २५ बार दो प्रतिक्रमण करने चाहिये अर्थात् वर्ष में २४ पक्खी-चौमासी और एक संवत्सरी

का । दो प्रतिक्रमण के नाम से समाज में कषायों का और अपने अहं का पोषण किया जाता है वह कर्म बंध का कारण बनता है । प्रत्येक साधक को यह ध्यान रखना उत्तम होता है कि परंपरा भेद जहाँ भी हो उसके विषय में तटस्थ भावों में रहना चाहिये। राग-द्वेष या अहं भाव से अपनी आत्मा को सुरक्षित रखना चाहिये। छद्मस्थों के जमाने में ऐसे कई मत-मतांतर बन जाना शक्य है पर उससे कर्मबंध की प्रवृत्तियें करना आत्मार्थी साधकों के लिये त्याज्य समझना चाहिये ।

समाज में कुछ लोग दो प्रतिक्रमण के नाम से ही चिढते हैं और कोई २५ बार दो प्रतिक्रमण की जगह दो या तीन या चार बार ही करके भी अपने अहं का पोषण करते हैं उन्हें इस सूत्रपाठ से सबक लेना चाहिये ।

तीर्थयात्रा का सच्चा फल प्रतिक्रमण से :-

[१३] अणउत्थिया णं भंते ! एवं भासंति एवं पण्णवेंति एवं परूवेंति तित्थेणं गच्छमाणा जीवा अपुव्वरयणस्स सवणेणं णाणदंसणचरित्त तवं पि लभंति । से कहमेयं भंते ! एवं ? गोयमा ! जण्णं अणउत्थियाणं एवं पण्णवेंति एवं परूवेंति तित्थेणं गच्छमाणा जीवा अपुव्वरयणस्स सवणेण णाणदंसण चरित्त तवंपि लभंति ते जीवा खिप्पं सिज्झिसंति। तं णं गोयमा ! मिच्छावयणं ।

से केणट्ठेणं भंते ? गोयमा ! अडसट्ठी तित्थाइं सम्मत्त जढाइं भवंति । तत्थ गच्छमाणा जीवा णाणदंसणचरित्ततवं लभंति तं मिच्छावयणं वियाणेहि । अहं पुण गोयमा ! एवं आइक्खामि एवं भासामि एवं परूवेमि जे णं जीवा निच्चमेवं उभओकालं भाव सुद्धं छ आवस्सयं उवट्ठवेंति ते णं जीवा अपुव्वरयणस्स सवणेणं णाणदंसणचरित्ततवं सुद्धं लभंति ते जीवा खिप्पं सिज्झिसंति ।

से केणट्ठेणं भंते एवं वच्चइ ? गोयमा ! मए चउविहे तित्थे पण्णत्ते तंजहा- समणा समणीओ सावगा साविगाओ । एयाणं भत्ति पुव्वं वेयावडियं करेमाणे जीवा खिप्पं सिद्धिं गमिस्सति, एस तित्थे परमतित्थे ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस तरह कहते हैं, निरूपण करते हैं कि तीर्थों की यात्रा करने से जीव वहाँ अपूर्व रत्न(ज्ञान)

श्रवण से ज्ञान दर्शन चारित्र तप की प्राप्ति करता है । तो क्या वह कथन ठीक है ?

हे गौतम ! जो भी लोग ऐसा कहते हैं या परूपण करते हैं कि तीर्थों में भ्रमण करने से ज्ञान सुनकर जीव ज्ञान दर्शन चारित्र तप की प्राप्ति कर ***यावत्*** शीघ्र मुक्ति प्राप्त करते हैं । हे गौतम ! वह मिथ्यावचन है । हे भगवन् ! ऐसा क्यों ? हे गौतम ! अडसठ तीर्थों में भ्रमण से समकित खराब होती है या नष्ट होती है । और वहाँ ज्ञान श्रवण से ज्ञान दर्शन चारित्र तप की प्राप्ति का कथन भी मिथ्या है । हे गौतम ! मैं इस तरह कहता हूँ, प्ररूपण, निरूपण करता हूँ कि जो जीव सदा उभयकाल प्रतिक्रमण शुद्ध भावावश्यक करते हैं वे जीव अनुपम ज्ञान श्रवण-उपलब्ध कर शुद्ध ज्ञानदर्शन चरित्र की यथाक्रम से प्राप्ति करके शीघ्र मुक्तिगामी होते हैं ।

हे भगवन् ! ऐसा क्यों ? हे गौतम ! मैंने चार प्रकार के तीर्थ कहे हैं यथा- श्रमण, श्रमणी, श्रावक, श्राविका; इनकी भक्ति पूर्वक सेवा शुश्रुषा करने से जीव शीघ्र ही सिद्ध गति को प्राप्त करते हैं क्योंकि ये ही चार परम तीर्थ है ।

विवेचन :- उपरोक्त मिथ्या कथन के आधार से बहु संख्यक लोकप्रवाह तीर्थ यात्रा से विशुद्धि और मुक्ति की प्राप्ति समझता है किंतु यहाँ इस प्रवृत्ति की मान्यता को अनुपयुक्त सिद्ध किया है। तदनुसार जैन अजैन जो भी लोग तीर्थयात्रा भ्रमण की गरिमा दिखाकर जोर सोर से प्रचार करते हैं उसे यहाँ मान्यता नहीं दी गई है । किंतु निषेध करने के साथ सच्चे चार तीर्थों का कथन कर उनकी सेवा भक्ति आदि करने को श्रेष्ठ कर्तव्य तथा मुक्ति पथ गामी श्रेष्ठ मार्ग बताया है । समझदारों को इस शास्त्र वचन पर ध्यान देना चाहिये और साधु-साध्वी आदि का जो स्वभाविक संयोग मिले तो उनकी सेवा भक्ति का लाभ लेकर अपने को कृतार्थ समझना चाहिये । **चार तीर्थ सिवाय पर्वतों को तीर्थ मानकर फिरते रहना आगम विरुद्ध आचरण है।**

अतिचारों की शुद्धि कर्ता की मुक्ति :-

[१४] जण्हं अइयाराणं सया आयाओ भिण्णे करंति, तेसिं

पज्जुवासणियाए भंते ! जीवा किं लभंति ? गोयमा ! सवणं लभंति । सवणेणं भंते ! कि फले ? गोयमा ! णाण फले, णाणेणं भंते ! किं फले ? गोयमा ! विण्णाण फले । विण्णाणेणं भंते! किं फले ? गोयमा ! पच्चक्खाण फले, पच्चक्खाणेणं भंते ! किं फले ? गोयमा ! संजमफले, संजमेणं भंते ! किं फले ? गोयमा ! अणण्हए फले, अणण्हएणं भंते ! किं फले ? गोयमा ! तवफले, तवेण भंते किं फले ? गोयमा! वोदाणफले, वोदाणेणं भंते ! किं फले? गोयमा अकिरियाफले, अकिरियाणं भंते ! किं फले ? गोयमा! सिद्धिगईगमणं फले, सिद्धिगइगमणेणं भंते! किं फले ? गोयमा ! अव्वाबाहसुहं फले, अव्वाबाहसुहेणं भंते ! किं फले ? गोयमा अणाबाहसुहेणं जीवा पडिपुण्णं अट्ठहिं गुणेहिं अणाईय सिद्धाणं इव संजुत्ता भवंति, तंजहा- अणंतणाणं अणंत दंसणं अणाबाहसुहं वीयरायं अगमणागमणं (असरीरी) अरूवी अगुरुलहुत्तं अणंतसत्ती । सेवं भंते! सेवं भंते ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! अतिचारों की शुद्धि करके आत्मा को निर्दोष एवं पवित्र बनाने वालों की सेवा पर्युपासना करने से जीव को क्या फल होता है ? हे गौतम ! उनकी सेवा पर्युपासना से जिनवाणी श्रवण करने को मिलती है । फिर भगवती सूत्र अनुसार क्रमशः श्रवण से ज्ञान, ज्ञान से विज्ञान, फिर क्रमशः प्रत्याख्यान, संयम, अनाश्रव, तप, अकिरिया, सिद्धि और अव्याबाध सुख संप्राप्त होता है । अव्याबाध सुख संप्राप्त सिद्धात्मा पूर्ण आठ सिद्ध गुणों से युक्त हो जाते हैं । आठ गुण ये हैं- अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अव्याबाध सुख, वीतरागता, गमनागमन रहितता(अशरीरीपन), अरूपी, अगुरु-लघुत्व, अनंत शक्ति(आत्म सामर्थ्य) ।

विनय प्रतिपत्ति करते हुए शिष्य कहता है कि- हे भगवन् ! आपके वचन सत्य है प्रमाणभूत यथार्थ है । मुझे आपके भाव समझ में आ गये हैं ।

[१५] इच्चेयं समुट्ठाणसुयस्स सडावस्सग विहि णामओ पंचमो उद्देसो, हियं सुहं खमं णिस्सेयसं अणुगामियं से सव्व जीवाणं भविस्सइ ।

भावार्थ :- इस प्रकार समुत्थान सूत्र का यह "छ आवश्यक विधि"

नामक पाँचवाँ उद्देशक हितकारी सुखकारी क्षेमकारी कल्याणकारी तथा सर्व जीवों के सुखार्थ परभवगामी है ।

विवेचन :- प्रतिक्रमण से अतिचारों की शुद्धि उभयकाल करने वाले जो श्रमण होते हैं उनकी पर्युपासना-सेवा सत्संग का फल जैसा भगवती सूत्र में दर्शाया है वैसा ही भाववाला कथन यहाँ किया गया है । अतः उसका सर्व विवेचन भगवती सूत्र से समझ लेना ।

यहाँ सिद्धों के आठ गुणों का खुलासा भी किया है । वास्तव में संक्षेप में सिद्धों के गुण-८ तथा विस्तार से-३१ गुण यों दोनों प्रकार का कथन आगम सम्मत है । अंतिम आठवाँ गुण यहाँ अनंत शक्ति शब्द से कहा गया है । वह भी आत्म सामर्थ्य की अपेक्षा समझना। सांसारिक कृत्यों से, शारीरिक शक्ति से, सिद्ध भगवान परे हो गये हैं । कर्म और शरीर के अभाव में सिद्धों के सामर्थ्य का और कोई भी कर्तव्य अवशेष नहीं रहता है । इसलिये शब्द का अर्थ प्रसंगानुकूल ही समझाना चाहिये ।

मैत्री भाव प्रेरणा

'सत्वेषु मैत्री गुणीषु प्रमोदं' यह चार भावना का पाठ समुत्थान सूत्र में आया है । जो जैनी लोग किसी भी साधु-साध्वी या सम्प्रदाय के साथ अमैत्री भाव लंबे समय तक रखते हैं । गुणी संतों के साथ भी प्रमोद भाव नहीं रखते हैं, ईर्ष्या द्वेष वैर विरोध भाव रखते हैं वे सभी साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका वास्तव में कुछ समय बाद ही मिथ्यादृष्टि बन जाते है, प्रथम गुणस्थानवर्ती बन जाते हैं । वे अपनी उस आत्मदशा में धर्म के आराधक नहीं किन्तु विराधक होते हैं । उनकी गति भी विराधकपन की होती है भले ही वे बहुत बडे ज्ञानी, तपस्वी, क्रियानिष्ठ श्रमण क्यों नहीं दिखते हों ।

उद्देशक- ६ : आवश्यक के भाव

ज्ञान दर्शन के अतिचार :-

[१] से किं तं भंते ! सुयणाणस्स अइयारा पण्णत्ता ? गोयमा! सुयणाणस्स चउद्दस्सविहा अइयारा पण्णत्ता तंजहा- जं वाइद्धं वच्चामेलियं हीणक्खरं अच्चक्खरं पयहीणं विणयहीणं जोगहीणं घोसहीणं सुट्ठुदिण्णं दुट्ठूपडिच्छियं अकाले कओ सज्झाओ काले ण कओ सज्जाओ, असज्झाए सज्झाइयं, सज्झाए ण सज्झाइयं ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! श्रुतज्ञान के कितने अतिचार कहे हैं ? हे गौतम! श्रुतज्ञान के १४ अतिचार कहे हैं वे इस प्रकार हैं- (१) सूत्र पाठ ध्यान बिना इधर उधर बोले हों (२) एक सूत्र या अध्याय के पाठ को अन्य सूत्र अध्याय में बोला हो (३) उतावल या नासमझ से अक्षर कम बोले हों (४) अक्षर अधिक बोले हों । (५) पद-शब्द कम बोलें हों अर्थात् कोई शब्द छोडते हुए बोला हो (६) विनय- द्रव्य से बैठने-सोने आदि का अविनय और भाव से नम्रता रहित सूत्र पाठ बोले हों (७) संयुक्ताक्षर अर्थात् संयुक्त आधे अक्षरों को उच्चारण में छोड दिया हो । (८) ह्रस्व दीर्घ उच्चारण की घोष शुद्धि नहीं रखी हो । (९) अविनीत को ज्ञान दिया हो। (१०) खुद अविनीतता से ज्ञान ग्रहण किया हो। (११) अकाल में स्वाध्याय किया हो, कालिक उत्कालिक शास्त्र के समय का ध्यान नहीं रखा हो या चार संध्या के काल का ध्यान रखें बिना अकाल में स्वाध्याय किया हो । (१२) उचित काल में योग्य स्वाध्याय नहीं किया हो । आलस प्रमाद में समय बिताया हो । (१३) ३२-३४ अस्वाध्याय जो शास्त्र में कहे हैं तद्नुसार कोई भी अस्वाध्याय हो तब स्वाध्याय किया हो । (१४) ३२-३४ में से कोई भी अस्वाध्याय नहीं हो तब भी स्वाध्याय नहीं करके समय व्यर्थ गँवाया हो ।

[२] से किं तं भंते ! सम्मदंसणस्स अइयारा पण्णत्ता ? गोयमा! सम्मदंसणस्स पंचविहा अइयारा पण्णत्ता तंजहा- संका कंखा वितिगिच्छा परपासंडपसंसा परपासंडसंथवो ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! सम्यग् दर्शन(समकित) के कितने अतिचार

है ? हे गौतम ! समकित के ५ अतिचार है- (१) जिनेश्वर भगवान के वचनों में शंका रखी हो (२) अन्य मत के आडंबर आदि देखकर उनकी आकांक्षा, अभिलाषा रखी हो (३) धर्म करणी के फल के प्रति मन में शंका उत्पन्न हुई हो । (४) अन्य मत के सिद्धांत या आचरणों की प्रशंसा की हो (५) अन्य मत के प्रवर्तकों की संगति-परिचय बढाया हो ।

विवेचन :- ज्ञान के १४ अतिचार में से ८ अतिचार भूल से नासमझी से अभ्यास की कमी से लगते हैं । नवमा दसवाँ अतिचार अव्यवस्था से लगता है । ११ से १४ तक के अतिचार समय काल की लापरवाही से लगते हैं । अतः पहले गुरुगम से इन १४ अतिचारों को समझ लेना चाहिये । फिर विवेक पूर्वक ज्ञान अभ्यास करना कराना और आगम अध्ययन स्वाध्याय करना कराना चाहिये ।

समकित की प्रतिज्ञा लेते समय गुरु से समकित का सही स्वरूप समझ लेना चाहिये और प्रारंभिक धर्म सिद्धांतों का थोडा ज्ञान हासिल कर लेना चाहिये तथा समकित का स्वरूप, उनके अतिचार दोष और समकित के लक्षण आदि समझ लेने से उपर कहे पाँच अतिचारों से बचा जा सकता है । अन्यथा अतिचार रूप दोष बढकर फिर अनाचार रूप हो जाने से समकित नष्ट हो सकती है ।

चारित्र के अतिचार में एक संख्या के बोल :-

[३] से किं तं भंते ! चरित्तस्स अइयारा पण्णत्ता ? गोयमा! चरित्तस्स तिपया पण्णत्ता तंजहा- जाणइ जाणित्ता भवइ, जाणइ गिण्हित्ता भवइ, जाणइ चइत्ता भवइ । तंजहा- एगे जीवे एगे अजीवे एगे पुण्णे एगे पावे एगे आसवे एगे संवरे एगे बंधे एगा निज्जरा एगे मोक्खे एगे अणाइया अपज्जवस्सिया सिद्धा एगा अत्ता एगे वेदे एगे दंसणे एगे चरित्ते एगे तवे एगा सिद्धि एगा रिद्धि एगा लद्धी एगे णाणे एगा किरिया एगा अकिरिया, एगे दंडे एगे अदंडे, एगे विणये, एगे विण्णाणे, एगे आगमे एगे अणागमे एगे समत्ते एगे सीले एगे असीले एगे धम्मे एगे अधम्मे एगा अणत्ता एगे अलोए एगे जोगे एगे अजोगे एगे करणे एगे इंदियविसये एगे इंदिय अविसये एगे इहेव जंबूदीवे महाविदेहे

एगा विराहणा एगा आराहणा एगा गई एगा आगई एगे उववाए एगे सव्वेसु वि महाविदेहेसु अरिहंताणं भगवंताणं पियवर पउमवण्णे एगे सुमणे एगे सलिंगस्सणं सेयं वण्णाओ एगे समये एगे असमये एगा आसायणा एगा आणासायणा एगे सबले एगे णो सबले एगे अणाइण्णे एगा समाहि एगा असमाहि एगे झाणे एगे अझाणे एगे दोसे एगे अदोसे एगा सव्व जीवाणं वग्गणा एगा सव्व जीवाणं ठिई एगा चवणा एगे संजममाइए ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! चारित्र के अतिचार कौन से हैं ? हे गौतम! चारित्र के अतिचार तीन पद के रूप में कहे हैं- (१) जिनमत के जानने योग्य बोलों को, तत्त्वों को जानना, (२) आचरण करने योग्य बोलों का आचरण करना एवं (३) छोडने योग्य बोलों को छोडना, ये तीन पद कहे गये हैं इनका पालन नहीं करना तीन अतिचार रूप होता हैं। जिसमें १ से लेकर ३६ बोल इस प्रकार हैं, जिसका पहला बोल, यथा- (१) चैतन्य लक्षण रूप और ज्ञान दर्शन गुण युक्त आत्मा एक है । (२) अजीव लक्षण रूप जड एक है । (३) ४२ प्रकार से शुभ प्रकृति वेदन रूप पुण्य एक है । (४) ८२ प्रकार के अशुभ कर्म प्रकृति का वेदन रूप पाप एक है । (५) ४२ प्रकार के अशुभ कर्म आने रूप आश्रव एक है । (६) आते हुए अशुभ कर्मों को रोकने रूप संवर एक है । (७) कषाय आदि कर्म बांधने रूप बंध तत्त्व एक है। (८) बारह प्रकार के तप द्वारा कर्म क्षय करने रूप निर्जरा एक है । (९) सर्व कर्म क्षय रूप मोक्ष तत्त्व एक है । (१०) जिनके जन्म मरण आदि नहीं है ऐसे सिद्ध भगवंत एक हैं । (११) सर्व आत्माओं का चैतन्य लक्षण एक होने से संग्रहनय से आत्मा एक है । (१२) भोगने रूप कर्मों का वेदन एक है । (१३) दर्शनावरणीय कर्म क्षय रूप केवल दर्शन एक है । (१४) सामान्य रूप से देश विरति, सर्व विरति रूप चारित्र एक है । (१५) समुच्चय अपेक्षा से तप एक है। (१६) सिद्धि स्थान एक है । (१७) रिद्धि एक है । (१८) सामान्य रूप से लब्धि एक है। (१९) ज्ञानावरणीय कर्म क्षय रूप केवल ज्ञान एक है। (२०) मन, वचन, काया से पाप त्यागने रूप क्रिया एक है । (२१) अतः अकिरिया भी एक है । (२२) दुष्ट मन वचन और काया

रूप दंड एक है । (२३) अदंड भी एक है । (२४) सामान्य भेद से विनय एक है । (२५) पंडितपणा रूप विज्ञान एक है । (२६) आगम एक है। (२७) अनागम एक है । (२८) सामान्यपणे समकित एक है । (२९) शील एक है । (३०) अशील भी एक है । (३१) चलन सहाय रूप धर्मास्तिकाय एक है । (३२) स्थिरता सहायक अधर्मास्तिकाय एक है । (३३) अनात्मा एक है- प्रत्येक पदार्थ अपने अपने परिणाम से परिणत रूप होने से उनका अनुपयोग रूप लक्षण एक समान होने से उनका एकत्व समझना, जिससे अनात्मा एक है । (३४) अलोक एक है । (३५) योग सामान्य की अपेक्षा योग एक है । (३६) अयोग भी एक है । (३७) करण सामान्य की अपेक्षा एक है। (३८) इन्द्रियों का विषय सामान्य रूप से एक है । (३९) इन्द्रिय अविषय भी एक है । (४०) जंबूद्वीप का महाविदेह एक है। (४१) सामान्य रूप से विराधना एक है । (४२) आराधना भी एक है । (४३) भवांतर में जाने रूप जीव की गति एक है । (४४) आगति भी एक है । (४५) उपपात एक है । (४६) महाविदेह क्षेत्र के सभी अरिहंत भगवतों (विहरमानों) का वर्ण प्रियवर पद्मवर्ण एक है । (४७) सुमन एक है । (४८) स्वलिंगी का वस्त्र एक श्वेत वर्ण का होता है । (४९) समय एक है । (५०) असमय एक है । (५१) एक आशातना । (५२) एक अनाशातना । (५३) एक सबल दोष। (५४) असबल-निर्दोष एक । (५५) अनाचार एक है । (५६) समाधि एक है । (५७) एक असमाधि । (५८) एक ध्यान । (५९) एक अध्यान । (६०) दोष एक है । (६१) अदोष एक है । (६२) सर्व जीवों की वर्गणा एक है । (६३) सर्व जीवों की स्थिति स्थाइत्व एक है । (६४) च्यवन (मरण) एक है । (६५) सामान्य रूप से संयम आदि भी एक हैं ।

विवेचन :- संग्रह नय की अपेक्षा ये पदार्थ एक कहे जा सकते है । (१) इनको जानकर श्रद्धा करना । (२) इनमें छोडने के तत्त्वों को जानकर छोडना और (३) इनमें से जानकर आचरण करने योग्य का आचरण करना । ऐसा तीनों प्रकार का विवेक नहीं करना अतिचार होता है ।

अन्य आगमों के अनुप्रेक्षण से चारित्र के अतिचार साधु के

१२५ कहे जाते हैं । उसमें महाव्रत समिति गुप्ति के अतिचारों की गिनती की जाती है । परन्तु यहाँ वह गिनती नहीं करते हुए ठाणांग समवायांग कथित अनेक बोल जो १ से ३६ बोल में समाविष्ट होते हैं उनका संकलन किया है और संकलन करके यह बताया है कि इन सभी बोलों में से (१) जानने योग्य का सम्यग् ज्ञान नहीं किया हो, (२) आचरण करने योग्य का शुद्ध आचरण नहीं किया हो और (३) छोडने योग्य अवगुण दोषों का त्याग नहीं किया हो । ये तीन ही मोटे रूप में अतिचार सूचित किये हैं । इस प्रकार तीन अतिचार में सैकडों हजारों अतिचारों का संकलन भी कर दिया गया है, ऐसा समझना चाहिये ।

दो संख्या के बोल :-

[४] विणयमूले धम्मे दुविहे पण्णत्ते तंजहा- णाणे चेव किरिया चेव । दुविहे विणए पण्णत्ते तंजहा- लोइये चेव लोगुत्तरिए चेव। दुविहा विराहणा पण्णत्ता तंजहा- णाणे चेव किरिया चेव । दुविहा आराहणा पण्णत्ता तंजहा- विज्जा चेव चरणकरणे चेव । दोहिं वि करणेहिं संजुत्ता मुत्तिमग्गा पण्णत्ता तंजहा- णाणे चेव किरिया चेव ।

दुविहे दंडे पण्णत्ते तंजहा- अट्ठादंडे चेव अणट्ठादंडे चेव। दुविहे बंधणे पण्णत्ते तंजहा- रागबंधणे चेव दोसबंधणे चेव । दुविहे लोए पण्णत्ते तंजहा- जीवे चेव अजीवे चेव । दुविहा रासी पण्णत्ता तंजहा- जीवरासी य अजीवरासी य । दोण्हं पुरिमपच्छिम अरिहंताणं सलिंगे वा भंडोवगरणोवही णियमेण एगं सेयं वण्णओ पण्णत्ता । दोण्णं सलिंगेणं दव्वा पण्णत्ता तंजहा- सुद्धा चेव असुद्धा चेव, गोयमा ! सेयं वत्थं सुद्धा, अवसेसा सव्व दव्वा वि असुद्धा । दोण्हं सलिंगस्स णं गुणा पण्णत्ता तंजहा- णिस्साणं वा सुहुम तसकाय रक्खणं वा। दुविहे धम्मे पण्णत्ते तंजहा- लोइए चेव लोगुत्तरिए चेव । दोण्हं ठाणाणं सावगाणं अवस्सं पच्चक्खाणं करित्तए तंजहा- परत्थीगमणे चेव वेस्सागमणे चेव । दुविहे धम्मे पण्णत्ते तंजहा- सागार धम्मे चेव अणगार धम्मे चेव ।

भावार्थ :- विनय मूल धर्म दो प्रकार का है- ज्ञान एवं क्रिया, (२)

दो प्रकार का विनय- लौकिक एवं लोकोत्तर (३) दो प्रकार की विराधना- ज्ञान की, किरिया की (४) दो प्रकार की आराधना- विद्या, चरणकरण (५) दो से युक्त मुक्ति मार्ग- ज्ञान और किरिया (६) दो प्रकार के दंड- अर्थ दंड, अनर्थ दंड । (७) दो प्रकार के बंधन- राग बंधन, द्वेष बंधन । (८) दो पदार्थ मिलकर लोक है- जीव, अजीव । (९) लोक में राशि दो- जीव राशि, अजीव राशि। (१०) दो तीर्थंकरो के श्रमणों के वस्त्र का वर्ण नियमा श्वेत होता है- प्रथम तीर्थंकर और अंतिम २४वें तीर्थंकर । (११) द्रव्य स्वलिंग दो प्रकार के शुद्ध और अशुद्ध । इसमें श्वेत वर्ण शुद्ध, बाकी अशुद्ध। (१२) स्वलिंग के दो प्रकार के गुण- (१) अवलंबन भूत आधार होना और त्रस स्थावर जीवों का रक्षक होना । (१३) धर्म के दो प्रकार- लौकिक धर्म, लोकोत्तर धर्म (१४) दो स्थान श्रावकों के लिये अवश्य त्याज्य है- परस्त्री गमन और वेश्यागमन । (१५) दो प्रकार का धर्म- आगार धर्म, अणगार धर्म । इन बोलों संबंधी तीन अतिचार पूर्ववत् समझ लेना ।

तीन संख्या के बोल :-

[५] तिविहे आगमे पण्णत्ते तंजहा- अत्तागमे, अणत्तागमे, परंपरागमे। तिविहे आगमे पण्णत्ते तंजहा- सुत्तागमे, अत्थागमे, तदुभयागमे । तिविहे दंसणविणयमूलधम्मे पण्णत्ते तंजहा- सम्मदंसणे, ओहिदंसणे, केवलदंसणे । तिविहा सुयणाणस्स अणुओगा सासया पण्णत्ता तंजहा- चरणकरणाणुओगे, दव्वाणुओगे, गणणाणुओगे । तिविहा सद्दा पण्णत्ता तंजहा- सुब्भि सद्दा, दुब्भि सद्दा, मिसिय सद्दा ।

तिविहा सासया सलिंगिणो पण्णत्ता तंजहा- अरिहंता, आयरिया, उवज्झाया । तिविहे धम्मे पण्णत्ते तंजहा- कल्लाणे चेव पावे चेव पावकल्लाणे चेव । तिविहा गुत्ती पण्णत्ता तंजहा- मणगुत्ती, वयगुत्ती कायगुत्ती । तिविहा अगुत्ती पण्णत्ता तंजहा- मणअगुत्ती, वयअगुत्ती, कायअगुत्ती।

तिविहे दंडे पण्णत्ते तंजहा- मणदंडे वयदंडे कायदंडे। तिविहे अदंडे पण्णत्ते तंजहा- मण अदंडे वय अदंडे काय अदंडे । तिविहा

विराहणा पण्णत्ता तंजहा- णाणविराहणा *जाव* चरित्तविराहणा । तिविहा आराहणा, पण्णत्ता तंजहा- णाण आराहणा *जाव* चरित्त आराहणा । तिविहा विराहणा पण्णत्ता तंजहा- जहण्ण विराहणा, मज्झिम विराहणा, उक्कोस विराहणा । तिविहा आराहणा पण्णत्ता तं जहा- जहण्णाराहणा *जाव* उक्कोसाराहणा ।

तिविहे गारवे पण्णत्ते तंजहा- इड्ढीगारवे रसगारवे साया गारवे । तिविहे वीरिए पण्णत्ते तंजहा- बालवीरिए बालपंडियवीरिए पंडियवीरिए । तिविहे दुप्पणिहाणे पण्णत्ते तं जहा- मणदुप्पणिहाणे वयदुप्पणिहाणे कायदुप्पणिहाणे । तिविहे सुप्पणिहाणे पण्णत्ते तंजहा- मणसुप्पणिहाणे वयसुप्पणिहाणे कायसुप्पणिहाणे । तिविहे सल्ले पण्णत्ते तंजहा- मायासल्ले, णियाणसल्ले, मिच्छादंसणसल्ले ।

तिविहे वेए पण्णत्ते तंजहा- इत्थीवेए, पुरुसवेए, णपुंसगवेए । तिविहे मेहुणे पण्णत्ते तंजहा- दिव्वं वा माणुस्सं वा तिरिक्खजोणियं वा । तिविहे जोगे पण्णत्ते तंजहा- मणजोगे वयजोगे कायजोगे । तिविहे करणे पण्णत्ते तंजहा- करेइ करावेइ अणुमोदेइ । तिविहे लोए पण्णत्ते तंजहा- उड्ढलोए अहोलोए तिरियलोए ।

तिविहे लिंगे पण्णत्ते तंजहा- इत्थीलिंगे पुरिसलिंगे, णपुंसग लिंगे। तिविहे लिंगे पण्णत्ते तंजहा- गिहीलिंगे कुलिंगे सलिंगे(दव्व लिंगे) । तिविहे सुप्पणिहाणे पण्णत्ते तंजहा- सलिंग सुप्पणिहाणे णाणसुप्पणिहाणे, किरियासुप्पणिहाणे ।

भावार्थ :- (१) आगम के तीन प्रकार- (१) आत्मागम- तीर्थंकरों का कहा (२) अणत्तागम-गणधरों का कहा (३) परंपरागम- गणधर के द्वारा शिष्यों को कहा गया । अथवा दूसरा अर्थ- (१) अर्थ रूप आगम तीर्थंकरों के लिये आत्मागम, मूल रूप आगम गणधरों के लिये आत्मागम है । (२) अर्थरूप आगम गणधरों के लिये अनात्मागम । (३) गणधर शिष्यों के लिये अर्थरूप आगम परंपरागम । (२) आगम तीन प्रकार के है- मूल पाठरूप सुत्तागमे, अर्थरूप अत्थागमे और उभयरूप तदुभयागमे । (३) विनय मूल धर्म के दर्शन तीन- सम्यग्दर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन । (४) श्रुतज्ञान का शाश्वत अनुयोग तीन प्रकार का है- चरणकरणानुयोग, द्रव्यानुयोग और गणितानुयोग।

धर्मकथानुयोग परिवर्तनशील होने से शाश्वत नहीं होता है। (५) तीन प्रकार के शब्द- अच्छे, खराब और मिश्र (६) तीन सदा स्व लिंगी ही होते हैं, रहते हैं- अरिहंत, आचार्य, उपाध्याय । अन्य साधु कारण से परिस्थिति से अल्प समय कोई भी लिंग धारण कर सकते हैं । (७) लोक में धर्म के भी तीन प्रकार- कल्याणकारी, पापकारी और उभय ।

(८) गुप्ति तीन- मन गुप्ति, वचन गुप्ति, काया गुप्ति । (९) अगुप्ति भी तीन । (१०) दंड तीन- मनदंड आदि । (११) अदंड भी तीन- मन अदंड आदि । (१२) तीन विराधना- ज्ञान, दर्शन, चारित्र की । आराधना तीन- ज्ञान, दर्शन, चारित्र की । (१३) तीन विराधना- जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट । तीन आराधना- जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट । (१४) तीन प्रकार के गारव-अभिमान- १. राजा आदि की रिद्धि का गर्व, २. इन्द्रिय विषयसुख का गर्व, ३. शरीर के शाताकारी होने का गर्व (१५) तीन प्रकार का वीर्य- बाल वीर्य, पंडित वीर्य, बाल-पंडित वीर्य ।

(१६) तीन दुष्प्रणिधान- मन वचन काया की दुष्कृत्यों में एकाग्रता । (१७) तीन सुप्रणिधान- शुभ कृत्यों में मन वचन काया की एकाग्रता । (१८) तीन शल्य- माया, निदान और मिथ्यादर्शन । जिस प्रकार भाला-तीर आदि शरीर में लगने पर या कांटा कीला पाँव में लगने पर वह खटकता है, दुःखदायक, पीडाकारी बना रहता है, वैसे ही तीन शल्य आत्मा की सुख समाधि, सुगति के बाधक बनकर आत्मा को दुखी बनाये रखते हैं । निदान- अपने तप आदि अनुष्ठानों के बदले में कुछ भौतिक पौद्गलिक सामग्री प्राप्ति के अध्यवसायों का संकल्प । मिथ्यादर्शन- जिनभाषित तत्त्व, सिद्धांत, मार्ग के सिवाय खोटी श्रद्धा-मान्यता रखनी, प्ररूपणा करनी।

(१९) तीन वेद- स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद- अपने से प्रतिपक्षी लिंग वाले के साथ भोगाकांक्षा को वेद कहते है और शरीर को लिंग अर्थात् स्त्रीलिंग आदि कहते हैं । लिंग वाले तीनों की मुक्ति उस भव में होना आगम सम्मत है किंतु वेद तीनों समाप्त होने पर अर्थात् नहीं रहने पर, वेद भाव नष्ट होने पर जीव अवेदी,

वीतरागी और मुक्तिगामी बन सकता है । (दिगंबर जैन स्त्रीलिंग को मुक्ति नहीं मानकर स्त्री वेदी को मुक्ति मानते हैं और मनमानी तर्क से बुद्धि से संतोष करते हैं परंतु उन्हें जिनशासन के मौलिक आगम द्वादशांगी में से समस्त आगमों को अस्वीकार करना पडा, झूठा प्रचार करके कि सब विच्छेद हो गये । किसी भी परंपरा में अपनी परंपरा का समस्त ज्ञान विच्छेद कभी होता ही नहीं है, यह ध्रुव सत्य है । फिर भी ऐसा प्रचार करना मानना उनके अपने अभिनिवेष को धूल से ढांकने के समान है । (२०) तीन मैथुन (विषयभोग)- देवता संबंधी, मनुष्य संबंधी और तिर्यंच (पशुपक्षी) संबंधी । (२१) तीन योग- मन, वचन, काया । (२२) तीन करण- करना, कराना, अनुमोदन । (२३) तीन लोक- उर्ध्वलोक अधोलोक तिरछालोक । (२४) तीन लिंग- स्त्रीलिंग पुरुषलिंग और नपुंसकलिंग(शरीर) । (२५) तीन सुप्रणिधान-श्रेष्ठ कर्तव्य- स्वलिंग, ज्ञान और क्रिया-चारित्र। इन सभी में जानने योग्य तत्त्वों को जानना, छोडने योग्य अवगुणों का त्याग करना, ग्रहण करने योग्य सद्गुणों को स्वीकारना चाहिये । ऐसा नहीं करना और विपरीत करना अतिचार है ।

चार संख्या के बोल :-

[६] चउविहे विणयमूलधम्मे पण्णत्ते तंजहा- णाणे दंसणे चरित्ते तवे। चउहिं कारणेहिं संजुत्तं मोक्खमग्गं पण्णत्तं तंजहा- णाणे दंसणे चरित्ते तवे । चउव्विहे सुयणाणस्स मुलाणुओगा पण्णत्ता तंजहा- चरणकरणाणुओगे जाव धम्म कहाणुओगे । चउव्विहा धम्मदारा पण्णत्ता तंजहा- खंती मद्दवं अज्जवं तोसं।

चउविहा कसाया पण्णत्ता तंजहा- कोहे *जाव* लोहे । चउविहा भावणा पण्णत्ता तंजहा- मित्तीभावणा, पमोयभावणा, कलुणभावणा, मज्झत्थभावणा । चउविहा भावणाणं ठाणा पण्णत्ता तंजहा- सव्वे जीवा, सव्वे गुणीजीवा, सव्वे दुही जीवा, सव्वे पडिकूलाजीवा । चउविहा विगहा पण्णत्ता तंजहा- इत्थीकहा, भत्तकहा, देसकहा, रायकहा । चउविहा कहा पण्णत्ता तंजहा- अक्खेवणी, विक्खेवणी, संवेगणी, णिव्वेयणी ।

चउविहा एसणा पण्णत्ता तंजहा- पिण्डेसणा, सिज्जा

एसणा, वत्थोवही उवगरणेसणा, पत्तेसणा । चउव्विहा भत्तपाणाइं भुंजमाणेहिं दोसा पण्णत्ता तंजहा- इंगालं करेइ, धूमं करेइ, संजोयं करेइ, अप्पमाणं करेइ । चउविहा सण्णा पण्णत्ता तंजहा- आहारसण्णा, भयसण्णा, मेहुणसण्णा, परिग्गहसण्णा। चउव्विहा असण्णा पण्णत्ता तंजहा- आहार असण्णा *जाव* परिग्गह असण्णा। चउव्विहा गई पण्णत्ता तंजहा- णरगगई *जाव* देवगई ।

चउव्विहा इहेव जंबुदीवे महाविदेहेसु तित्थयरा पण्णत्ता तंजहा- सीमंधरे जुगमंधरे बाहू सुबाहू । चउण्हं कम्माणं विहंतित्ताणं अरिहंता भवंति तंजहा- णाणावरणिज्जं दंसणावरणिज्जं मोहणिज्जं अंतरायं । चउण्हं कम्माणं हंतित्ताणं अरिहंताणं भगवंताणं णिच्छयेण गुणा पण्णत्ता तंजहा- अणंतणाणं *जाव* अणंतवीरियं(अणंत सत्ती) । चउण्हं कम्माणं खवित्ताणं सिद्धा भवंति तंजहा- वेयणिज्जं आउयं णामं गोयं । चउण्हं कम्माणं खवित्ताणं सिद्धाणं भगवंताणं गुणा पण्णत्ता तंजहा- अणंतसुहं *जाव* अगुरुलहुं । चउण्हं पयहराणं णाणा पण्णत्ता तंजहा- मइणाणं सुयणाणं ओहीणाणं मणपज्जवणाणं।

चत्तारि झाणा पण्णत्ता तंजहा- अट्टझाणे *जाव* सुक्कझाणे। चत्तारि धम्म सुक्कझाणस्स मूलंगा पण्णत्ता तंजहा- पिण्डत्थे पयत्थे रूवत्थे रूवातीते । चत्तारि झाणठाणा पण्णत्ता तंजहा- लोगालोगसरूवाओ, पंचपरमेट्ठी पयाओ-नामगुण सरूवाओ, अरिहंतपयणामगुणसरूवाओ, सिद्धाणपयणामगुणसरूवाओ। चउविहा विराहणा पण्णत्ता तंजहा- णाणविराहणा *जाव* तवविराहणा । चउविहा आराहणा पण्णत्ता तं जहा- णाण आराहणा दंसणाराहणा चरित्ताराहणा तवाराहणा ।

भावार्थ :- (१) विनयमूल धर्म के चार प्रकार है- ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप (२) चार कारणों से संयुक्त मोक्ष मार्ग कहा गया है- ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप । उत्तराध्ययन के २८ वें मोक्षमार्ग अध्ययन में भी यही कहा गया है । (३) श्रुतज्ञान के चार अनुयोग है- द्रव्यानुयोग, चरणकरणानुयोग, गणितानुयोग और धर्मकथानुयोग। (४) धर्म के चार द्वार- क्षमा, नम्रता, सरलता और संतोष । (५) चार कषाय- क्रोध, मान, माया, लोभ । (६) चार उत्तम भावना- मैत्री भावना, प्रमोद भावना, करूणा भावना और मध्यस्थ भावना। (७)

उपरोक्त चार भावनाओं के चार आधार स्थान- (१) सर्व जीवों पर मैत्री भावना (२) गुणीजनों के प्रति प्रमोद भावना । (३) सर्व दुखी जीवों पर करुणा भावना । (४) सर्व प्रतिकूल जीवों पर मध्यस्थ भावना। **(८)** चार विकथा- (१) स्त्रीकथा, (२) भोजन के पदार्थों संबंधी कथा, (३) देश राज्य संबंधी कथा, (४) राजा संबंधी कथा, **(९)** चार प्रकार की कथा- (१) आक्षेपिणी- धर्म तत्त्व के प्रति आकर्षित करने वाली (२) विक्षेपिणी- उन्मार्ग को छोडानेवाली (३) संवेगिनी- वैराग्य पैदा करने वाली (४) त्याग प्रत्याख्यान में आगे बढाने वाली निर्वेदिनी ।

(१०) चार एषणा- पिण्डेषणा, शय्याएषणा, वस्त्र-उपधि उपकरण एषणा और पात्रेषणा । **(११)** चार परिभोगेषणा के दोष- (१) आहार की प्रशंसा (२) आहार की निंदा (३) संयोग मिलाकर स्वाद बढाना (४) प्रमाण से अधिक खाना । इस तरह करने से साधु को दोष लगता है । **(१२)** चार संज्ञा- आहार संज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रह संज्ञा । **(१३)** चार असंज्ञा- उपरोक्त चारों से रहित या उदासीन रहना । **(१४)** चार गति- नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव । **(१५)** जंबूद्वीप के महाविदेह में चार विहरमान तीर्थंकर- सीमंधर, युगमंधर, बाहु, सुबाहु । **(१६)** चार कर्म को हनन करने से क्षय करने से जीव अरिहंत(केवली) बनता है- ज्ञानवरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अंतराय । **(१७)** चार कर्मक्षय से उत्पन्न होने वाले चार गुण- अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत वीर्य-पंडित वीर्य और अनंत आत्मशक्ति । **(१८)** चार कर्म के क्षय होने पर केवली की मुक्ति होती है- वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्म । **(१९)** चार कर्म क्षय से सिद्धों में चार गुण- अनंत सुख, स्थिरता, अरूपी, अगुरुलघु । **(२०)** पद धारण करने वालों के चार ज्ञान- मति, श्रुति, अवधि और मनःपर्यव। केवल ज्ञानी कोई पद लेते नहीं । **(२१)** चार ध्यान- आर्त ध्यान, रौद्र ध्यान, धर्म ध्यान, शुक्लध्यान **(२२)** धर्म-शुक्ल ध्यान के चार अंग- पिंडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत। किसी में भी चित्त को एकाग्र करना-(१) पदार्थ में, वस्तु में (२) वाक्य, शब्द में (३) रूपी वस्तु में (४) अरूपी वस्तु सिद्ध आदि

में। **(२३)** ध्यान के चार स्थान- (१) लोक अलोक स्वरूप स्थान में (२) पंच परमेष्ठी पद, नाम और गुण में (३) अरिहंत पद नामगुण में (४) सिद्ध पद नाम, गुण में । **(२४)** चार विराधना- ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप । **(२५)** चार आराधना- ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप। इन चारों में दोष लगना विराधना है और दोष रहित आचरण आराधना है । इन सब चार संख्या के बोलों के तीन अतिचार उपर कहे अनुसार समझना ।

पाँच संख्या के बोल :-

[७] पंचविहे णाणे पण्णत्ते तंजहा- मइणाणे सुणणाणे ओहीणाणे मणपज्जवणाणे केवलणाणे । पंचविहे दंसणे पण्णत्ते तंजहा- सम्मदंसणे चक्खुदंसणे अचक्खुदंसणे ओहीदंसणे केवलदंसणे । पंचण्हं सम्मदंसणस्स वा समदिट्ठीणं वा अइयारा पण्णत्ता तंजहा- संका *जाव* परपासंडसंथवो । पंचविहे चरित्ते पण्णत्ते तंजहा- सामाइय चरित्ते *जाव* अहक्खायचरित्ते ।

पंचविहे लिंगे पण्णत्ते तंजहा- गिहीलिंगे अण्णलिगे कुलिंगे दव्वलिंगे सलिंगे । पंचण्हं सलिंगस्स णं अइयारा पण्णत्ता तंजहा- मुहपत्तिं अप्पडिलेहिए दुप्पडिलेहिए अप्पमज्जिए दुप्पमज्जिए मुहपतिं णो मुहे बंधेइ । पंचण्हं दव्वलिंगस्स अइयारा पण्णत्ता तंजहा- दव्वलिंगे भंडउवगरणोवहिं अप्पडिलेहिए दुप्पडिलेहिए अप्पमज्जिए दुप्पमज्जिए दव्वलिंगे भंडउवगरणोवहिं जहाठाणे णो ठवेइ ।

पंचण्हं पुरिम-पच्छिम-तित्थयराणं महव्वया पण्णत्ता तंजहा- सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं, सवाओ परिग्गहाओ वेरमणं । पंचण्हं पढमे महवयस्स अइयारा पण्णत्ता तंजहा- णो इरियासमिए, णो मणोसमिए, णो भासासमिए, णो आयाणणिक्खेवणासमिए, णो आलोयभायणभोयणं ।

पंचण्हं दुच्चे महवयस्स अइयारा पण्णत्ता तंजहा- णो अणु-वीइ भासणया एवं कोहेण लोहेण भएण हासेण भासणया। पंचण्हं तच्चे महावयस्स अइयारा पण्णत्ता तंजहा- णो उग्गहं अणुण्णवणा णो

उग्गहसीमजाणणया, णो सयमेव उग्गहं अणुगिण्हणया, णो साहम्मिय उग्गहं अणुण्णविय परिभुंजणया, णो साहारण भत्तपाणं अणुण्णविय पडिभुंजणया । पंचण्हं णो उग्गहा दोसा पण्णत्ता तंजहा- देविंदेहिं रायेहिं सागारियेहिं गाहावईहिं साहम्मियेहिं ।

पंचण्हं चउत्थे महावयस्स अइयारा पण्णत्ता तंजहा- इत्थी-पसु -पंडग-संसत्तग-सयणासण-सेवियं भवइ, इत्थीणं कहं कहित्ता भवइ, इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं पुणो पुणो आलोइत्ता णिज्झाइत्ता भवइ, पुव्वकीलियं अणुसरित्ता भवइ, णिच्चमेवं अइमत्तं व पणीय आहारमाहारित्ता भवइ । एस ट्ठाणे णिग्गंथी एवामेवं भणेज्जा- पुरुस-पसु-पंडग-संसत्तग-सयणासणं सेवित्ता भवइ, पुरिसाणं कहं कहित्ता भवइ, पुरुसाणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं पुणो पुणो आलोइत्ता निज्झाइत्ता भवइ *जाव* णिच्चमेवं अइमायं च पणीयमाहारमाहरित्ता ।

पंचमे महव्वए पंच अइयारा पण्णत्ता तंजहा- णो सोइंदिय रागोवरई, णो चक्खुइंदिय रागोवरई, णो घाणिंदिय रागोवरई, णो जिब्भिंदिय रागोवरई, णो फासिंदिय रागोवरई, (णो सद्द रागोवरई *जाव* णो फास रागोवरई) ।

पंचण्हं पंचण्हं सलिंगस्स वा दव्वलिंगस्स वा धम्मोवगरणाणं वा पंचमहव्वयाणं वा भावणा पण्णत्ता तंजहा- मुहपत्तिं पडिलेहिय *जाव* फासिंदिए रागोवरई ।

पंचविहे कामगुणे पण्णत्ते तंजहा- सद्दे *जाव* फासे । पंच विहा उग्गहगहणा पण्णत्ता तंजहा- देविंदेहिं *जाव* साहम्मिएहिं। पंचविहा देवा पण्णत्ता तंजहा- भावियप्पा, भवणवई वाणमंतरा जोइसिया वेमाणिया ।

पंचविहे णाणविणए पण्णत्ते तंजहा- आभिणिबोहिय णाणविणए *जाव* केवलणाणविणए । पंचविहे चरित्तविणएपण्णत्ते तंजहा- सामाइयचरित्तविणए *जाव* अहक्खायचरित्तविणए । पंचण्हं समिईओ पण्णत्ताओ तंजहा- इरियासमिई *जाव* उच्चार पासवण खेलजल्लमल्ल सिंघाण परिठावणिया समिई । पंच किरिया पण्णत्ता तंजहा- काइया अहिगरणिया पाउसिया पारितावणिया पाणाइवाइया ।

पंच सलिंगी पण्णत्ता तं जहा- अरिहंता, आयरिया, उवज्झाया साहु साहुणी । पंचण्हं सलिंगस्स णं णिच्चं वज्जणिज्जा-हिंसा किरिया पण्णत्ता तंजहा- पडिरूवं अप्पडिलेहिए *जाव* मुहपत्तिं णो मुहे बंधेइ। पंचण्हं दव्वलिंगस्स णिच्चमेवं वज्जणिज्जा हिंसा किरिया पण्णत्ता तंजहा- दव्व लिंगे भंडोवगरणोवहियं अप्पडिलेहिए *जाव* जहाठाणे णो ठावेइ । पंचण्हं पढमे अंगे आयारा पण्णत्ता तंजहा- णाणायारे *जाव* वीरियायारे। पंचविहे सज्झाए पण्णत्ते तंजहा- वायणा *जाव* धम्मकहाणुओगा पुणो पुणो चिंतेज्जा । पंचविहा जाई पण्णत्ता तं जहा- एगेंदिया *जाव* पंचेंदिया । पंचण्हं महाविदेहवासेसु तित्थयराणं पंचधणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं तणु पण्णत्ता ।

भावार्थ :- (१) ज्ञान के पाँच प्रकार- मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्यवज्ञान और केवलज्ञान । (२) दर्शन के पाँच प्रकार- सम्यग् दर्शन, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन। (३) सम्यग्दृष्टि के पाँच अतिचार- शंका, कांक्षा, वितिगिच्छा, परमत प्रशंसा, परमत का परिचय । (४) पाँच चारित्र- सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहार विशुद्ध, सूक्ष्म संपराय और यथाख्यात । (५) लिंग पाँच- (१) गृहस्थ लिंग (२) अन्य लिंग (३) कुलिंग- स्वमत की वेशभूषा में कमी करना या अधिक करना । जैसे- मुँहपत्ति मुँह पर नहीं लगाना या दंडा आदि उपकरण बढाना, (४) द्रव्य लिंग- व्यवहारिक वेश भूषा, (५) स्वलिंग- स्वलिंग के मुख्य दो उपकरण - मुँह पर मुँहपत्ति और हाथ में कांख में रजोहरण । (६) स्वलिंगी के पाँच अतिचार- (१) मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना नहीं करे । (२) अविधि से करे (३) प्रमार्जन नहीं करे (४) अविधि से करे । (५) मुँहपत्ति मुख पर नहीं बांधकर हाथ में रखे । (७) द्रव्यलिंग- भंडोपकरण संबंधी पाँच अतिचार - (१) भण्डोपकरणों की प्रतिलेखना नहीं करे । (२) अविधि से करे (३) प्रमार्जन नहीं करे (४) अविधि से करे (५) व्यवस्थित यथास्थान नहीं रखे, इखरा बिखरा सामान रखे। (८) प्रथम अंतिम तीर्थंकर के शासन में पाँच महाव्रत होते हैं- पूर्ण रूप से हिंसा, असत्य, अदत्त, मैथुन और परिग्रह का त्याग । (९) पहले महाव्रत के पाँच अतिचार- (१) ईया समिति का अपालन (२) मन समिति का अपालन (३) वचन समिति का अपालन (४)

एषणा समिति का अपालन (५) आहार पानी को अच्छी तरह देखे बिना खावे । **(१०)** दूसरे महाव्रत के ५ अतिचार- (१) बिना विचारे बोले (२-५) क्रोध, लोभ, हास्य, भय के वश बोले । **(११)** तीसरे महाव्रत के ५ अतिचार- (१) मकान आदि की आज्ञा नहीं ले (२) मकान की सीमा नहीं खोले(बडा मकान हो तो) (३) स्वयं आज्ञा नहीं ले (४) सहवर्ती साधु के सामान की आज्ञा नहीं ले । (५) सामुहिक आहार विना आज्ञा खावे । **(१२)** पाँच की आज्ञा न ले तो दोष- देवेन्द्र, राजा, शय्यातर, गृहस्थ, साधर्मी । **(१३)** चौथे महाव्रत के पाँच अतिचार- (१) स्त्री आदि से युक्त मकान में रहे (२) स्त्री संबंधी बातें करे (३) स्त्री के अंगोपांग निरखे (४) गृहस्थ जीवन के भोगों का स्मरण करे (५) गरिष्ठ आहार करे या अधिक खावे । साध्वी के भी चौथे महाव्रत के ५ अतिचार है उसमें तीन में पुरुष संबंधी शब्द लगा देना । **(१४)** पाँचवें महाव्रत के पाँच अतिचार- पाँचों इन्द्रियों के विषयों में राग से विरत नहीं होवे अर्थात् शब्द आदि विषयो में आसक्ति रखे । मनोज्ञ में राग अमनोज्ञ में द्वेष करे । अथवा पाँचों इन्द्रियों को वश में नहीं रखे । **(१५)** पाँच महाव्रतों के २५ अतिचार कहे गये हैं वैसे ही पांच महाव्रत की २५ भावना समझ लेना । अतिचारों का सेवन नहीं करने का ध्यान रखना, उसे ही भावना कहा जाता है । इसमें सूत्र क्रमांक ९ से १४ तक का पुनः कथन प्रतिपक्ष रूप में किया गया है । **(१६)** पाँच कामगुण- शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श । **(१७)** पाँच अवग्रह कहे हैं- देवेन्द्र का, राजा का, गृहस्थ का, मकान मालिक का, साधर्मिक साधु का । **(१८)** पाँच प्रकार के देव- भावितात्मा अणगार और भवनपति आदि चार । **(१९) पाँच प्रकार का ज्ञान विनय- पाँचों ज्ञान और ज्ञानी के संबंध में सन्मान भाव रखना। (२०) पाँच प्रकार का चारित्र विनय- सामायिक आदि पाँचों चारित्र और चारित्रवानों के प्रति आदर भाव रखना ।** **(२१)** पाँच समितियाँ कही गई है- ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान निक्षेप समिति, मलमूत्रादि त्याग संबंधी, परठने संबंधी समिति अर्थात् ये पाँचों कार्य आगम आज्ञा अनुसार सम्यक् विधि से करने। **(२२)** पाँच प्रकार

की क्रिया- (१) कायिकी (२) अधिकरणिकी (३) प्रादोषिकी (४) परितापनिकी (५) प्राणातिपातिकी । **(२३) पाँच स्वलिंगी के प्रकार है- अरिहंत, आचार्य, उपाध्याय, साधु और साध्वी ।** **(२४)** स्व लिंगी संबंधी ५ हिंसा क्रिया का सदा वर्जन करना- मुखवस्त्रिका संबंधी अप्रतिलेखनन आदि- ४ और पाँचवाँ मुँह पर मुँहपत्ति नहीं लगाने रूप हिंसा क्रिया । **(२५)** द्रव्य लिंग संबंधी पाँच हिंसा क्रिया का सदा वर्जन करना- भडोपकरणों की अप्रतिलेखना आदि चार तथा पाँचवाँ यथास्थान व्यवस्थित न रखने रूप हिंसा क्रिया । **(२६)** प्रथम अंग आचारांग में पाँच आचार कहे हैं- ज्ञानाचार ***यावत्*** वीर्याचार। **(२७)** स्वाध्याय के पाँच प्रकार- वाचना, पृच्छना, परियट्टणा, अनुप्रेक्षा, धर्मकथा । **(२८)** जीवों की पाँच जाति कही है- एकेन्द्रिय ***यावत्*** पंचेन्द्रिय **(२९)** पाँचों महाविदेह में तीर्थंकरों की अवगाहना ५०० धनुष की ऊँचाई वाली कही है । पाँच संख्या संबंधी तीनों अतिचार पूर्ववत् समझ लेना । **अर्थात् इन सभी में से जानने योग्य जाना नहीं, आदरने योग्य आदरा नहीं, छोडने योग्य छोडा नहीं तो अतिचार ।**

छ संख्या वाले बोल :-

[८] छव्विहा राईभोयणस्स अइयारा पण्णत्ता तं जहा- असणं, पाणं खाइमं साइमं राइम्मि गिण्हेइ गिण्हावेइ गिण्हंतं वा साइजइ; भुंजेइ भुंजावेइ भुंजंतं वा साइज्जइ । छव्विहा राई भोयणवयस्स भावणा पण्णत्ता तंजहा- असणं *जाव* साइमं राइम्मि णो गिण्हेइ *जाव* णो भुंजंतं वा साइज्जइ । छव्विहा जीवणिकाया पण्णत्ता तंजहा- पुढवि-काइया *जाव* तसकाइया। छव्विहा लेस्सा पण्णत्ता तंजहा- किण्हलेस्सा *जाव* सुक्कलेस्सा ।

छण्हं णिगंथाण वा णिग्गथीण वा आहारमाहारेमाणस्स कारणाइं पण्णत्ता तंजहा- वेयणट्ठाए वेयावच्चट्ठाए ईरियट्ठाए संजमट्ठाए पाणवत्तियाए धम्माणुओगचिंताए । छण्हं णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा आहारं अणाहारेमाणस्स कारणाइं पण्णत्ता तंजहा- रोगायंके उवसग्गे तितिक्खणे बंभचेरगुत्तीए पाणीदया तवहेउं सरीर वुच्छेयणट्ठाए । छव्विहा बाहिरविणय तवोकम्मा पण्णत्ता तंजहा- अणसणं *जाव* पडिसंलीणया । छव्विहा अब्भंतरियविणय तवोकम्मा

पण्णत्ता तंजहा- पायच्छित्तं जाव विउसग्गे । छव्विहा भावा पण्णत्ता तंजहा- उदइये *जाव* संण्णिवाइए । छव्विहा पोग्गला पण्णत्ता तंजहा- धम्मत्थिकाये *जाव* अद्धासमए। छव्विहा पोग्गला पण्णत्ता तंजहा- थूलाओ थूला, थूलाओ, थूलसुहुमाओ, सुहुमथूलाओ, सुहुमाओ, सुहुमाओसुहुमा । छव्विहा रिऊ पण्णत्ता तंजहा- पाउसे *जाव* गिम्हे ।

छव्विहे आउयबंधे पण्णत्ते तंजहा- जाइणामणिहत्ताउए गइणामणिहत्ताउए ठिईणामणिहत्ताउए ओगाहणाणामणिहत्ताउए पएसणामणिहत्ताउए अणुभावणामणिहत्ताउए । छण्हं लोगंमि विणय अवस्सयं करणिज्जं पण्णत्ता तंजहा- मायाओ पिउणो राइणो गुरु जणाणं सगामदेसस्स धम्मस्स ।

भावार्थ :- (१) रात्रि भोजन के ६ अतिचार- चारों प्रकार का आहार भूल से रात्रि में(सूर्यास्त के समय या सूर्योदय के समय) ग्रहण करे, करावे, अनुमोदन करे; खावे, खिलावे, अनुमोदन करे । जानकर करना तो अनाचार हो जाता है । (२) रात्रि भोजन की ६ भावना- उपरोक्त अतिचारों को नहीं लगाने का विवेक रखना, जागृति रखना। (३) छ प्रकार के जीव समूह- पृथ्वीकाय ***यावत्*** त्रसकाय । (४) छ प्रकार की लेश्या- कृष्ण लेश्या ***यावत्*** शुक्ल लेश्या । (५) छ कारण से साधु-साध्वी आहार करे- (१) क्षुधावेदनीय की शांति के लिये (२) सेवा निमित्त (३) ईर्या समिति के पालन हेतु (४) संयमाचार पालन हेतु (५) जीवन टिकाने के लिये (६) धर्म में- ज्ञानध्यानादि में पुरुषार्थ कर सकने के लिये । (६) छ कारणों से साधु-साध्वी आहार का त्याग करे अर्थात् तपस्या करे-(१) शूल आदि रोगातंक होने पर (२) हिंसक प्राणी का उपसर्ग आने पर (३) ब्रह्मचर्य की रक्षा हेतु (४) जीव दया हेतु (५) तपस्या करने के भाव हो तो (६) अंतिम समय जानकर अनशन संथारा करने के लिये । (७) बाह्य तप के छ प्रकार- अनशन ***यावत्*** प्रतिसंलीनता । (८) आभ्यंतर तप के छ प्रकार- प्रायश्चित्त ***यावत्*** व्युत्सर्ग । (९) भाव ६ कहे हैं- उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षय, पारिणामिक और सन्निपातिक भाव । (१०) द्रव्य छ कहे हैं- धर्मास्तिकाय ***यावत्*** काल। (११) पुद्गल के ६ प्रकार- (१) स्थूल में स्थूल (२) स्थूल (३) स्थूल

सूक्ष्म (४) सूक्ष्मस्थूल (५) सूक्ष्म (६) सूक्ष्म में सूक्ष्म(अतिसूक्ष्म) । (१२) छ ऋतु- प्रावृट, वर्षा, हेमंत, शिशिर, वसंत, ग्रीष्म (१३) आयु बंध के ६ प्रकार- (१) आयुष्य कर्म बंधने के साथ एकेन्द्रिय आदि जाति नामकर्म का जोइंट बंध । इसी तरह आयुबंध के समय (२) गतिनाम (३) अवगाहना नाम कर्म का जोइंट बंध (४) अन्य अनेक प्रकृतियों की स्थिति (५) अनुभाग (६) प्रदेश का आयुबंध के समय निश्चित होना । ये छ प्रकार के बंध आयुबंध के साथ विशिष्ट रूप में बंधते हैं । (१४) **लोक में ६ की विनयभक्ति अवश्य करना चाहिये- माता, पिता, राजा, गुरु, अपना गाँव या देश और स्वधर्म ।** इन छ संख्या संबंधी बोलों के तीन अतिचार पूर्ववत् जानना ।

सात संख्या वाले बोल :-

[९] सत्तविहे विणए पण्णत्ते तंजहा- णाणविणए *जाव* लोकोपचार विणए । सत्तविहाइं लोइयं गह णामाइं पण्णत्ते तंजहा- रवि ससी इंगालग बुहे विहस्सई सुक्के सणिच्छरे । सत्तविहा भयठाणा पण्णत्ता तंजहा- इहलोगभये *जाव* असिलोगभये । सत्त मूल णया पण्णत्ता तं जहा- णेगमे *जाव* एवंभूए ।

सत्त पिंडेसणाओ पण्णत्ताओ । सत्त पाणेसणाओ पण्णत्ताओ । सत्त सरा पण्णत्ता तंजहा- सज्जे *जाव* णिसाए। सत्त विगहा पण्णत्ता तंजहा- इत्थीकहा *जाव* चरित्तभेयणी- कहा । सत्तविहे कायकिलेसे पण्णत्ते तंजहा- ठाणाइए *जाव* लगडसाई । सत्तविहे वयण विकप्पे पण्णत्ते तंजहा- आलावे *जाव* विप्पलावे।

भावार्थ :- (१) सात प्रकार का विनय- (१) ज्ञान विनय (२) दर्शन विनय (३) चारित्र विनय (४ से ६) मन वचन काया विनय । (७) लोकोपचार विनय (२) सात महाग्रह के नाम - सूर्य, चन्द्र, इंगालक, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर । (३) सात भयस्थान- (१) मनुष्य को मनुष्य का भय (२) मनुष्य को तिर्यंच, देव का भय (३) चोर का भय (४) अकस्मात-आपत्ति आने का भय (५) रोग वेदना का भय (६) मरण भय (७) अपयश का भय (४) सात नय- नैगम ***यावत्*** एवंभूत नय । **अनुयोग द्वार सूत्र अनुसार जानना ।** (५-६) सात पिंडेषणा-सात पाणेषणा आचारांग अनुसार । (७) सात स्वर- षड्ज

स्वर *यावत्* निषाद स्वर, अनुयोग द्वार अनुसार जानना । (८) सात विकथा- (१ से ४) स्त्री कथा आदि (५) पुत्र आदि वियोगिनी (६) समकित भेदिनी (७) चारित्र भेदिनी (९) सात कायक्लेश- (१) खडे रहकर कायोत्सर्ग करना आदि उववाई सूत्र अनुसार । (२) उकडु आसन, (३) भिक्षु पडिमा (४) वीरासन (५) बैठकर कायोत्सर्ग (६) डंडासन (७) लकुटासन (१०) सात वचन विकल्प (१) थोडा बोलना (२) खराब बोलना (३) विपरीत बोलना (४) अनुकूल बोलना । (५) परस्पर आमने सामने बोलना (६) निरर्थक बोलना (७) असंबद्ध बोलना । यहाँ भी तीन अतिचार पूर्ववत् जानना ।

आठ संख्या वाले बोल :-

[१०] अट्ठण्हं सिद्धाणं पयस्स गुणा पण्णत्ता तंजहा- अणंत णाणं अणंतदंसणं अणंतसुहं वीयरागत्तं अपुणरावित्ती असरीरं (अरूवं) अगुरुलहुत्तं अणंतसत्ती । अट्ठण्हं अण्णाण-णाण भेया पण्णत्ता तं जहा- मइअण्णाणं सुयअणाणं विभंगणाणं मइणाणं सुयणाणं *जाव* केवलणाणं । अट्ठविहे दंसणे पण्णत्ते तंजहा- सम्मदंसणे मिच्छादंसणे सम्मामिच्छादंसणे चक्खुदंसणे अचक्खुदंसणे सुविणदंसणे ओहिदंसणे केवलदंसणे ।

अट्ठण्हं धायईसंडदीवखेत्तस्स महाविदेहवासेसु णिच्चणामी तित्थयरा विहरंति तंजहा- सुजाए *जाव* चंद्दाणणे । अट्ठण्हं अद्ध पुक्खरदीवस्स खेत्तस्स महाविदेहवासेसु णिच्चणामी अरिहंता विहरंति तंजहा- चंदबाहू *जाव* अजिताणंतवीरिए । अट्ठण्हं पवयणमायाओ पण्णत्ताओ तंजहा- ईरियासमिई *जाव* कायगुत्ती। अट्ठण्हं आयरियाण संपया पण्णत्ता तंजहा- आयारसंपया *जाव* संग्गहपरिण्णा संपया । एयं अट्ठ गुणा वि णायव्वा ।

अट्ठविहा मयठाणा पण्णत्ता तंजहा- जाइमए *जाव* ईसरियमए। अट्ठण्हं ईसरियणामे पण्णत्ते तंजहा- राईसरे, तलवरे, मांडबिए, कोडंबिये, इब्भे, सेट्ठी, सत्थवाहे, सेणावई। अट्ठण्हं ईसरिया लोगम्मि पच्चक्खा पण्णत्ता तंजहा- अरिहंताणं वा गणहराणं वा आयरियाणं वा उवज्झायाणं वा साहूणं वा चक्कवट्टीरायाणं वा बलदेव-वासुदेव पडिवासुदेव वा रायाणं वा सव्व सामाणियरायाणं वा । अट्ठविहा

कम्मा पण्णत्ता तंजहा- णावावरणिज्जं *जाव* अंतरायं । अट्ठण्हं कम्माणं दहणट्ठाए सलिंगस्स अट्ठाइं पडलाइं पण्णत्ताइं। अट्ठण्हं सलिंगस्स अविणयठाणा पण्णत्ता तंजहा- सलिंगसद्धिं बोंदियं पमज्जइ वा, दुपमज्जेइ वा, ण सुपमज्जेइ वा, पंचंगोवंगंठिय करेइ वा, केइ अंगोवंगं बंधेइ वा, तस्स मल्लं निहरेइ वा, सेयं विलूहइ वा, सलिंगे सया णो मुहे फासेइ वा ।

अट्ठविहा फासा पण्णत्ता तंजहा- कक्खडे *जाव* लूहे। अट्ठण्हं धम्मत्थिकायमज्झपएसा पण्णत्ता । अट्ठण्हं जीवमज्झ पएसा पण्णत्ता। अट्ठण्हं सव्वजीवाणं णिच्छयणयेणं मज्झिम गुणा पण्णत्ता तंजहा- णाणं *जाव* अणंतसत्ती । अट्ठविहा सव्वाण वि जीवाणं ईस्सरिया पण्णत्ता तंजहा- णाणे *जाव* अणंतवीरियं । अट्ठविहा सुहुमा पण्णत्ता तंजहा- सिणेहं पुप्फं पाणं उत्तिंग पणगं बीयं हरियं अंडं ।

भावार्थ :- (१) सिद्धों के गुण आठ- अनंत ज्ञान, दर्शन, सुख वीतरागता, अक्षय स्थिति(जन्म मरण रहित), अशरीर, अगुरुलघु और अनंत शक्ति । (२) ज्ञान, अज्ञान कुल आठ है- ५ ज्ञान और तीन अज्ञान । (३) आठ दर्शन के प्रकार- सम्यग्दर्शन, मिथ्या दर्शन, मिश्र दर्शन, स्वप्न दर्शन और चक्षु दर्शन आदि चारों । (४) धातकीखंड द्वीप के महाविदेह में आठ तीर्थंकर शाश्वत रहते हैं- सुजात *यावत्* चंद्रानन (५) पुष्कर द्वीप के महाविदेह में भी आठ तीर्थंकर शाश्वत होते हैं- चंद्रबाहु *यावत्* अजितानंतवीर्य । (६) आठ प्रवचन माता- ५ समिति और ३ गुप्ति । (७) आठ आचार्य की संपदा- आचार संपदा *यावत्* संग्रह परिज्ञा संपदा । ये आठ गुण रूप भी जानना । (८) आठ मद स्थान- जाति का, कुल का, बल का, रूप का, तप का, श्रुत ज्ञान का, लाभ का, ऐश्वर्य का मद । (९) ऐश्वर्य नाम युक्त आठ व्यक्ति- राजा, तलवर, मांडलिक, कोडंबिक, ईभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह । (१०) बडे ऐश्वर्य वाले आठ- अरिहंत, गणधर, आचार्य, उपाध्याय, साधु, चक्रवर्ती, बलदेव-वासुदेव-प्रतिवासुदेव, मांडलिक राजा । (११) आठ कर्म- ज्ञानवरणीय आदि । (१२) स्वलिंगी श्रमणों की मुखवस्त्रिका आठ पडवाली होती है, जो आठ कर्म के क्षय करने का प्रतीक है । (१३) स्वलिंगी के आठ अविनय

स्थान है- (१) मुखवस्त्रिका से शरीर पूँजे (पूँजने के लिये पूँजणी होती है) (२) दुष्प्रमार्जन करे (३) सुप्रमार्जन न करे (४) पाँच अंग इकट्ठा करके बैठे । (५) कोई भी अंग को बांध कर बैठे (६) मैल उतारे (७) पसीना पूँछे (८) मुखवस्त्रिका को मुख पर नहीं बाँधकर हाथ में रखे । यहाँ पाँच अविवेक के है दो परीषह सहन नहीं करने के और एक लिंग खराब करने का अविनय कहा है । (१४) आठ स्पर्श- कर्कश आदि । (१५) आठ धर्मास्तिकाय के मध्य प्रदेश । (१६) आठ जीव के मध्य प्रदेश (१७) सभी जीव के निश्चय नय से आठ मध्यम गुण है यथा- अनंत ज्ञान ***यावत्*** अनंत शक्ति। (१८) ये ही आठ जीवों के एश्वर्य है यथा- ज्ञान ***यावत्*** अनंत वीर्य। वीर्य शब्द पुरुषार्थ परक है शक्ति शब्द अस्तित्व परक है, यथा- अनंत ज्ञान जीव के अस्तित्व आवरित रूप होता है वैसे अनंत शक्ति वीर्य रूप आवरित रहती है। वीर्य-पुरुषार्थ तीन प्रकार का है- बाल, बालपंडित और पंडित ये तीनों वीर्य सिद्धों में नहीं होते है । अनंत शक्ति जीवों के आवरित होती है सिद्धों में अनावरित होती है अर्थात् अस्तित्व रूप होती है । (१९) आठ सूक्ष्म- दशवैकालिक में कहे है वे समझना-स्नेहकाय, पुष्प, कुंथुवे, कीडियाँ, लीलणफूलण, बीज, अंकुर, कीडी आदि के अंडे । अतिचार पूर्ववत् जानना ।

नव संख्या वाले बोल :-

[११] णवण्हं बंभचेर गुत्तियाओ पण्णत्ताओ तंजहा- इत्थीपसु पंडग (पुरिस)सयणासण विवज्जियाओ *जाव* सोभावज्जणं। नवण्हं बंभचेर अगुत्तियाओ पण्णत्ताओ तं जहा- इत्थी पसु पंडग (पुरिस)सयणासणसेवियं *जाव* नो सोभावज्जणं । नवण्हं तत्ता पण्णत्ता तंजहा- जीवे अजीवे पुण्णे पावे आसवे संवरे निज्जरा बंधे मोक्खे। नवण्हं पयत्था पण्णत्ता तंजहा- जीवे *जाव* मोक्खे । नवण्हं सोयपरिसवा बोन्दी पुरिसाणं पण्णत्ता तंजहा- दो सोया, दो णेत्ता दो घाणा, मुहं, पोसये पाऊ ।

नवण्हं बंभचेरा पण्णत्ता तंजहा- सत्थपरिण्णा *जाव* महा परिण्णा। नवण्हं कव्वरसा पण्णत्ता तं जहा- वीरं सिंगारं अब्भुयं रुद्दं वेलणयं बिभत्थं हासं कलुणं पसंतं । नवण्हं पुण्णा पण्णत्ता तंजहा-

अण्ण पुण्णे *जाव* णमुक्कारपुण्णे । नवण्हं महा गहा पण्णत्ता तं जहा- चंदे सूरे सुक्के बुहे *जाव* केऊ राहू ।

नवण्हं पयाणं आराहणा पण्णत्ता तंजहा- अरिहंताणं *जाव* तवस्स । नवण्हं पडिवासुदेवाणं णामाइं पण्णत्ता तंजहा- आसग्गीवे तारये मेरये महुकेडवे णिसंभे य बली पहराए रावणे जरासंधे । णवण्हं वासुदेवाणं णामाइं पण्णत्ता तं जहा- तिविट्ठे य दुविट्ठे य सयंभू पुरिसोत्तमे पुरिससीहे पुरिसपुंडरीये दत्ते णारायणे(लक्खमणे) कण्हे । नवण्हं बलदेवाणं णामाइं पण्णत्तां तंजहा- अयले विजये भद्दे सुप्पभे सुदंसणे आणंदे अभिणंदे पउमे बलभद्दे ।

नवण्हं लोगंतिया देवा पण्णत्ता तंजहा- सारस्सए आइच्चे वण्ही वरुणे गद्दतोये तुसिऐ अव्वाबाहे अग्गिच्चे रिट्ठे य । नवण्हं गेविज्ज विमाणपत्थडाणं णामधिज्जाइं पण्णत्ता तंजहा- भद्दे सुभद्दे सुजाये सोमणसे पियदंसणे सुदंसणे अमोहे सुप्पडिबद्धे जसोहरे।

भावार्थ :- (१) नव प्रकार की ब्रह्मचर्य की गुप्ति-नव बातों के ध्यान रखने से ब्रह्मचर्य की सुरक्षा रहती है उन्हें नव वाड भी कहते हैं- (१) स्त्री पशु नपुंसक सहित स्थानों में निवास करे नहीं ***यावत्*** शरीर वस्त्रादि की विभूषा करे नहीं । (२) ब्रह्मचर्य की ९ अगुप्ति- उपरोक्त नव वाड के विपरीत वर्तन से ब्रह्मचर्य की सुरक्षा नहीं रहती है । इसमें साध्वी स्त्री को पुरुष युक्त स्थान आदि का वर्जन करना समझ लेना। (३) नव तत्त्व कह गये हैं- जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष (४) नव पदार्थ कहे हैं- उपरोक्त जीव आदि नव को ही पदार्थ कहा जाता है । (५) पुरुषों के शरीर में नव श्रोत होते हैं- दो कान, दो आँख, दो नाक, मुख, जननेन्द्रिय, गुदा । (६) नव ब्रह्मचर्य अध्ययन- आचारांग के प्रथमश्रुत स्कंध के नव अध्ययन हैं- शस्त्र परिज्ञा ***यावत्*** महापरिज्ञा एवं उपधान श्रुत । (७) नव काव्य रस कहे गये हैं- वीर रस, श्रृंगार रस, अद्‌भुत रस, रौद्र रस, भयानक रस, वीभत्स रस, हास्य रस, करुण रस, प्रशांत रस। (८) पुण्य के नव प्रकार है- अन्न पुण्य, पान पुण्य, लयन पुण्य, सयन पुण्य, वस्त्र पुण्य, मन पुण्य, वचन पुण्य, काया पुण्य, नमस्कार पुण्य । (९) महाग्रह नव कहे हैं- सूर्य आदि सात पूर्वोक्त एवं केतु,

राहु (१०) नव पद की आराधना कही गई है - अरिहंतादि पाँच तथा ज्ञान आदि चार । (११) नव प्रतिवासुदेव के नाम- अश्वग्रीव, तारक, मेरक, मधुकेटभ, निशुंभ, बलि, प्रहलाद, रावण, जरासंध । (१२) नव वासुदेव के नाम- त्रिपृष्ट, द्विपिष्ट, स्वयंभू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुषपुंडरीक, दत्त, लक्ष्मण, कृष्ण । (१३) नव बलदेवों के नाम- अचल, विजय, भद्र, सुप्रभ, सुदर्शन, आनंद, अभिनंदन, पद्म, बलभद्र (१४) लोकांतिक देव नव- शारस्वत, आदित्य, वण्हि, वरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, आग्नेय, अरिष्ट। (१५) ग्रैवेयक देव के नव विमान- भद्र, सुभद्र, सुजात, सोमनस, प्रियदर्शन, अमोघ, सुप्रतिबद्ध, सुदर्शन, जशोधर ।

दस संख्या वाले बोल :-

[१२] दसविहे समणधम्मे पण्णत्ते तंजहा- खंती *जाव* बंभचेर वासे। दसविहे सराग सम्मदंसणे पण्णत्ते तंजहा- निसग्गरुई *जाव* धम्मरुई। दसविहा समायारी पण्णत्ता तंजहा- इच्छा मिच्छा *जाव* उवसंपया। दसविहा चित्तसमाहिठाणा पण्णत्ता तंजहा- धम्मचिंतावासे *जाव* केवलीमरणं वा मरिज्जा सव्वदुक्खपहीणाए । दसविहा अइयारा चउत्थे महव्वयस्स सव्वोवहिठाणाओ वेरमणस्स य पण्णत्ता तं जहा- इत्थी पसु पंडग(पुरुस) सयणासण सेवियं *जाव* णो फासिं- दिय रागोवरई । दसविहा भावणा चउत्थे महव्वयस्स सव्वोवही ठाणाओ वेरमणस्स य पण्णत्ता तंजहा- णो इत्थि-पसु *जाव* फासिंदिय रागोवरई । दसविहा भवणवइ देवा पण्णत्ता तंजहा- असुरकुमारा *जाव* थणियकुमारा ।

दसविहे समणाणं जाव सलिंगिणो वा धम्मोवगरणाणं अइयारा पण्णत्ता तंजहा- अपडिलेहिए *जाव* मुहपत्तिं णो मुहे बंधेइ वा जहाठाणे णो ठावई । दसविहे धम्मे पण्णत्ते तंजहा- गामधम्मे *जाव* अत्थिकायधम्मे । दसविहे वेयावच्चे पण्णत्ते तंजहा- आयरियाणं, उवज्झायाणं, थेराणं, तवस्सीणं, गिलाणीणं, सेहाणं, कुलस्सणं, गणस्सणं, संघस्सणं, साहम्मिस्सणं ।

दसविहे विणए पण्णत्ते तंजहा- अरिहंताणं विणए, अरिहंत पण्णत्तस्स धम्मस्सणं विणए, आयरियाणं विणए, उवज्झायाणं

विणए, थेराणं विणए, कुलस्स णं विणए, गणस्स णं विणए, संघस्स णं विणए, संभोइस्स णं विणए, णाण किरियाणं विणए । दसवेकालियस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा- दुम्मपुप्फे सामणपु व्वयं निग्गंथमहेसिमणाइण्णं छज्जीवणियं पिंडसेणा घम्मत्थकामियं वक्कविसुद्धि आयारपणिही विणयमूल धम्मयं भिक्खू आयारसारं। दसण्हं ठाणांगस्स ठाणा पण्णत्ता। दसण्हं उवासगदसाणं अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा- आणंदे *जाव* सालिहीपिया । दसण्हं केवलीणं अणुत्तरा पण्णत्ता तंजहा- अणुत्तरे णाणे *जाव* अणुत्तरे लाघवे ।

दसण्हं पण्हवागरणदसाणं अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा- उवमा संखा इसिभासियाइं आयरियभासियाइं महावीर भासियाइं खोमग पसिणाइं कोमलपसिणाइं अद्दागपसिणाइं अंगुट्ठपसिणाइ बाहुपसिणाइं। दसण्हं उवमाज्झयणस्स उद्देसाणं अज्झयणसण्णा पण्णत्ता तंजहा- हिंसं मुसं अदत्तं अबंभं परिग्गहं, दया सच्चं अच्चोज्जं बंभं अकिंचणं ।

भावार्थ :- (१) दस श्रमणधर्म- क्षमा, निर्लोभता, सरलता, निरभिमानता, लघुता, सत्य, संयम, तप, त्याग, ब्रह्मचर्यवास । (२) सम्यग्दर्शन की दस प्रकार की रुचि- निसर्गरुचि ***यावत्*** धर्मरुचि, इसका विस्तार उत्तराध्ययन-२८ में है । (३) साधु की दस समाचारी- इच्छाकार आदि अथवा आवस्सहि आदि उत्तराध्यान सूत्र अ.-२६ अनुसार । (४) दस चित्त समाधि के बोल- धर्म भावना का श्रेष्ठ चिंतन आदि दशा-श्रुतस्कंध-दशा-५ में विस्तार है । (५) चौथे महाव्रत(याम) के १० अतिचार है- यह मध्यम तीर्थंकरों की अपेक्षा है इसका नाम- चौथा महाव्रत उपधि स्थान की विरति, विरमण व्रत । अतः चौथे महाव्रत के पाँच और पाँचवें महाव्रत के पाँच यों कुल मिलाकर दस अतिचार कहे हैं । स्त्री पशु पंडक युक्त स्थान का सेवन ***यावत्*** स्पर्शेन्द्रिय राग आसक्ति । (६) चौथे महाव्रत की दस भावना- उपरोक्त दस अतिचार के प्रतिपक्ष रूप अर्थात् अतिचार का सेवन नहीं करने से महाव्रत की पुष्टी होती है उन्हें महाव्रत की भावना कहा जाता है । उन गुणों से महाव्रत भावित होता है, पुष्ट होता है। (७) भवनपति देवों के दस भेद है- असुरकुमार ***यावत्*** स्तनित कुमार। (८) श्रमण आदि चतुर्विध संघ के धर्मोपकरण और स्वलिंग के १० अतिचार

कहे गये हैं- पाँच स्वलिंग के मुख्य उपकरण मुँहपत्ति रजोहरण संबंधी और पाँच अन्य भण्डोपरण संबंधी । इनका स्पष्टीकरण पाँचवें बोल में देखें । (९) दश प्रकार के लोक में धर्म कहे गये हैं- ग्रामधर्म, नगरधर्म, राष्ट्रधर्म, पाखंडधर्म, कुलधर्म, गणधर्म, संघधर्म, श्रुतधर्म, चारित्रधर्म, अस्तिकाय धर्म ।

(१०) दस प्रकार की वैयावृत्य-सेवा कही है- आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी, ग्लानी-रोगी, नवदीक्षित, कुल, गण, संघ और साधर्मिक की । **(११)** दस प्रकार का विनय- (१) अरिहंत का, (२) अरिहंत कथित धर्म का (३) आचार्य (४) उपाध्याय (५) स्थविर का (६) कुल (७) गण (८) संघ (९) समान समाचारीवाले एक साथ आहार करने, कराने वाले सांभोगिक साधु का (१०) ज्ञान-क्रिया का अर्थात् आचारवान ज्ञानी का । **(१२)** दशवैकालिक सूत्र के १० अध्ययन- (१) द्रुम पुष्पिका, (२) सामण्य पूर्वक (३) निर्ग्रंथ महर्षि के अनाचार (४) षडजीवनिकाय (५) पिंडेषणा (६) महाचार कथा-धर्म अर्थकामिक (७) वाक्यशुद्धि (८) आचार प्रणिधि (९) विनय मूल धर्म (१०) भिक्षु आचार सार ।

(१३) ठाणांग सूत्र में १० अध्याय है उन्हें १० ठाणा कहा जाता है । **(१४)** उपासकदशांग सूत्र के १० अध्याय- आनंद आदि शालिहीपिया तक । **(१५) केवली भगवान के दस अणुत्तर गुण- अनंत ज्ञानादि पाँच, अनुत्तर क्षमा आदि पाँच । (१६)** प्रश्न व्याकरण सूत्र के १० अध्ययन- (१) उपमा (२) संख्या (३) ऋषिभाषित (४) आचार्य भाषित (५) महावीर भाषित (६) क्षोमक (वस्त्र संबंधी) प्रश्न (७) कौमल प्रश्न (८) अद्दाग प्रश्न (९) अंगुष्ठ प्रश्न (१०) बाहु प्रश्न । वस्त्र आदि में देवता का आह्वान करके प्रश्नो के उत्तर देने की विधिएँ यहाँ पाँच अध्ययन में बताई गई है । ये दश ही अध्ययन विलुप्त या परिवर्तित कर दिये गये हैं । **(१७)** प्रश्नव्याकरण सूत्र के उपमा नामक प्रथम अध्ययन के १० उप अध्ययनों के नाम- (१) हिंसा (२) मृषा (३) अदत्त (४) अब्रह्म (५) परिग्रह (६) दया (७) सत्य (८) अचौर्य (९) ब्रह्मचर्य (१०) अकिंचन ।**वर्तमान में ये ही दश अध्ययन रूप में प्रश्न व्याकरण सूत्र में उपलब्ध है ।**

ग्यारह संख्या वाले बोल :-

[१३] एक्कारस उवासगपडिमा पण्णत्ता तंजहा- दंसणविसोहि पडिमा *जाव* समणभूया वि पडिमा भवइ । एक्कारस भत्तपाण गिण्हमाणाणं दोसा पण्णत्ता तंजहा- कवाडं वा कंटयबोदियं वा सणमादियपावारं वा पडिपिहियं पेहाए अणणुण्णविय पणोलिज्जा, सचित्तं गिण्हेज्जा वा एवं सचित्तस्स संघट्टेण वा सचित्त समिलियं वा सचित्त पइठियं वा सचित्त पिहियं वा सचित्त संसट्ठहत्थेण वा सचित्त संकियं वा देवबलिए ठावियं वा आएसस्स भोयणाए ठावियं वा समण-माहणाण-वणीमग-किवणदाणट्ठाए ठावियं । इग्गारस इंदा पण्णत्ता तंजहा- दव्विंदे नामिंदे ठवणिंदे णाणिंदे दंसणिंदे चरित्तिंदे तविंदे देविंदे असुरिंदे मणुस्सिंदे तिरियइंदे ।

इक्कारसविहा तवविणयधम्मस्स आराहणा वा अणुपेहा वा भावणा वा पण्णत्ता तंजहा- अहासुत्तं, अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं दव्वं खेत्तं कालं भावं सद्धा सत्ती निरोगया वा रोगातंके वा । एक्कारस महावीर अरिहंतस्स गणहरा पण्णत्ता तंजहा- इंदभूई अग्गिभूई वाउभूई वियत्ते सुहम्मे मंडीए मोरिय पुत्ते अकंपिए अयलभाए मेयज्जे पभासे । इक्कारस करणा पण्णत्ता तंजहा- बवं बालवं *जाव* किंसुग्घं । एक्कारस अंतगड अणुत्तरोववाईयदसाणं अज्झयणस्स वग्गाओ पण्णत्ताओ ।

भावार्थ :- (१) उपासक पडिमा ११ कही है- (१) दर्शन विशुद्धि पडिमा ***यावत्*** (११) श्रमण भूत पडिमा । दशाश्रुत स्कंध में विस्तार है । **(२)** आहार पानी ग्रहण करने संबंधी श्रमण के ११ दोष - (१) दरवाजा, कांटे की वाड, सण आदि का पडदा आज्ञा लिये बिना हटाकर गोचरी जावे (३) सचित्त ग्रहण (४) सचित्त के संघट्टे वाला (५) सचित्त के उपर रखा हुआ लेवे (६) सचित्त से ढँका हुआ (७) सचित्त पदार्थ से खरडे हाथ वाले से गोचरी लेवे (८) सचित्त की शंका वाला पदार्थ लेवे (९) देवता के लिये रखा नैवेद्य पिंड (१०) महेमान के भोजन के लिये रखा (११) श्रमणादि के लिये रखा आहार। ये दोष दशवैकालिक के पाँचवें अध्ययन में कहे है अत: इनका खुलासा वहाँ देखना ।

(३) ग्यारह इन्द्र- (१) द्रव्येन्द्र (२) नामेन्द्र (३) स्थापनेंद्र (४) ज्ञानेन्द्र (५) दर्शनेन्द्र (६) चारित्रेन्द्र (७) तपेंद्र (८) देवेन्द्र (९) असुरेन्द्र (१०) मनुष्येन्द्र (११) तिर्यंचेन्द्र । ये अलग-अलग अपेक्षा से कहे गये इन्द्रों का संकलन है । **(४) तप विनय धर्म की आराधना भावना अनुप्रेक्षा स्थान ग्यारह है- (१) सूत्रानुसार (२) कल्पानुसार (३) मोक्ष मार्गानुसार (४) यथातथ्यरूप से (५-८) द्रव्य क्षेत्र काल भाव (९) श्रद्धा (१०) शक्ति (११) निरोगता या रोगांतक में ।** कल्प से लेकर शक्ति अनुसार तपस्या करना, स्वस्थ और रोग अवस्था में भी तपस्या करना चाहिये । **(५)** भगवान महावीर स्वामी के ११ गणधर- इन्द्र-भूति ***यावत्*** प्रभास । **(६)** ग्यारह करण होते हैं- बव, बालव, आदि सूर्य प्रज्ञप्ति अनुसार जानना । **(७)** अंतगड सूत्र एवं अनुत्तरोपपातिक सूत्र के ११ वर्ग- अंतगड के आठ वर्ग और अनुत्तरोपपातिक के तीन वर्ग यों दो सूत्रों के मिलकर ११ वर्ग विभाग है । एक-एक वर्ग में अनेक अध्ययन हैं ।

बारह संख्या वाले बोल :-

[१४] बारसणं अरिहंताणं गुणा पण्णत्ता तंजहा- अणंतणाणं अणंतदंसणं अहक्खायचरित्तं अक्खयतवं वीयरागत्तं खाइय-दाण-लाभ-भोगोपभोगवीरियं अणंतसत्ती अगुरुलहुसरीरं वज्जरिसहणारायसंघयणं समचउरंससंठाण संजुत्तसरीरं एगसहस्स अट्ठ-तणुलक्खणाइं चउतीसं अइसेसाइं पणतीसं सच्च वयणस्स अइसेसाइं वि तहारूवाणि वि । बारस अंगाइं सुय णाणस्स पण्णत्ता तंजहा- आयारे *जाव* दिट्ठीवाये । बारस भिक्खु पडिमा पण्णत्ता तं जहा- एगमासिया *जाव* एगराइंदिया ।

बारस लोइय मासाणं णामधिज्जाई पण्णत्ता तंजहा- सावणे *जाव* असाढे । बारस लोगुत्तरिय मासाणं णामाइं पण्णत्ता तंजहा- अभिनंदे *जाव* वणविरोहे । बारस चकवट्टी पण्णत्ता तंजहा- भरहे *जाव* बंभदत्ते । बारस कप्पदेवलोगा पण्णत्ता तंजहा- सुहम्मे *जाव* अच्चुये । बारस तव विणय भेया पण्णत्ता तंजहा- अणसणे *जाव* विउसग्गे । बारस इत्थिणं बोंदि परिसवा पण्णत्ता तंजहा- दो कण्णा दो चक्खु दो घाणा दो पयोधरा

मुहे जोणी पोसे पाउ य । बारसविहा भावणा पण्णत्ता तंजहा- अणिच्चभावणा असरणभावणा संसारभावणा एगइयाभावणा अण्णत्तभावणा असूईभावणा आसवभावणा संवरभावणा निज्जरा भावणा लोगसरूवभावणा धम्मसरूवभावणा बोहिसरूवभावणा। बारस संभोगा पण्णत्ता तंजहा- उवहि सुय भत्तपाण *जाव* कहाए य पबंधणे । दुवालसावत्ते किइकम्मे पण्णत्ते तंजहा-

दुहओ णयं जहाजायं, किइकम्मं बारसावयं ।
चउसिरं तिगुत्तं च, दुप्पवेसं एग निक्खमणं ।

बारसविहा भासा पण्णत्ता तंजहा- छक्कस्स गज्जा, छक्कस्स पज्जा । बारस विहा उवओगा पण्णत्ता तंजहा- मइणाणोवओगे *जाव* केवलदंसणोवओगे । बारस विहा सावगाणं वया पण्णत्ता तंजहा- थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमणं *जाव* अतिहिसंविभागे।

भावार्थ :- (१) अरिहंत भगवंतों के १२ गुण- (१-४) केवल ज्ञान दर्शन यथाख्यात चारित्र और अक्षय भावतप (५) वीतरागता (६) दानादि लब्धि, अंतराय क्षय, अनंत शक्ति, आत्म सामर्थ्य (७) अगुरु लघु शरीर (८) वज्रऋषभनाराच संहनन (९) समचौरस संस्थान (१०) १००८ शरीर के उत्तम लक्षण (११) चौतीस अतिशय (१२) वचनातिशय पेंतीस। **(ये बारह गुण इस तरह अन्य कहीं भी नहीं है।)** **(२)** बारह अंग शास्त्र- आचारांग आदि । **(३)** बारह भिक्षुपडिमा। **(४)** लौकिक महिनों के १२ नाम- श्रावण से लेकर आषाढ पर्यंत। **(५)** इनके लोकोत्तरिक नाम- (१) अभिनंदन (२) सुप्रतिष्ठित (३) विजय (४) प्रीति बंधन (५) श्रेयांस (६) शिव (७) शिशिर (८) हेमंत (९) वसंत (१०) कुसुम संभव (११) निदाह (१२) वनविरोध **(६)** चक्रवर्ती बारह- (१) भरत (२) सागर (३) मघव (४) सनत्कुमार (५) शांतिनाथ (६) कुंथुनाथ (७) अरनाथ (८) सुभूम (९) महापद्म (१०) हरिषेण (११) जय (१२) ब्रह्मदत्त **(७)** देवलोक बारह- सौधर्म देवलोक ***यावत्*** अच्युत । **(८)** बारह प्रकार के तप- अनशनादि। **(९)** स्त्री शरीर में १२ परिश्रव स्थान- (१) पुरुष के कहे वे नौ तथा दो स्तन एवं योनी-गर्भाशय । **(१०)** बारह भावनाएँ धर्मध्यान एवं निर्जरा रूप- (१) अनित्य भावना (२) अशरण भावना (३)

संसार भावना (४) एकत्व भावना (५) अन्यत्व भावना (६) अशुचि भावना(७) आश्रव भावना (८) संवर भावना (९) निर्जरा भावना (१०) लोक स्वरूप भावना (११) धर्म स्वरूप भावना (१२) बोधि स्वरूप भावना **(११)** श्रमणों के परस्पर के आहारादि व्यवहार रूप संभोग बारह होते हैं- (१) उपधि लेन देन (२) श्रुत ज्ञान (३)भक्त-पान (४) हाथ जोडकर नमस्कार (५) आसनादि देना (६) निमंत्रणा (७) उठकर आदर देना (८) विधि पूर्वक तिक्खुत्तो से वंदना (९) वैयावृत्य (१०) समवसरण-साथ में ठहरना (११) साथ में बैठना (१२) साथ में प्रवचन **(१२)** बारह आवर्तन युक्त वंदन खमासमणो के पाठ से, जिसके २५ अंग है- (१-२) दो बार खमासमणा (३) यथाजात आसन-उकडु आसन (४-१५) बारह आवर्तन (१६-१९) ४ बार शिर झुकाना (२०-२२) तीनगुप्ति (२३-२४) दो प्रवेश (२५) एक निष्क्रमण। इसकी विधि एवं भावार्थ आवश्यक सूत्र या समवायांग सूत्र से समझना **(१३)** बारह प्रकार की अर्धमागधी भाषा- ६ गद्य रूप, ६ पद्य रूप; छट्ठे बोल से जानना। **(१४)** उपयोग बारह- ५ ज्ञान, ३ अज्ञान, ४ दर्शन । **(१५)** श्रावक के १२ व्रत- स्थूल हिंसात्याग ***यावत्*** अतिथि संविभाग ।

तेरह-चौदह संख्या वाले बोल :-

[१५] तेरस किरियाठाणा पण्णत्ता तंजहा- अट्ठादण्डकिरिया *जाव* इरियावहिकिरिया । तेरस चरणस्स णं महियंगा पण्णत्ता तंजहा- सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं *जाव* कायगुत्ती ।

[१६] चउद्दस भूयगामा पण्णत्ता तंजहा- सुहुमा अपज्जत्तिया *जाव* पंचिंदिया सण्णिपज्जत्तिया । चउद्दस समुच्छिम मणुया पण्णत्ता तं जहा- उच्चारेसु वा पासवणेसु वा खेलेसु वा सिंघाणेसु वा वंतेसु वा पित्तेसु वा सोणिएसु वा पूइएसु वा सुक्केसु वा सुक्कपोग्गलपरिसाडिएसु वा इत्थीपुरिससंजोगेसु वा विगयजीवकलेवरेसु वा नगरणिधमणेसु वा सव्वेसु चेव असुइठाणेसु वा । चउद्दस पुव्वा पण्णत्ता तंजहा- उप्पायपुव्वं *जाव* बिंदुसारपुव्वं । चउद्दस कम्मविसोहिमग्गणं पहुच्च जीव ठाणा पण्णत्ता तंजहा- मिच्छादिट्ठि जीवठाणे *जाव* अयोगी केवली जीवठाणे ।

चउदसविहा सावगाणं णियमा पण्णत्ता तंजहा- सचित्तं दव्वं विगयं उवाहणा तंबोलं वत्थं पुप्फं वाहणे विलेवणं बंभ-चेरं दिसिप्पमाणं सिणाणं भत्तं सिज्जं । चउद्दसविहा तहारूवाणं वुड्ढसावगाणं ते नियमा सरणट्ठाये वा अणंतस्स गंठीभेयाए वा पण्णत्ता।

चउद्दसविहे सुयणाणस्स विणए पण्णत्ते तंजहा- जं अवाइद्धं *जाव* सज्झाइयं । चउद्दस सुयणाणस्स अइयारा पण्णत्ता तंजहा- जं वाइद्धं *जाव* सज्झाए ण सज्झाइयं ।

चउद्दस तवस्स अईयारा पण्णत्ता तंजहा- तवं अचिंतियं *जाव* अणुवओग सहिअं पारित्तं नियाणकडं वा । चउद्दस एगमेगस्स णं चाउरंत चक्कवट्टिरण्णो रयणा पण्णत्ता तंजहा- इत्थिरयणे *जाव* कागिणीरयणे ।

भावार्थ :- **(१)** क्रिया स्थान तेरह- सूयगडांग सूत्र अनुसार अर्थ दंड से लेकर इरियावहि क्रिया तक । **(२)** चारित्र के महत्त्वशाली अंग तेरह- ५ महाव्रत, ५ समिति और तीन गुप्ति । **(३)** जीव के भेद चौदह- (१) सूक्ष्म एकेन्द्रिय के अपर्याप्त ***यावत्*** सन्नी पँचेन्द्रिय के पर्याप्त । **(४)** समूर्च्छिम मनुष्य उत्पत्ति के १४ स्थान- (१) बडीनीत (२) लघुनीत (३) कफ (४) श्लेष्म (५) वमन (६) पित्त (७) खून (८) रस्सी (९) वीर्य (१०) वीर्य के सूखे पुद्गल गीले होने पर (११) स्त्री पुरुष के संयोग में (१२) कलेवर में (१३) नगर के गटर में (१४) अन्य अनेक मिश्र अशुचि स्थान- उकरडी आदि में। **(५)** दृष्टिवाद अंग में १४ पूर्व ज्ञान- उत्पााद पूर्व ***यावत्*** बिंदुसार पूर्व, नंदी सूत्र अनुसार जानना । **(६)** गुणस्थान चौदह- कर्मों की विशुद्धि की अपेक्षा जीव के गुण स्थानों की क्रमिक वृद्धि को गुणस्थान कहा गया है, वे इस प्रकार हैं- (१) मिथ्यात्व गुणस्थान ***यावत्*** (१४) अयोगी केवली गुणस्थान । समवायांग सूत्र और पच्चीस बोल के थोकडे के अनुसार जानना । **(७)** श्रावक के दसवें दिशावकासिक व्रत में रोजाना धारण किये जाने वाले १४ नियम- (१) सचित्त (२) द्रव्य (३) विगय (४) उपानह (५) तंबोल (६) वस्त्र (७) कुसुम (८) वाहन (९) विलेपन (१०) ब्रह्मचर्य (११) दिशा (१२) स्नान (१३) भोजन (१४) शयन । इस प्रकार ये १४ नियम का खुलासा

इसी आगम में है अन्यत्र नहीं मिलता है । (८) **चौदह नियम आदर्श श्रावकों के शरण भूत आधारभूत और कर्मग्रंथी का भेदन करने वाले अर्थात् बहुत कर्मों की निर्जरा कराने वाले हैं ।** (९) श्रुत ज्ञान विनय के १४ प्रकार- ज्ञान के १४ अतिचार से रहित आचरण करना, वे अतिचार नहीं लगाना **शुद्ध ज्ञानाचार का पालन करना । यों ये १४ ज्ञान के विनय भक्ति रूप होते हैं ।** (१०) ज्ञान के १४ अतिचार- (ध्यान नहीं रखने से) ज्ञान के उपरोक्त १४ अतिचार दोष लगते हैं। (११) तप के भी १४ अतिचार कहे गये हैं । (१) तप करने की भावना न भाई हो *यावत्* उपयोग रहित तप का पालन किया हो या फल की आकांक्षा रूप निदान किया हो । खुलासा आगे तप के अतिचार में है । (१२) चक्रवर्ती के १४ रत्न होते हैं- स्त्री रत्न *यावत्* कांगिणी रत्न । इनका विस्तार जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में है ।

पंद्रह-सोलह संख्या वाले बोल :-

[१७] पणरसविहा सिद्धा पण्णत्ता तंजहा- तित्थसिद्धा अतित्थ सिद्धा *जाव* अणेगसिद्धा । पणरसविहाइं सावगाणं कम्मादाणाइं पण्णत्ता तंजहा- इंगालकम्मे वणकम्मे साडीकम्मे भाडिकम्मे फोडिकम्मे दंतवाणिज्जे लक्खवाणिज्जे रसवाणिज्जे केसवाणिज्जे विसवाणिज्जे जंतपीलणकम्मे निल्लंच्छणकम्मे दवग्गिदावणियाकम्मे सरदहतलाय परिसोसणियाकम्मे असई जणपोसणियाकम्मे । पणरस परमाहम्मिया देवा पण्णत्ता तंजहा- अंबे अंबरिसे सामे सबले रुद्दे उवरुद्दे काले महाकाले असिपत्ते धणुपत्ते कुंभे वालुए वेयरणीए खरस्सरे महाघोसे। पणरसविहे पओगे पण्णत्ते तंजहा- सच्चमणपओगे *जाव* कम्मसरीरपओगे । पणरस कम्मभूमिया मणुस्सा पण्णत्ता तंजहा- पंच भारहा, पंच एरवया, पंच महाविदेहा ।

पणरस दिवसा पण्णत्ता तंजहा- पडिवादिवसे *जाव* पणरसी दिवसे । पणरस दिवसाणं लोगुत्तरियणाम धिज्जाइं पण्णत्ता तंजहा- पुव्वंगे सिद्ध मणोरमे मणोहरे जसभद्दे, जसोधरे, सव्वकाम समिद्धे, इंदमूहाभिसित्ते सोमणसे धणंजये अत्थसिद्धे अविभाये अच्चसणे, सयंजये अग्गिवेसे उवसमे ।पणरस तिहिणो पण्णत्ता तं जहा- णंदे भद्दे जए तुच्छे(रत्ते) पुण्णे पक्खस्स पंचमी, पुणरवि णंदे

***जाव* दसमी, पुणरवि णंदे *जाव* पणरसी; एवं ते तिगुणा तिहिओ सव्वेसिं दिवसाणं ।**

पण्णरस राइओ पण्णत्ताओ तंजहा- पडिवाराई *जाव* पण्णरसीराई । पण्णरसणं राइणं लोगुत्तरियाइं णामधिज्जाई पण्णत्ता तंजहा- उत्तमाए सुणक्खत्ताए एलावच्चा जसोहरा सोमणसा सिरि संभूया विजया वेजयंती जयंती अपराजिया इच्छा समाहारा तेया देवाणंदा णिरई । पण्णरसणं राई तिहियाओ णामाइं पण्णत्ता तंजहा- उग्गवई भोगवई जसवई सव्वसिद्धा सुहणामा, पुणरवि उग्गवई भोगवई जसवई सव्वसिद्धा सुहणामा, पुणरवि उग्गवई भोगवई जसवई सव्व सिद्धा सुहणामा; एवं तिगुणा एते तिहीओ सव्वेसिं राईणं ।

[१८] सोलस गाहा पण्णत्ता तंजहा- ससमये *जाव* गाहा । सोलस कसाया पण्णत्ता तं जहा, अणंताणुबंधी कोहे *जाव* संजलणे लोभे । सोलस वाणमंतरा देवा पण्णत्ता तंजहा- पिसाए भूए जक्खे *जाव* कुहंडे पयंग देवा । सोलस वयणा पण्णत्ता तंजहा- दव्वेहिं पज्जवेहिं गुणेहिं कम्मेहिं बहुविहेहिं सिप्पेहिं आगमेहिं- णामं-अक्खायं निवाया उवसग्गा तद्धिआ समासा संधी पया हेऊ जोगे ऊणाई किरिया विहाणा धाउ सरा विभत्तीवण्णजुत्तं तिकालवयणं । एवामेवं अण्णे वि सोलस वयणा पण्णत्ता तंजहा- एगवयणं दुवयणं बहुवयणं इत्थिवयणं पुरिसवयणं नपुंसगवयणं अज्झत्थवयणं अवणीयवयणं उवणीय वयणं उवणीयावणीयवयणं अवणीयउवणीयवयणं तीयवयणं पडुपण्णवयणं अणागयवयणं पच्चक्खवयणं परोक्खवयणं ।

भावार्थ :- (१) सिद्ध होने के १५ प्रकार- तीर्थ सिद्धा, अतीर्थ सिद्धा *यावत्* अनेक सिद्धा । (२) श्रावक के १५ कर्मादान के व्यापार- (१) इंगालकर्म- अग्नि के आरंभ वाले व्यापार एवं विद्युत के आरंभवाले कारखाने (२) वणकर्म- वनस्पति के आरंभ वाले खेती आदि। (३) सकट कर्म- वाहन बनाने, बेचने का धंधा (४) भाडीकर्म- वाहन भाडे पर चलाना (५) फोडी कर्म- पृथ्वी खोदने के व्यापार (६) दंत वाणिज्य- त्रस जीवों के अवयवों का- हाथी दाँत आदि का व्यापार (७) लक्ख वाणिज्य- लाख, चिपडी, केमिकल्स के व्यापार (८) रस वाणिज्य- शराब तथा अन्य रस वाले पदार्थों का व्यापार (९) केस

वाणिज्य- पशुओं को, दास दासी को बेचने का व्यापार (१०) विष-जहरीले पदार्थ और शस्त्रों का व्यापार (११) यंत्र पीडन कर्म- तेल आदि पीलने के कर्म । (१२) नपुंसक बनाने का या डाम देने का कार्य। (१३) खेत-जंगल आदि में आग लगाकर साफ करना । (१४) पानी के स्थान सरोवर, झील, तालाब आदि सुखाना । (१५) वेश्या, कुत्ते, मुर्गे आदि का पालन **(३)** परमाधामी देव पंद्रह कहे हैं- (१) अंब (२) अंबरिष (३) श्याम (४) शबल (५) रौद्र (६) उपरौद्र (७) काल (८) महाकाल (९) असिपत्र (१०) धनुष (११) कुंभ (१२) वालुक (१३) वैतरणी (१४) खर स्वर (१५) महाघोष **(४)** प्रयोग पंद्रह- सत्यमन आदि योग को ही प्रयोग कहा जाता है । **(५)** कर्मभूमि क्षेत्र पंद्रह है- ५ भरत, ५ एरवत, ५ महाविदेह । **(६)** पंद्रह दिवस- प्रतिपदा दिवस ***यावत्*** पूनम दिवस । **(७)** पंद्रह दिवस के लौकोत्तरिक नाम- (१) पूर्वांग (२) सिद्ध मनोरम (३) मनोहर (४) यशोभद्र (५) यशोधर (६) सर्वनाम समृद्ध (७) इन्द्र मुखाभिसिक्त (८) सोमनस (९) धनंजय (१०) अर्थसिद्ध (११) अभिजात (१२) अत्यशन (१३) सतंजय (१४) अग्निवेश (१५) उपशम । **(८)** पंद्रह तिथियों के नाम- (१) नंदा (२) भद्रा (३) जया (४) तुच्छा(रक्ता)(५) पूर्णा पक्ष की पाँचम । आगे ये ही तीन बार कहना अर्थात् नंदा ***यावत्*** दसमी, पुनः नंदा ***यावत्*** पूनम । पुनः नंदा ***यावत्*** अमावस । **(९)** लौकिक रात्रियाँ १५ कही है- प्रतिपदा रात्रि ***यावत्*** पूनम रात्रि ।**(१०)** पंद्रह रात्रियों के लौकोत्तरिक नाम- (१) उत्तमा (२) सुनक्षत्रा (३) एलावच्चा (४) यशोधरा (५) सोमनसा (६) श्री संभूता (७) विजया (८) वेजयंती (९) जयंति (१०) अपराजिता (११) इच्छा (१२) समाहारा (१३) तेजा (१४) अतितेजा (१५) देवानंदा । **(११)** रात्रि तिथि के नाम- (१) उग्रवती (२) भोगवती (३) यशवती (४) सर्वसिद्धि (५) सुखनामा। ये ही पाँच नाम क्रमशः तीन बार करने से १५, ये सर्व रात्रि की तिथियाँ हो जाती है । **(१२)** सूयगडांग सूत्र के १६ अध्ययन के नाम- (१) स्वसमय पर समय (२) वैतालीय (३) उपसर्ग परिज्ञा (४) स्त्री परिज्ञा (५) नरक विभक्ति (६) महावीर स्तुति (७) कुशील परिभाषा (८) वीर्याध्ययन (९) धर्मध्यान (१०) समाधि (११) मोक्षमार्ग (१२)

समवसरण (१३) यथातथ्य (१४) ग्रंथ (१५) आदानीय (१६) गाथा। ये प्रथम श्रुत स्कंध के अध्ययन है । **(१३)** कषाय के १६ भेद- अनंतानुबंधी क्रोध ***यावत्*** संज्वलन लोभ । **(१४)** वाणव्यंतर के १६ भेद- पिशाच, भूत, यक्ष ***यावत्*** कुहंड, पयंगदेव ।**(१५)** सोलह वचन के प्रकार- द्रव्य से, गुण से, कर्म से, विविध शिल्पकला से, कौशल्यता से, सिद्धांत से युक्त हो वैसे वचन बोलना, उनके १६ प्रकार- (१) नाम वचन-देवदत्त आख्यात वचन (क्रिया) भवति करोति । (२) निपात-अवश्य, खलु अहो वगेरे । (३) उपसर्ग- धातु के आदि में लगने वाले प्र, प्रा, उप, आदि यथा- आहरति, निहरति । (४) तद्धित (५) समास (६) संधि (७) पद (८) हेतु (९) योग (१०) उनादिकोष (११) क्रिया (१२) विधान (१३) धातु (१४) स्वर (१५) विभक्ति आठ (१६) त्रिकालवचन **(१६)** इसी तरह अन्य भी १६ वचन- (१) एक वचन (२) द्वि वचन (३) बहुवचन (४) स्त्री वचन (५) पुरुष वचन (६) नपुंसक वचन (७) अध्यात्म वचन- अंतर्मन के बोले वचन (८) उपनीत वचन-प्रशंसा वचन (९) अपनीत-निंदक वचन (१०) उपनीत अपनीत वचन- कुछ प्रशंसा के बाद निंदा वचन (११) कुछ निंदा के बाद प्रशंसा वचन (१२) भूतकाल प्रयोग (१३) वर्तमान वचन (१४) भविष्य कालिक वचन (१५) प्रत्यक्ष वचन (१६) परोक्ष वचन

सत्रह से उन्नीस संख्या वाले बोल :-

[१९] सत्तरसविहे असंजमे पण्णत्ते तंजहा- पुढविकाय असंजमे आऊकायअसंजमे तेऊकायअसंजमे वाऊकाय असंजमे वणस्सईकायअसंजमे बेइंदियअसंजमे तेइंदियअसंजमे चउरिंदिय असंजमे पंचिंदयअसंजमे अजीवकायअसंजमे पेहा असजमे उवेहाअसंजमे अवहट्टुअसंजमे अपमज्जणा असंमजमे मणअसंजमे वयअसंजमे, कायअसंजमे । सत्तरसविहे संजमे, पुढविकायसंजमे *जाव* कायसंजमे ।

[२०] अट्ठारस विहे बंभे पण्णत्ते तंजहा- ओरालिय कामभोगे णेव सयं मणेणं सेवइ णो वि अण्णं मणेणं सेवावेइ जाव वेउव्विय कामभोगे कायेण सेवंतंवि अण्णं ण समणुजाणाइ । अठारस विहे अबंभे पण्णत्ते तं

जहा- ओरालिए कामभोगे सयं मणेणं सेवंति *जाव* वेउव्विय कामभोगे कायेणं सेवंतं वि अण्णं समणुजाणाइ। अठारस विहे पावे पण्णत्ते तं जहा- पाणाइवायं मुसावायं अदिण्णादाणं मेहुणं परिग्गहं कोहं माणं माया लोभे रागे दोसे कलहे अब्भक्खाणं पिसुण्णं परपरिवाओ रईअरई माया मोसे मिच्छादंसणसल्लं। अट्ठारस विहेहिं दोसेहिं सव्वे अरिहंता भगवंता रहिया पण्णत्ता तंजहा- अण्णाणं मिच्छत्तं कोहं माणं माया लोहो रई अरई दुगंच्छा वेए निद्दा सोयं मच्छरं भयं अंतरायं हासं कीलापसंगे असंवरे।

[२१] एगुणवीसं णायज्झयणा पण्णत्ता तंजहा- उक्खित्तणाए संघाडे, अंडे, कुम्मे, सेलए, तुम्बे, रोहिणी, मल्ली, मागंदी, चंदिमा, दावद्दवे, उदगणाए, मंडुक्के, तेतली, नंदीफले, अवरकंका, आइण्णे, सुसमा, अवरे य पोंडरीए णाए ।

एगूणवीसं महामंत णमोकारस्स गुणनिप्फण्णाइं णामधिज्जाइं पण्णत्ता तंजहा- णमोक्कारे, पंचपरमेट्ठीमूले, ओं संभूए, आइअक्खर णिप्फण्णे ओं संभूए, ओं णमोक्कारे, पणव णमोक्कारे, पंचिस्सरी णमोक्कारे, सिद्धचक्के णमोक्कारे, सव्व विज्जाविये, मंत जंत तंतणाहे, मंत जंत तंत गुरुए, मंत जंत तंतसहिए, मंत जंत तंतीदे, मंत जंत तंत देवे, मंत जंत तंत नाभिये, मंत जंत तंत ज्झये, मंत जंत तंत ईस्सरे, मंत जंत तंत चक्कवट्टी य, वेदसारे। एयं णं भंते ! किं पओयणे ? णाण दंसण चरित्त तव थिरीकरणे य । एगूणवीसाए णाणस्स य दंसणस्स य अइयारा पण्णत्ता तंजहा- जं वाइद्धं जाव परसासंडसंथवो ।

भावार्थ :- **(१)** सत्रह प्रकार का असंयम- (१) पृथ्वीकाय असंयम (२) अप्काय असंयम (३ से ९) इसी प्रकार तेउ, वायु, वनस्पति, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय की अयतना रूप असंयम (१०) अजीवकाय असंयम-अविवेक से पदार्थों का उपयोग (११) प्रेक्षा-प्रत्येक कार्य बिना देखे करना (१२) उपेक्षा- संयम के विषय में लापरवाही (१३) अपहृत्य असंयम-वस्तु रखना, लेना, परठना आदि अविवेक अयतना से (१४) अप्रमार्जना (१५ से १७) मन, वचन, काया का असंयम । **(२)** सत्रह प्रकार का संयम- (१-१०) अविवेक अयतना नहीं करना (११) प्रत्येक कार्य, आहार देख भाल

कर करना (१२) राग-द्वेषोत्पादक प्रसंग में उपेक्षा भाव रखना, दूसरों के अवगुण निंदा प्रसंग में उपेक्षा भाव रखना (१३) कोई भी वस्तु उठाना रखना विवेक से तथा पांचवी समिति का विवेक से पालन (१४) पूँजना- जहाँ भी जरूरत हो वहाँ ध्यान पूर्वक प्रमार्जन करना (१५ से १७) मन, वचन, काया का प्रयोग जरूरी होने पर शुभ प्रवृत्ति करना, अशुभ का त्याग करना । विवेक से काया की प्रवृत्ति करना अविवेक का त्याग करना । ये संयम के १७ बोल पूर्ण ध्यान पूर्वक पालन करना साधु का कर्तव्य होता है । **(३)** अठारह प्रकार का ब्रह्मचर्य- औदारिक संबंधी तीन करण तीन योग से मैथुन त्याग और वैक्रिय संबंधी तीन करण तीन योग से मैथुन त्याग करना। **(४)** अठारह प्रकार का अब्रह्मचर्य- उपरोक्त कथन से विपरीत समझना अर्थात् मैथुन का त्याग नहीं करना, सेवन करना । **(५)** पाप के अठारह प्रकार- प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, क्लेश, अभ्याख्यान(असत्य आक्षेप), चुगली करना, निंदा करना, रति-अरति, माया-मृषावाद और मिथ्यात्व-खोटी श्रद्धा । **(६)** अरिहंत भगवंत अठारह दोष रहित होते हैं- अज्ञान, मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, रति, अरति, दुगंछा, वेद, निद्रा, शोक, मत्सर, भय, अंतराय, हास्य, क्रीडाप्रसंग और असंवर-आश्रव। **(७)** ज्ञाता सूत्र के १९ अध्ययनों के नाम- (१) उत्क्षिप्त-मेघकुमार (२) विजयचोर-धन्ना सेठ (३) मोर के अंडे का (४) कछुआ (५) शैलक राजर्षि (६) तुंबा (७) रोहिणी (८) मल्लिभगवती (९) जिनरक्षित- जिनपाल-माकंदी पुत्र (१०) चंद्र (११) दावदव वृक्ष (१२) उदक ज्ञात (१३) नंदमणियार (१४) तेतली पुत्र (१५) नंदीफल (१६) द्रौपदी (१७) अश्व (१८) शुषमा दारिका (१९) पुंडरीक कंडरीक **(८)** महामंत्र नवकार के १९ नाम- (१) नमोकार (२) पंच परमेष्ठी मूल (३) ओम संभूत (४) आदि अक्षर निष्पन्न ओम संभूत (५) ओम नमोकार (६) प्रणव नवकार (७) पंचीश्वरी नमोकार (८) सिद्धचक्र नमोकार (९) सर्व विद्या सहित (१०) मंत्र जंत्र तंत्र नाथ (११) मंत्र जंत्र तंत्र गुरु (१२) मंत्र जंत्र तंत्र सहित (१३) मंत्र जंत्र तंत्र इन्द्र (१४) मंत्र जंत्र तंत्र देव (१५) मंत्र

जंत्र तंत्र नाभि रूप (१६) मंत्र जंत्र तंत्र ध्यान (१७) मंत्र जंत्र तंत्र ईश्वर (१८) मंत्र जंत्र तंत्र चक्रवर्ती (१९) वेदसार । हे भगवन् ! इन नामों का क्या प्रयोजन है? हे गौतम ! ये ज्ञान दर्शन चारित्र तप के स्थिर करने में सहायभूत कल्याणकारक है । (९) ज्ञान और दर्शन के कुल १९ अतिचार हैं- १४ ज्ञान के, ५ समकित के मिलकर ।

वीस संख्या वाले बोल :-

[२२] वीसं सव्व जीवाणं अरिहंतपयस्स नामगोयकम्मबंधणस्स विहाणा पण्णत्ता तंजहा- अरिहंताणं वण्णसंजलं करित्ताणं, सिद्धाणं भगवंताणं वण्णसंजलं, पवयणगुण-सभत्तिभावं करित्ताणं, गुरुणं गुणसभत्तिभावं, थेराणं भगवंताणं गुणसभत्ति भावं, बहुसुईणं गुणसभत्तिभावं, तवस्सीणं भगवंताणं गुणसभत्ति भावं, साहम्मियाणं वच्छलभावं करित्ताणं, अभिक्खणं अभिक्खणं णाणेसु उवओगं करित्ताणं, दंसणमोहणिज्जं खयं करित्ता समत्तं पाउभवित्ता सुद्धभावेणं सम्मदंसणगहणं वा निरइयारं वा पालेइ, पंचपरमेट्ठीविणयं करेइ, सव्वभावेणं सडावस्सयं करित्ताणं, सीलवयं निरइयारेणं रक्खित्तए, दसण्हं पच्चखाणं उग्गभावेण पुणो पुणो करित्तए दुवालसविहं तवोकम्मं करित्ताणं, सव्वभावेणं बहुविहं दाणं करित्ताणं, साहम्मियाणं वेयावच्चं कारित्ताणं, अपुव्वणाणस्स तिव्वभावेणं गहणं कारित्ताणं, समाहिए विहरेज्जा, सुयणाणस्स भत्तिभावं करेइ वा पवयणपभावणं करेइ।

वीसं विणए पण्णत्ते तंजहा- अरिहंताणं वा सिद्धाणं वा आयरियाणं वा उवज्झायाणं वा साहूणं वा साहूणीणं वा अरिहंतपण्णत्तस्स धम्मस्सणं वा केवलीणं वा इहलोगस्सणं वा परलोगस्सणं वा सावणाणं वा सावियाणं वा सदेवमणुयासुरलोगाणं वा सव्वपाण-भूयजीवसत्ताणं वा कालस्सणं वा णाण किरियाणं वा सुयदेवयाणं वा वायणायरिस्सणं वा । वीसं अविणये पण्णत्ते तंजहा- अरिहंताणं *जाव* वायणायरियस्सणं। वीसं सव्व महाविदेहवासेसु तित्थयराणं निच्चगुणणिप्फणाइं नामधिज्जाइं पण्णत्ता तंजहा- सीमंधरे जुगमंधरे बाहू सुबाहू सुजाये सयंपभे उसभाणणे अणंतवीरिये सूरपहे विसालभद्दे वज्जधरे चंदाणणे चंदबाहू भुजंगे ईस्सरे णेमपभे वीरसेणे महाभद्दे देवजसे अजितानंतवीरिए ।

वीसं असमाहिओ पण्णत्ताओ तंजहा- दवदव्वचारी यावि भवइ, अप्पमज्जियचारि यावि भवइ, दुप्पमज्जियचारी यावि भवइ, अइरित्त सिज्जासणिए, राइणीय परिभासी, थेरोवघाइए, भूतोवघाइए, संजलणे, कोहणे, पिट्ठिमंसए, अभिक्खणं अभिक्खणं ओहारइत्ता भवइ, णवाणं अहिगरणाणं अणुप्पण्णाणं उप्पाएत्ता भवइ, पुराणाणं अधिगरणाणं खामिय विउसवियाणं पुणोदीरेत्ता भवइ, ससरक्खपाणिपाए, अकालसझायकारए यावि भवइ, कलहकरे, सद्दकरे, झंझकरे, सूरप्पमाणभोई, अणेसणासमिए यावि भवइ । वीसं समाही पण्णत्ता तंजहा नो दवदवचारि यावि भवइ *जाव* एसणासमिए यावि भवइ ।

वीसं असंवर दाराइं पण्णत्ताइं तंजहा- मिच्छत्ते अविरई पमाए कसाए असुभजोगे पाणाइवाए मुसावाए अदिण्णादाणं अबंभं परिग्गहं सोइंदियं चक्खुइंदियं घाणिंदियं जिब्भिंदियं फासिंदियं मणवयकाए भंडोवगरणं उवहिमादियं अजयणाए धरेइ, सुइकुसग्गं अजयणाए धरेइ। वीसं संवर दाराइं पण्णत्ताइं तंजहा- समत्तं *जाव* भंडोवगरणं उवहिं आदियं अजयणाए णो धरेइ, सूइ कुसग्गं अजयणाए णो धरेइ ।

वीसं भवणवई देवाणं इंदा पण्णत्ता तंजहा- चमरिंदे *जाव* महाघोसिंदे । वीसं पंच परमेट्ठीणं जहण्ण गुणा पण्णत्ता तंजहा- णाणं *जाव* अरूवत्तं । वीसं निसीहज्झयणस्स उद्देसणकाला पण्णत्ता । वीसं विवागसुयस्स अज्झयणा पण्णत्ता- मियलोढा *जाव* सुबाहुकुमाराई ।

भावार्थ :- (१) तीर्थंकरगोत्र नामकर्म बांधने के २० बोल है- (१ से ७) अरिहंत, सिद्ध, ज्ञान-प्रवचन, गुरु, स्थविर, बहुश्रुत और तपस्वी के गुण ग्राम करने से (८) साधर्मिक वात्सल्य (९) बारंबार ज्ञान में उपयोग रखने से (१०) निरतिचार समकित का पालन (११) विनय मूल धर्म का सेवन या पंच परमेष्ठी का विनय । (१२) शुद्ध भाव पूर्वक प्रतिक्रमण (१३) अतिचार रहित शील व्रत पालन (१४) दस प्रत्याख्यान उत्कृष्ट भाव से पालन (१५) बारह भेदे तप में पुरुषार्थ (१६) भावपूर्वक विविध प्रकार से दान धर्म का सेवन करने से (१७) साधर्मिकों की सेवा भक्ति (१८) नया नया ज्ञान ग्रहण उत्कृष्ट भाव से (१९) गुरु आदि सभी को समाधि पहुँचाना (२०) श्रुत ज्ञान

की भक्ति एवं जिन शासन की प्रभावना। **(२)** बीस प्रकार से विनय है- (१-५) पंच परमेष्ठी (६) साध्वी (७) अरिहंत प्ररूपित धर्म (८) केवली (९) इसलोक-मनुष्य का (१०) परलोक-देव, तिर्यंच का (११) श्रावक का (१२) श्राविका का (१३) देव, मनुष्य, असुर यों तीन लोक का (१४) सर्व प्राण, भूत, जीव, सत्व का (१५-१७) तीन काल का (१८) ज्ञान-क्रिया का (१९) श्रुत देवता का विनय करना (२०) वाचनाचार्य का **(३)** वीस विहरमान तीर्थंकर पाँच महाविदेह क्षेत्र में- (१) सीमंधर (२) युगमंधर (३) बाहु (४) सुबाहु (५) सुजात (६) सयंप्रभ (७) ऋषभानन (८) अनंत वीर्य (९) शूरप्रभ (१०) विशालप्रभ (११) वज्रधर (१२) चंद्रानन (१३) चंद्रबाहु (१४) भुजंगदेव (१५) ईश्वर (१६) नेमप्रभ (१७) वीरसेन (१८) महाभद्र (१९) देवयस (२०) अजितानंत वीर्य **(४)** बीस असमाधि स्थान- (१) उतावल से चले (२) रात्रि में या अंधकार में बिना पूँजे चले (३) अविधि से पूँजे (४) पाट पाटला अधिक रखे (५) बडों के सामने बोले (६) स्थविर को दुख पहुँचावे (७) प्राणियों को दुःख पहुँचावे (८) बारंबार क्रोध करे (९) क्रोध में जलता रहे (१०) अन्य का निंदा अवगुण बोले (११) बारंबार निश्चयकारी भाषा बोले (१२) नया क्लेश खडा करे (१३) पुराने शांत क्लेश को पुनः उदीरे (१४) सचित्त रज से भरे हाथ पाँव से भिक्षा जावे, आहार करे (१५) अकाल में स्वाध्याय करे (१६ से १८) कलह, बोलाचाली, बहस करे (१९) दिन भर खावे (२०) एषणा समिति का पालन नहीं करे। **(५)** बीस समाधि स्थान- उपरोक्त असमाधि के बोल से प्रतिपक्ष रूप में कथन करना। **(६)** बीस असंवर- (१) मिथ्यात्व (२) अव्रत (३) प्रमाद (४) कषाय (५) अशुभ योग (६) हिंसा (७) असत्य (८) अदत्त (९) अब्रह्म (१०) परिग्रह (११-१५) पाँच इन्द्रिय वश में नहीं रखे(१६-१८) मन वचन काया के अशुभ योग प्रवर्तावे (१९) बडे उपकरण अयतना से लेवे-रखे। (२०) छोटी वस्तु अयतना से लेवे-रखे। **(७)** संवर के २० भेद- उपरोक्त असंवर के प्रतिपक्ष रूप। **(८)** भवनपति देवों के २० इन्द्र- चमरेन्द्र ***यावत्*** महाघोष। जीवाभिगम सूत्र से जानना। **(९)** पंचपरमेष्ठी के जघन्य बीस गुण- ज्ञान ***यावत्*** अरूपी (विस्तार

से आगे आनुपूर्वी वर्णन में है) **(१०)** निशीथ सूत्र के बीस उद्देशे हैं। **(११)** विपाक सूत्र के २० अध्ययन हैं, दोनों श्रुतस्कंधों के १०, १० मिलाने से- मृगालोढा ***यावत्*** सुबाहुकुमार आदि।

इक्कीस से तेवीस संख्या वाले बोल :-

[२३] एगवीसं सबला पण्णत्ता तंजहा- हत्थकम्मं करेमाणे सबले *जाव* अभिक्खणं अभिक्खणं सीओदग-वियड-वग्घारिय-पाणिणा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिगाहित्ता भुंजमाणे सबले। एगवीसं अरिहंताणं भगवंताणं खीणभावेणं गुणा पण्णत्ता तंजहा- आभिणिबोहियणाणावरणे खीणे, सुय णाणावरणे खीणे, ओहिणाणावरणे खीणे, मणपज्जवणाणावरणे खीणे, केवलणाणावरणे खीणे, चक्खुदंसणावरणे खीणे, अचक्खु दंसणावरणे खीणे, ओहि दंसणावरणेखीणे, केवलदंसणावरणे खीणे, निद्दा खीणे, निद्दानिद्दा खीणे, पयला खीणे, पयलापयला खीणे, थीणद्धिनिद्दा खीणे, दंसण मोहणिज्जे खीणे, चरित्तमोहणिज्जे खीणे, दाणंतराय खीणे, लाहंतराय खीणे, भोगांतराय खीणे, उवभोगांतराय खीणे, वीरियंतराये खीणे।

एगवीसं णाणदंसणस्स भावणा पण्णत्ता तंजहा- सव्वंसुय णाणं जाणिए यावि भविस्सामि, णिरइयारं सुयणाणं जाणिए यावि भविस्सामि, असंदिद्धं सुयणाणं जाणिए यावि भविस्सामि, धुवं सुयणाणं जाणिए यावि भविस्सामि, सुद्धं सुयणाणं कहं कहित्तावि भविस्सामि, सुयणाणस्स सपभावणं आराहियावि भविस्सामि, महया मईणाणी यावि भविस्सामि, ओहीणाणी यावि भविस्सामि, मणपज्जवणाणी यावि भविस्सामि, केवलणाणी यावि भविस्सामि, सम्मदंसणे णिसंकिए यावि भविस्सामि, णिकंक्खिए यावि भविस्सामि, णिव्वितिगिच्छे यावि भविस्सामि, परपासंडिणो णो पसंसिए यावि भविस्सामि, परपासंडिणो असंथविए यावि भविस्सामि, सम्मदंसणे साहम्मियाणं संगोविए यावि भविस्सामि, साहम्मियाणं थिरीकारए यावि भविस्सामि, णिच्चमेवं परमत्थ संथवं सेविए यावि भविस्सामि, खाइयसमत्ते यावि भविस्सामि, ओहिदंसणिए यावि भविस्सामि, केवल दंसणिए यावि भविस्सामि।

एगवीसं लोगमज्झे लोगाणं लक्खणा पण्णत्ता तंजहा-

अण्णाणं वा अकिरियं वा, णाणं वा किरियं वा, मिच्छादंसणं वा सम्मदंसणं वा, मिच्छाचरियं वा चरियं वा, अतवे वा तवे वा, बंभं वा अबंभं वा, कोहं वा संतं वा, माणं वा मद्दवं वा, णूमं वा अज्जवं वा, लोहं वा तोसं वा, सत्ती वा अकीरियं वा, दुहं वा सुहं वा, पावं वा पुण्णं वा, अधम्मं वा धम्मं वा, अण्णायं वा णायं वा, रागं वा दोसं वा, अभक्खणं वा भक्खणं वा, कत्ता वा विकत्ता वा, सिद्धी वा असिद्धी वा, अरूवीयं वा रूवीयं वा, सव्वासु जोणिसु भवणं लोगंत ठिई वा ।

[२४] बावीसं परीसहा पण्णत्ता तंजहा- दिगिंच्छा परीसहे *जाव* दंसण परीसहे । बावीस अरिहंताणं चाउज्जामो धम्मो पण्णत्तो तं जहा- पाणाइवायाओ वेरमणं *जाव* अकिंचणे ।

[२५] तेवीसं सुयगडज्झयणा पण्णत्ता तंजहा- ससमये *जाव* णालंद इज्जं। तेवीसं इंदियविसये पण्णत्ते तंजहा- सुब्भिसद्दे दुब्भिसद्दे मिसियसद्दे, कालवण्णे *जाव* सुक्किलवण्णे, सुब्भिगंधे दुब्भिगंधे, तित्ते *जाव* महुरे, कक्खडे मउये गुरुए लहुए सीए उसिणे णिद्धे लुक्खे ।

भावार्थ :- **(१)** इक्कीस सबल दोष- हस्त कर्म करे ***यावत्*** सचित्त जल से भरे हाथों से गोचरी जावे । विस्तार दशाश्रुत स्कंध सूत्र में देखें। **(२)** अरिहंत भगवंत के क्षीण भाव के २१ गुण, चार घातीकर्मों के क्षय से २१ कर्म प्रकृति का क्षय रूप ये गुण कहे हैं- ज्ञानावरणीय के पाँच, दर्शनावरणीय के नव, मोहनीय के दो, अंतराय के पाँच, कुल ५+९+२+५ = २१ । **(३)** ज्ञान दर्शन की २१ भावना- (१) मैं संपूर्ण उपलब्ध श्रुत ज्ञान का जानकार बनूँ (२) अतिचार रहित श्रुत ज्ञान प्राप्त करूँ (३) असंदिग्ध ज्ञान हासिल करूँ (४) असंदिग्ध और स्थिर श्रुतज्ञान धारण करूँ (५) श्रुत ज्ञान का शुद्ध कथन करने वाला बनूँ (६) श्रुत ज्ञान की प्रभावना सहित आराधना करूँ (७) विशाल मतिज्ञानी बनूँ (८) अवधिज्ञानी बनूँ (९) मनःपर्यवज्ञानी बनूँ (१०) केवल ज्ञानी बनूँ (११) निःसंकित सम्यगदृष्टि बनूँ (१२) कांक्षा रहित समकिती बनूँ (१३) धर्म करणी के फल में निसंदेह बनूँ (१४) परमत का अप्रशंसक बनूँ (१५) परमतावलंबी के परिचय से मुक्त बनूँ (१६) सम्यग्दृष्टि ज्ञानी साधर्मिक की संगति करूँ (१७)

साधार्मिकों को धर्म में आचार में स्थिर करने वाला बनूँ (१८) परमार्थ का परिचय करने वाला बनूँ (१९) क्षायिक समकितवान बनूँ (२०) अवधि दर्शनवान बनूँ (२१) केवल दर्शनवान बनूँ **(४)** लोक स्वभाव के २१ लक्षण- (१) लोक में जीव अज्ञान और अक्रिया वाले होते हैं ।(२) लोक में जीव ज्ञान और क्रिया वाले होते हैं । (३) लोक में जीव मिथ्यादर्शन वाले और सम्यग्दर्शन वाले होते हैं । (४) लोक में जीव मिथ्याचरण वाले और चारित्रवान भी होते हैं । (५) तप नहीं करने वाले और तपस्वी दोनों लोक में होते हैं ।(६) लोक में ब्रह्मचारी और अब्रह्मचारी दोनों होते हैं ।(७) क्रोधी और शांत लोग होते हैं (८) मानी और नम्र (९) कपटी और सरल दोनों तरह के लोग लोक में होते हैं । (१०) लोभी और संतोषी भी होते हैं (११) लोक में जीव शक्तिशाली पराक्रमी भी है और अक्रिय भी है । (१२) सुखी और दुःखी दोनों होते हैं । (१३) पापी और पुण्यवान (१४) धर्मी और अधर्मी (१५) अज्ञानी और ज्ञानी दोनों होते हैं । (१६) लोक में भक्ष्य अभक्ष्य दोनों पदार्थ होते हैं । (१७) लोक में राग और द्वेष दोनों होते हैं । (१८) कर्ता और नाशक (भोक्ता) । (१९) लोक में सिद्धि और असिद्धी दोनों हैं । (२०) रूपी अरूपी दोनों तरह के पदार्थ लोक में है । (२१) लोक में सर्व योनियों में भटकने वाले लोग होते हैं और लोकाग्र में स्थिर होने वाले भी जीव होते हैं । **(५)** परीषह २२ होते हैं- भूख, प्यास ***यावत्*** दर्शन परीषह । विस्तार उत्तराध्ययन में देखें । **(६)** बीच के बावीस तीर्थंकर चातुर्याम अर्थात् चार महाव्रत धर्म का कथन करते हैं। चौथा अपरिग्रह-अकिंचन महाव्रत में परिग्रह और सभी प्रकार के कुशील त्याग का समावेश होता है । **(७)** सूत्रकृतांग सूत्र के कुल-२३ अध्ययन हैं । प्रथमश्रुत स्कंध के-१६ और द्वितीय श्रुत स्कंध के- ७ यों कुल तेवीस होते हैं। **(८)** पाँच इन्द्रियों के कुल-२३ विषय हैं- (१-३) मनोज्ञ अमनोज्ञ मिश्र शब्द (४-८) पांच वर्ण (९-१०) दो गंध (११-१५) पाँच रस (१६-२३) आठ स्पर्श ।

चोवीस संख्या वाले बोल :-

[२६] चउवीसं चउवीसं देवाधिदेवा पण्णत्ता तंजहा- भारहे,

एरवए । चउवीसं तित्थयरा भारहंमि य वट्टमाणा पण्णत्ता तं जहा- उसभे *जाव* वद्धमाणे वा महावीरे वा । चउवीसं तित्थयराणं पुव्वभवियाइं णामधेज्जाइं पण्णत्ता तंजहा- वइरणाभे *जाव* णंदणे । चउवीसं तित्थयराणं सीयाओ पण्णत्ताओ तंजहा- सुदंसणा सीया *जाव* चंदपभा सीया । चउवीसं तित्थयराणं पढमं भिक्खादायारो पण्णत्ता तंजहा- सिज्जंसे *जाव* बहुले । चउवीसं तित्थयराणं णाणरुक्खा पण्णत्ता तंजहा- णग्गोहे *जाव* सालरुक्खे चउवीसं तित्थयराणं पढमसीसा पण्णत्ता तंजहा- उसभसेणे *जाव* इंदभूई । चउवीसं तित्थयराणं पढमसिस्सिणी पण्णत्ता तंजहा- बंभी *जाव* चंदणा अज्जा य ।

चउवीसं भारहेवासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए तित्थयरा भविस्संति तंजहा- महापउमे *जाव* अनंतविजये । चउवीसं तित्थयराणं पुव्वभविया णामधेज्जा तंजहा- सेणिए *जाव* साईबुद्धे । चउवीसं तित्थयरा जंबुदीवे एरवयंमि वट्टमाणा पण्णत्ता तंजहा- चंदाणणे *जाव* वारिसेणे । चउवीसं तित्थयरा एरवयंमि आगमिस्साए उस्सप्पिणीए भविस्संति तंजहा- सुमंगले *जाव* देवाणंदे। अण्णे वि भारहे, एरवए चउवीसं चउवीसं गम्मा णायवा पुव्ववुत्तं । चउवीसं चउवीसं चंद संवच्छराणं पव्वा पण्णत्ता ।

भावार्थ :- **(१)** भरत-एरवत क्षेत्र में २४-२४ तीर्थंकर होते हैं। **(२)** वर्तमान में भरतक्षेत्र के २४ तीर्थंकर- ऋषभदेव ***यावत्*** वर्धमान (महावीर) । **(३)** वर्तमान के इन तीर्थंकरों के पूर्व भव के नाम- (१) वज्रनाभ ***यावत्*** नंदन **(४)** इन चोबीस तीर्थंकरों की दीक्षा शिविका- (१) सुदर्शना ***यावत्*** (२४) चंद्र प्रभा **(५)** इन चौबीस के प्रथम भिक्षा देने वाले- (१) श्रेयांश ***यावत्*** बहुल सेठ । **(६)** इन चौवीस के चैत्य वृक्ष- (१) न्यग्रोध ***यावत्*** (२४) शाल वृक्ष। जिन वृक्षों के नीचे केवल ज्ञान उत्पन्न होता है वे ज्ञान के(चैत्य) वृक्ष कहे जाते हैं। **यहाँ स्पष्ट रूप से ज्ञान के अर्थ में चैत्य शब्द का प्रयोग हुआ है । (७)** इन चौवीस के प्रथम शिष्य- (१) ऋषभसेन ***यावत्*** (२४) इन्द्रभूति **(८)** इन चौवीस की प्रथम शिष्या- (१) ब्राह्मी ***यावत्*** (२४) चंदनार्या **(९)** भरत क्षेत्र के भावी तीर्थंकर चौवीस-(१) महापद्म ***यावत्*** (२४) अनंत

विजय **(१०)** इन भावी चौवीस तीर्थंकरों के पूर्वभव के नाम- (१) श्रेणिक ***यावत्*** (२४) स्वाति बुद्ध **(११)** जंबूद्वीप के एरवत क्षेत्र के वर्तमान २४ तीर्थंकर- (१) चंद्रानन ***यावत्*** (२४) वारिसेन । **(१२)** एरवत क्षेत्र के आगामी तीर्थंकर चौवीस- (१) सुमंगल ***यावत्*** (२४) देवानंद । इसी तरह अन्य भरत, एरवत क्षेत्र में २४-२४ तीर्थंकर होते रहते हैं । **(१३)** एक चन्द्र संवत्सर में २४ पक्ष होते हैं ।

पच्चीस संख्या वाले बोल :-

[२७] पणवीसं पुरिमपच्छिमयाणं तित्थयराणं पंच जामस्स भावणाओ पण्णत्ताओ तंजहा- इरियासमिई मणगुत्ती वयगुत्ती आलोयभायणभोई, आदाणनिक्खेवणा समिई; अणुवीइ भासणया कोहविवेगे लोभविवेगे भयविवेगे हासविवेगे; उग्गह अणुण्णवित्ता, उग्गहसीम जाणणया, सयमेव उग्गहं अणुगिण्हणया, साहम्मिय उग्गहं अणुण्णविय परि-भुंजणया, साहारण भत्तपाणं अणुण्णविय परिभुंजणया; इत्थी(पुरिस) पसु-पंडग-संसत्तग-सयणासण-वज्जणया इत्थीकहं विवज्जणया, इत्थीणं इंदियाइं मणोहराइं मणोरमाइं(पुरुसाणं) कामरागेणं आलोयणं वज्जणया, पुव्वरत्त पुव्वकिलियाणं अणुसरण वज्जणया, णिच्चमेव पणीयाहारं विवज्जणया; सोइंदिय रागोवरई चक्खुइंदिय रागोवरई घाणिंदिय रागोवरई जिब्भिदिय रागोवरई फासिंदियरागोवरई; अहवा सद्दरागोवरई जाव फास रागोवरई । पणवीसं पढमे अंगे अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा- सत्थपरिण्णा *जाव* विमुत्ती ।

पणवीसं उवज्झायाणं पयस्स गुणा पण्णत्ता तंजहा- णाणं दंसणं चरित्तं, महव्वयाइं, अट्ठपवयणाइं, भावलद्धी, रिद्धीसिद्धिलक्खणं भावणा चिंता, बारस पडिमाविहि णाणं, पासंडी विजये, पंचिदिय णिग्गहे, चउकसायदंते, चरणसत्ति गुणाइं, करणसत्ति गुणाइं, दसविहो साहुधम्मो, दससमायारी, अरिहंतस्सणं णामगोयकम्मबंधणस्स विहिणो णाणं, बभचेरगुत्ती, सव्वत्थ संवरं, संजमस्स सव्वत्थ ववहारं, दव्वखित्तकाल भावाणुसारेण सव्वं कज्जं, बारस तवोकम्मं, चउतित्थाणं पेज्जं, अहीणांगसव्विंदिए, पुट्ठदिव्वरूवसरीरे, सावगसव्वधम्म धारणा विहिस्स णाणं, इक्कारस सावग पडिमाइं आराहणाविहिस्स णाणं,

णिच्चमेव णाण दंसण चरित्त तवस्स वुड्ढी । पणवीसं उवासगाणं अणुवयाणं अइयारा पण्णत्ता तंजहा- बंधे *जाव* कुवियधाउप्पमाणाइ कम्मे । पणवीसं अणुवयाणं भावणा पण्णत्ता तंजहा- अबंधे *जाव* कुवियप्पमाणं णो अइकम्मे ।

भावार्थ :- (१) प्रथम और अंतिम तीर्थंकर के समय में पांच महाव्रतों की पच्चीस भावनाएँ होती है । यथा- (१) ईर्या समिति भावना (२) मन गुप्ति भावना (३) वचन गुप्ति भावना (४) एषणा भावना- चौडे मुख वाले पात्र में आहारभोजी (५) वस्त्र पात्र लेने रखने में यतना की भावना । (६) विचारकर बोलना (२) क्रोध रहित बोलना (८) लोभरहित बोलना (९) हास्य रहित बोलना (१०) भय रहित बोलना। (११) मकान-स्थान की आज्ञा लेना (१२) सीमा खोलना (१३) स्वयं आज्ञा लेना या बारंबार आज्ञा लेने की आदत रखना । (१४) सहवर्ती श्रमण की वस्तु भी आज्ञा से लेना (१५) साधारण आहार में से आज्ञा लेकर खाना । (१६) विविक्त सयनासन (१७) स्त्री कथा वर्जन (१८) स्त्री के अंगोपांग अदर्शन (१९) पूर्व विषयभोग स्मरण त्याग (२०) प्रणीत आहार और अतिभोजन त्याग । (२१) श्रोतेन्द्रिय निग्रह (२२-२५) चक्षुइन्द्रिय निग्रह आदि अथवा शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्श के आसक्ति का त्याग । **(२)** आचारांग सूत्र प्रथम अंग के- २५ अध्ययन- (१) शस्त्रपरिज्ञा ***यावत्*** (२५) विमुक्ति। सातवाँ अध्ययन विच्छेद हो गया है अतः २४ अध्ययन है ।

(३) उपध्याय के २५ गुण- (१) ज्ञान दर्शन चारित्र संपन्न (२) महाव्रतधारी (३) आठ प्रवचन माता पालक (४) भावलब्धि (५) रिद्धि सिद्धि लक्षण भावना (६) भिक्षु पडिमा की विधि के ज्ञाता (७) वाद में विजयी (८) पंचेन्द्रिय निग्रह युक्त (९) चार कषाय दंता (१०) चरणसत्तरी गुण युक्त (११) करण सत्तरी गुण युक्त (१२) दस साधु धर्म धारक (१३) दस समाचारी पालक (१४) जिन नाम बंध विधि ज्ञाता (१५) ब्रह्मचर्य गुप्त (१६) सर्व संवर संपन्न (१७) संयम व्यवहारी (१८) द्रव्य क्षेत्र काल भाव में निपुण (१९) १२ प्रकार की तपस्या के धारक (२०) चारों तीर्थ के प्रति प्रीति युक्त (२१) इन्द्रिय पूर्णता (२२) पुष्ट-दिव्य शरीर (२३) श्रावक व्रतों में निपुण-

अनुभवी (२४) श्रावक पडिमा की विधि के ज्ञाता । (२५) सदा रत्नत्रय में वृद्धि करने की भावना युक्त । ये २५ गुणों का संकलन, अन्य आगम साहित्य की अपेक्षा विशिष्ट उपलब्धि रूप है । **(४)** श्रावक के पाँच अणुव्रतों के २५ अतिचार-बंधे, वहे, से लेकर घर बिखरे की मर्यादा उल्लंघन तक । पाँच अणुव्रतों की २५ भावना- अबंधे, अवहे से लेकर घर बिखरे की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना।

छव्वीस-सत्तावीस संख्या वाले बोल :-

[२८] छवीसं दसा-कप्प-ववहाराणं उद्देसणकाला पण्णत्ता तं जहा- दस दसाणं, छ कप्पस्स, दस ववहारस्स । छवीसं भोगोवभोगवयस्स भेया पण्णत्ता तंजहा- उल्लणियाविहि दंतण विहि फलविहि अब्भंगणविहि उवट्टणविहि मज्जणविहि वत्थविहि विलेवणविहि पुप्फविहि आभरणविहि धूवविहि पेज्जविहि भक्खणविहि ओदणविहि सूपविहि विगयविहि सागविहि महुरविहि जीमणविहि पाणीयविहि मुखवासविहि वाहणविहि उवाणहविहि सयणविहि सचित्तविहि दव्वविहि ।

[२९] सत्तावीसं अणगारपयस्स गुणा पण्णत्ता तंजहा- णाणं, दंसणं, चरित्तं, महव्वयाइं, संजमं, अट्ठ पवयणमायं, सोइंदिय णिग्गहे,चक्खु इंदियणिग्गहे, घाणिंदियणिग्गहे, रसिंदिय णिग्गहे, फासिंदिय णिग्गहे। खंति विणए अज्जवे सोयं, भावसच्चे करणसच्चे, जोगसच्चे विरागयं दव्व खित्त काल भाव अणुसारं कज्जं, मणसमाहारणया, वयसमाहारणया, काय समाहारणया, तवं, रिद्धिसिद्धिलद्धि लक्खणं, उवसग्गाहियासइ वेयणा मरणंतिय अहियासइ । एए वि अणगाराणं पयस्स गुणा पण्णत्ता तंजहा- पंच णाणं, पंच दंसणं, पंच चरित्तं, दुवालसविहं तवोकम्मं, अण्णे वि अणगारस्स गुणा पण्णत्ता तंजहा- पाणाइवायाओवेरमणं *जाव* मरणंतिय अहियासणया।

भावार्थ :- (१) दशाश्रुतस्कंध, बृहत्कल्प और व्यवहारसूत्र इन तीन सूत्रों के कुल २६ उद्देशक हैं । **(२)** श्रावक के सातवें उपभोग-परिभोग व्रत में २६ बोलों की मर्यादा करने का कथन है- (१) शरीर पोंछने के टावेल (२) दातोन (३) स्नान द्रव्य साबुन आदि (४) तेल मालिस (५) पीठी-उबटन के पदार्थ (६) स्नान मर्यादा (७) वस्त्र

मर्यादा (८) चंदन आदि लेप्य पदार्थ (९) इत्र-फूल (१०) आभूषण मर्यादा (११) धूप-अगरबत्ती (१२) पेय पदार्थों की मर्यादा (१३) मिष्टान्न के पदार्थ (१४) चावल-खीचडी आदि (१५) सूप-चणा, उडद आदि द्विदल की मर्यादा (१६) विगय की मर्यादा (१७) हरे शाक आदि (१८) फल-मेवे की मर्यादा (१९) रोटी शाक आदि भोज्य पदार्थ (२०) पानी की मर्यादा (२१) मुखवास की मर्यादा (२२) यान-वाहन सवारी मर्यादा (२३) जूता, चप्पल मर्यादा (२४) सयन के पदार्थों की मर्यादा (२५) सचित्त पदार्थ खाने की मर्यादा (२६) खाने के समस्त पदार्थ-द्रव्यों की मर्यादा । **(३)** साधु के २७ गुण-(१) ज्ञानवंत (२) दर्शनवंत (३) चारित्रवंत (४) पाँच महाव्रतधारी (५) सत्रह प्रकार के संयम पालक (६) समितिवंत, गुप्तिवंत (७ से ११) पाँच इन्द्रिय विजेता (१२ से १५) क्षमा, विनय, सरलता, पवित्रता धारक (१६) भाव सत्य (१७) करण सत्य (१८) योग सत्य (१९) वैराग्यवंत (२०) द्रव्य क्षेत्र काल भाव के जानकार (२१-२३) मन, वचन, काया से समताधारी (२४) तपस्वी (२५) रिद्धि (पुण्य से प्राप्त) सिद्धि (पुरुषार्थ से प्राप्त) उत्तम लक्षण लब्धिवंत (२६) उपसर्ग सहनशील (२७) शारीरिक मानसिक वेदना सहिष्णु । **दूसरी तरह से** २७ गुण- ५ ज्ञान, ५ दर्शन, ५ चारित्राचार, १२ तपाचार; ये २७ गुण होते हैं । **तीसरी तरह से** २७ गुण- जो प्रचलन में प्रसिद्ध है वे इस प्रकार है- ५ महाव्रत आदि ***यावत्*** मरणांतिक कष्ट सहिष्णु। ये २७ गुण पाँच पद की भाव वंदना में बोले जाते हैं ।

अट्ठावीस संख्या वाले बोल :-

[३०] अट्ठावीसविहे आयारप्पकप्पे पण्णत्ते तंजहा- पंच राइया आरोवणा, दसराइया आरोवणा, पण्णरसराइया आरोवणा, बीस राइया आरोवणा, पणवीसराइया अरोवणा, मासिया आरोवणा, सपंचराइ यामासियाआरोवणा जाव सपंचवीसराइया मासिया आरोवणा, एवं चेव दोमासिया आरोवणा, सपंच राइया दोमासिया आरोवणा जाव एवं तिमासिया आरोवणा जाव चउमासिया आरोवणा; उग्घाइयाआरोवणा, अणुग्घाइया आरोवणा, कसिणाआरोवणा, अकसिणाआरोवणा; एतावता आयारप्पकप्पे एतावताव आयरियव्वा ।

अट्ठावीसं णाणस्स य तवस्स य अइयारा पण्णत्ता तंजहा- जं वाइद्धं *जाव* णो उवओगसहिओ पारित्तए अणियाणकडे। अट्ठावीसं णक्खत्ता पण्णत्ता तंजहा- अभिजियं *जाव* उत्तरासाढा। अट्ठावीसं णक्खत्ताणं इमे संठाणे पण्णत्ते तंजहा- अभिइणक्खत्ते गोसीसावली संठाणसंठिए पण्णत्ते *जाव* उत्तरासाढा णक्खत्ते सीहणिसियंति । अट्ठावीसं णक्खत्ताणं देवा पण्णत्ता तंजहा- अग्गीदेवे *जाव* जमदेवे।

अट्ठावीसविहा अंतरदीवा पण्णत्ता तंजहा- एगोरुयं आभासियं वेसाणियं णंगोलियं हयकण्णे गयकण्णे गोकण्णे सक्कुलिकण्णे आयंसमुहे मेंढमुहे अओमुहे गोमुहे आसमुहे, हत्थिमुहे सीहमुहे वग्घ मुहे आसकण्णे हत्थिकण्णे अकण्णे कण्णपाउरण्णे उक्कामुहे मेह मुहे विज्जुमुहे विज्जुदंते घणदंते लट्ठदंते गूढदंते सुद्धदंते । अट्ठावीसं अंतरदीवाणं णामा पण्णत्ता तंजहा- एगोरुवे य तहेव णिरवसेसं उत्तरेणं वि णामा भाणियव्वा *जाव* सुद्धदंता ।

अट्ठावीसा खओवसमिअभावेणं महई महई जीवाणं लद्धी पण्णत्ता तंजहा- णाणलद्धी, दंसणलद्धी, चरित्तं वा चरित्ताचरित्तं वि लद्धि, तवलद्धि, खेलोसहीलद्धि , जल्लोसही लद्धि, विप्पोसहीलद्धि, आमोसहीलद्धि, कोट्ठबुद्धिलद्धि, बीय बुद्धिलद्धि, पयबुद्धिलद्धि,पयाणु सारिणीलद्धि, सभिण्णसोया लद्धि, खीरासवालद्धि, महुआसवालद्धि, सप्पीआसवा लद्धि, अक्खीण महाणसियालद्धि, उज्जुमईलद्धि, विउल मईलद्धि, विउव्वियलद्धि, आहारकलद्धि, चारणलद्धि, विज्जाहरलद्धि, दाणलद्धि, लाभलद्धि, भोगलद्धि, उवभोगलद्धि, वीरियलद्धि । अट्ठावीसं मज्झिम मइणाणस्स भेया पण्णत्ता तंजहा- सोइंदिय अत्थावग्गहे *जाव* णोइंदियधारणा ।

भावार्थ :- (१) आचार प्रकल्प- प्रायश्चित्त विधान के २८ प्रकल्प प्रकार- (१) पाँच दिन का आरोपणा प्रायश्चित्त (२) दस दिन का प्रायश्चित्त (३) पंद्रह दिन का प्रायश्चित्त (४) बीस दिन का (५) पच्चीस दिन का (६) एक मास का प्रायश्चित्त (७) १ मास ५ दिन की आरोपणा (८) एक मास १० दिन (९) एक मास १५ दिन (१०) एक मास २० दिन (११) एक मास २५ दिन (१२) दो मास की आरोपणा (१३ से २४) इस तरह पाँच-पाँच दिन बढाते ***यावत्***

चार मास की आरोपणा । (२५) उद्घातिक आरोपणा (२६) अनुद्घातिक आरोपणा (२७) संपूर्ण आरोपणा(रियायत-छूट बिना) (२८) अपूर्ण आरोपणा-कुछ रियायत से आरोपणा-अंत में ६ मास से ज्यादा आरोपण नहीं होने से उसके उपर के प्रायश्चित्त भी छ मास में समाविष्ट हो जाते हैं क्योंकि इतना ही आचार प्रकल्प है, इतना आचरण होता है । **(२)** ज्ञान और तप के २८ अतिचार- १४ ज्ञान के और १४ तप के अतिचारों का योग २८ होता है । यथा- (१) सूत्र आगे पीछे बोले हो ***यावत्*** उपयोग रहित तप का पालन किया हो । निदान-फलाकांक्षा की हो **(३)** नक्षत्र २८ कहे हैं- (१) अभिजित ***यावत्*** उत्तराषाढा नक्षत्र । **(४)** इन अट्ठावीस नक्षत्रों के २८ आकार हैं- (१) अभिजित नक्षत्र के तीन तारे गोशीर्ष के आकार वाले हैं । ***यावत्*** (२८) उत्तराषाढा नक्षत्र के ४ तारे बैठे सिंह के आकार वाले हैं। **(५)** अट्ठाईस नक्षत्रों के मालिक देव- अग्नि देव ***यावत्*** यम देव । नक्षत्रों का विस्तार सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्र से जानना । (नक्षत्रों का कोष्टक पृष्ठ २८० में देखें) **(६)** अट्ठावीस अंतरद्वीप लवण समुद्र में आये हुए है जो चुल्लहिमवंत और शिखरी पर्वत के पूर्वी, पश्चिमी किनारे से ३०० योजन दूर जाने के बाद प्रारंभ होते हैं फिर क्रमशः एक के बाद दूसरा तीसरा अंतर-अंतर से सात द्वीप हैं चारों विदिशाओं में ७-७ होने से २८ चुल्ल हिमवंत के दोनों किनारों से और २८ शिखरी पर्वत के दोनों किनारों से समुद्र में है, यों कुल ५६ अंतरद्वीप है । इन सभी में युगलिक मनुष्य-तिर्यंच तथा सामान्य तिर्यंच और मालिक देव रहते हैं । यहाँ मनुष्य युगलिकों का जीवन अवसर्पिणी के तीसरे आरे के अंतिम विभाग जैसा होता है । आयुष्य भी मनुष्यों का उसी काल प्रमाणे पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग और अवगाहना आठसो धनुष की होती है। खेचर और स्थलचर युगलिक तिर्यंच भी होते हैं । बाकी सभी पाँचों सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय भद्रिक स्वभाव के अयौगलिक होते हैं । अट्ठावीस अंतरद्वीप क्षेत्र के नाम-(१) एकोरुक (२) आभासिय (३) वेसासिय (४) णंगोलिक (५) हयकर्ण (६) गज कर्ण (७) गोकर्ण (८) सक्कुलि कर्ण (९) आयंसमुख (१०) मेंढमुख (११)अजामुख

(१२) गोमुख (१३) अश्वमुख (१४) हस्तिमुख (१५) सिंह मुख (१६) व्याघ्रमुख (१७) अश्व कर्ण (१८) हस्तिकर्ण (१९) अकर्ण (२०) कर्ण प्रावरण (२१) उल्कामुख (२२) मेघमुख (२३) विद्युत मुख (२४) विद्युत दंत (२५) घन दंत (२६) लष्ट दंत (२७) गूढ दंत (२८) शुद्ध दंत । **(७)** ये ही अट्ठावीस नाम दक्षिण में और ये ही २८ नाम उत्तर में अर्थात् चुल्लहिमवंत के किनारे वाले २८ अंतरद्वीप और शिखरी पर्वत के किनारे वाले २८ अंतर द्वीपों के होते हैं । ये नाम शास्वत हैं । संभवतः मालिक देवों के नाम से हो सकते हैं । इस विषय में कोई स्पष्टीकरण प्राप्त नहीं होता किंतु नाम तो अर्थ वाले और बिना अर्थ वाले दोनों होते हैं । अतः वहाँ के मनुष्यों की आकृति से इन नामों की कल्पना नहीं करनी चाहिये । युगलिक मनुष्य तो सर्वांग सुंदर समचौरस संस्थान एवं वज्रऋषभ नाराच संहनन वाले सुरूप होते हैं । **(८)** कर्मों के क्षयोपशम भाव से जीवों को महान महान २८ लब्धियाँ प्राप्त होती है यथा- (१) ज्ञानलब्धि (२) दर्शन लब्धि (३) चारित्र लब्धि और चारित्रा- चारित्र लब्धि (४) तपो लब्धि (५) खेलोसहि लब्धि(थूंक से) (६) जलोसहि(पसीने से) (७) विप्पोसहि(मल-मूत्र) लब्धि (८) आमोसहि(स्पर्श से) लब्धि (९) कोष्ठ बुद्धि(नहीं भूलने की) लब्धि (१०) बीज बुद्धि लब्धि (११) पद बुद्धि लब्धि (१२) पदानुसारिणी लद्धि (१३) संभिन्न श्रोतो लब्धि(सभी अंगो से सुने) अथवा एक इन्द्रिय से सभी इन्द्रिय का काम होने की लब्धि । (१४) क्षीरआश्रवी लब्धि (१५) मधुआश्रवी लब्धि (१६) सप्पीआश्रवी लब्धि (१७) अक्षयमहाणसी लब्धि (१८) ऋजु मति मनःपर्यव ज्ञान (१९) विपुलमति मनःपर्यव ज्ञान । (२०) वैक्रिय लब्धि (२१) आहारक लब्धि (२२) चारण लब्धि (२३) विद्याधर लब्धि (२४-२८) दानादि पांच लब्धि, अंतराय कर्म के क्षयोपशम से । (९) मति ज्ञान के २८ भेद-प्रभेद यथा- अर्थावग्रह आदि । विस्तार नंदी सूत्र से जानना ।

२९-३०-३१ संख्या वाले बोल :-

[३१] एगूणतीसाए पावसुयपसंगे- भोमे *जाव* अण्णउत्थिय पवत्ताणुओगे । एगूणतीसं मज्झिम सुयणाणस्स गुणनिप्फणाइं णामधिज्जाइं

पण्णत्ताइं तंजहा- निग्गंथं पावयणंति वा समण सुत्तंति वा सुयंति वा महानिग्गंथंति वा निग्गंथवयस्संति वा मुत्ति मग्गं पढमं अंगं ति वा अज्जाइं वयणाइंति वा अरिहंताणंति वा परमेट्ठी गुणवित्थारंति वा अरिहंत चेइयाणिति वा अरिहकहियंति वा केवलीकहियंति वा लोगुत्तरियं अणुओगंति वा निग्गंथ चेइयाणिति वा माहण चेइयाणिति वा विणयमूल धम्मकहियंति वा बंभसिद्धिंतंति वा भिक्खु चेइयाणिति वा निग्गंथ सासणंति वा अरिहंत वयणंति वा केवली चेइयाणिति वा जिणवरिंदेहिं दंसियंति वा णेयाउयं मग्गंति वा णिग्गंथायारंति वा णिग्गंथागमंति वा लोगुत्तरियं धम्मं कहियंति वा णिग्गंथ वेयंति वा अज्जवेयंति वा पावयण बंभवेयंति वा ।

[३२] तीसं मोहणीय ठाणा पण्णत्ता तंजहा-

जे यावि तस्से पाणे, वारिमज्झे विगाहिया ।
उदएण कम्म मारेइ, महामोहं पकुव्वइ ॥१॥

जाव अपस्समाणो पस्सामि, देवे जक्खे य गुज्झगे ।
अण्णाणी जिणपूयट्ठी, महामोहं पकुव्वइ ॥३०॥

तीसाए मुहुत्ताणं णामधेज्जा पण्णत्ता तंजहा- रोद्दे *जाव* रक्खसे तीसाए हिंसा गुण निप्फण णामा पण्णत्ता तंजहा- पाणवहं, उम्मूलणा सरीराओ *जाव* लुंपणा ।

[३३] एक्कतीसं सिद्धाणं गुणा पण्णत्ता तंजहा- खीणे आभिणि बोहीयणाणावरणे *जाव* खीणे वीरिये अणंतसत्ती अंतराये। एक्कतीसं पंच महव्वयाणं राईभोयण वेरमणस्स य अइयारा पण्णत्ता तंजहा- णो ईरियासमिये *जाव* भुजंतं वा साइज्जइ । एक्कतीसं पंच महव्वयाणं राईभोयण वेरमणस्स भावणा पण्णत्ता तं जहा- ईरियासमिए जाव णो रत्तिं भुंजंतं वा साइज्जइ ।

भावार्थ :- **(१)** पाप सूत्र २९ कहे गये हैं- (१) भूमि कंप शास्त्र ***यावत्*** अन्यतीर्थिक प्रवृत्तानुयोग । विस्तार समवायांग से जानना । **(२)** श्रुत ज्ञान के, श्रुत-शास्त्र के २९ पर्यायनाम- (१) निर्ग्रंथ प्रवचन (२) मुक्ति मार्ग (३) श्रुत (४) महानिर्ग्रंथ (५) निर्ग्रंथ वचन (६) मुक्ति मार्ग का प्रथम अंग (७) आर्य वचन (८) अरिहंतों का धर्म

(९) परमेष्ठी गुण विस्तार (१०) अरिहंत ज्ञान (११) अरिहंत भाषित (१२) केवली भाषित (१३) लोकोत्तर अनुयोग (१४) निर्ग्रंथों का ज्ञान (१५) ब्राह्मण ज्ञान (ब्रह्मचारी-अहिंसक) (१६) विनय मूल धर्म (१७) ब्रह्मचर्य सिद्धि (१८) भिक्षु ज्ञान (१९) निर्ग्रंथ शासन (२०) अरिहंत वचन (२१) केवली का ज्ञान (२२) जिनेश्वर दर्शन (२३) न्याय युक्त मार्ग (२४) निर्ग्रंथाचार (२५) निर्ग्रंथ आगम (२६) लोकोत्तर धर्म (२७) निर्ग्रंथ वेद-शास्त्र (२८) आर्य वेद-शास्त्र (२९) प्रवचन ब्रह्मवेद-आत्मज्ञान । **(३)** महामोहनीय कर्मबंध स्थान तीस- (१) त्रस प्राणियों को जल में डुबोकर मारे ***यावत्*** देवों को नहीं देखते हुए भी झूठे प्रपोगंडा करे । विस्तार समवायांग में देखें। **(४)** तीस मुहूर्तों के नाम- (१) रौद्र(अर्ध रात्रि के बाद का मुहुर्त) ***यावत्*** (३०) राक्षस(अर्ध रात्रि का अंतिम मुहुर्त) **(५)** हिंसा के तीस पर्याय नाम- (१) प्राणवध, शरीरांत ***यावत्*** (३०) लुंपणा । विस्तार प्रश्नव्याकरणसूत्र में देखें । **(६)** सिद्धों के ३१ गुण- मूल आठ कर्मों की ३१ उत्तर प्रकृति क्षय रूप उपचार से गुण गिने हैं, वास्तव में ८ कर्म क्षय से ८ गुण ही प्रधान होते हैं । यथा- (१) क्षीण मति ज्ञानावरण ***यावत्*** (३१) क्षीण वीर्य लब्धि, अनंत शक्ति का अंतराय **(७)** पाँच महाव्रत और रात्रि भोजन वेरमण व्रत के कुल ३१ अतिचार कहे हैं अर्थात् पाँच महाव्रत के २५ और रात्रि भोजन के ६ यों कुल ३१ होते हैं, वे इस प्रकार है- यथा ईर्यासमिति का अपालन ***यावत्*** रात्रि में आहार करने का अनुमोदन । इसी तरह पाँच महाव्रत और रात्रि भोजन विरमण व्रत की कुल ३१ भावना कही गई है यथा- इर्यासमिति का पालन ***यावत्*** रात्रि में आहार करने वाले का अनुमोदन नहीं करना ।

बत्तीस संख्या वाले बोल :-

[३४] बत्तीसं जोगसंगहा पण्णत्ता तंजहा- आलोयणे, णिरवलावे, आवइसु दढधम्मे, अणिस्सिओवहाणतवे, सिक्खा, णिप्पडिकम्मे, अण्णायया, अलोभे, तितिक्खापरिसहा, अज्जवे, सुई, सम्मदिट्ठि, समाही, आयारे, विणयोवणए, धिइमईसंपण्णे, संवेगसंपण्णे, पणिहीसंपण्णे, सुविहीसंपण्णे, अत्त दोसोवसंहारे, सव्वकामगुणविरत्ते, पच्चक्खाणे, विउसग्गे, अप्पमाये, लवालवे, धम्मसुक्कज्झाणसंपण्णे, जोगसंवरसंपण्णे, उदय-

मारणंतिए अहियासणया, संगाणं परिण्णाया, पायच्छित्त करणे वि य, आराहणा य मरणंते । बत्तीसं जंबुदीवे महाविदेहेसु विजया पण्णत्ता तंजहा- कच्छविजए *जाव* गंधिलावइविजए।

बत्तीसं भवणवई जोइसिय विमाणवासी देवाणं इंदा पण्णत्ता तंजहा- चमरिंदे बलिंदे धरणिंदे भूयाणंदे वेणुदेविंदे वेणुदालिंदे हरिंदे हरिस्सहेंदे अग्गीसिहेंदे अग्गिनाणविंदे पुण्णिंदे वसिट्ठिंदे जलकंतिंदे जलप्पभिंदे अमियगयेंदे अमिय वाहणिंदे वेलंबिंदे पहंजणिंदे घोसिंदे महाघोसिंदे चंदिंदे सूरिंदे सक्किंदे ईसाणिंदे सणंकूमारिंदे माहिंदे बंभिंदे लंत्तयिंदे सुक्किंदे सहस्सारिंदे पाणयिंदे अचुयिंदे ।

बत्तीसं एसणासमियस्स महादोसा पण्णत्ता तंजहा- आहा-कम्मेहिं वा उद्देसियं वा मिस्सजायं वा कीयगडं वा पामिच्चं वा अच्छिज्जं वा अणिसिट्ठं वा अभिहडं वा आयसायणं वा पूईकम्मेण वा ठवणेण वा पाउरणेण वा परियट्टियकम्मेण वा अझोयरयकम्मेण वा उब्भिण्णेण वा मालोहडेण वा धाई कम्मेण वा दूईकम्मेण वा निमित्तकम्मेण वा आजीवकम्मेण वा दीणकम्मेण वा ओसहिकम्मेण वा कोहेण वा माणेण वा मायाए वा लोहेण वा पुरेपच्छा संथवेण वा विज्जाकम्मेण वा मंतकम्मेण वा चुण्णेण वा जोगेण वा मूलकम्मेण वा एते महया एसणा दोसा ।

बत्तीसं वाणमंतर देवाणं इंदा पण्णत्ता तंजहा- काले महाकाले सुरूवे पडिरूवे पुणभद्दे माणिभद्दे भीमे महाभीमे किंण्णर किंपुरुसे महापुरुसे अइकाये महाकाये गीयरई गीय- जस्से संनिहीए समाणे धाए विधाए इसी इसीवाले ईसरे महा ईसरे सुवण्णे विसाले हासे हासरई सेये महासेये पयंगे पयंगवई।

भावार्थ :- **(१)** बत्तीस योग संग्रह अर्थात् साधु को इन ३२ गुणों का आत्मा में संचय करना, विकास करना, अभ्यास करना होता है, वे इस प्रकार है- (१) गुरु के पास आलोचना करना (२) किसी की आलोचना अन्य को कहना नहीं (३) आपत्ति काल में धर्म दृढता (४) चाहना रहित तप अथवा स्वावलंबी तप (५) ग्रहण आसेवन शिक्षा संपन्न बनना (६) शरीर सुश्रुषा त्याग (७) अज्ञात कुल की गौचरी(गुप्त तप) (८) लोभ रहित बनना (९) कठिन परिषह विजेता

(१०) सरल स्वभावी (११) पवित्र हृदयी-साफ दिल संयम वाला (१२) निर्मल समकितवान (१३) समाधि भाव का अभ्यास (१४) आचारवान (१५) विनय गुण में अभ्यस्त सावधान (१६) धैर्यवान (१७) वैराग्यवान (१८) अध्वसाय और शरीर की स्थिरता (१९) शुद्ध क्रिया (२०) संवर वृद्धि (२१) स्वदोष निवारण (२२) सर्व विषयों से विरक्त (२३) त्याग प्रत्याख्यान वृद्धि (२४) व्युत्सर्ग कायोत्सर्ग वृद्धि (२५) अप्रमत भाव में रहें (२६) प्रतिक्षण जागृत रहें अर्थात् संयम में सतर्क रहे (२७) शुभ ध्यान वृद्धि (२८) योग संवरण-अल्प प्रवृत्ति वाला बने (२९) उदय कर्म में सहनशीलता रखे (३०) संग त्याग संपर्क निवृत्ति-एकत्व में रमण का अभ्यास (३१) प्राप्त प्रायश्चित्त को तपाचरण द्वारा उतारना (३२) मारणांतिक आराधना की लक्ष्य वृद्धि। ये साधु के गुण हैं या संयम साधना विकास के गुण है । **(२)** जंबू द्वीप के महाविदेह क्षेत्र में ३२ विजय है- (१) कच्छ विजय ***यावत्*** (३२) गंधिलावती विजय । विस्तार जंबू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में देखें । **(३)** भवनपति, ज्योतिषी और वैमानिक तीनों के मिलकर ३२ इन्द्र है- २० भवनपति के + २ ज्योतिषी के + १० वैमानिक के = ३२। उनके नाम (१) चमरेंद्र (२) बलीन्द्र (३) धरणेन्द्र (४) भूतानंद (५) वेणुदेव (६) वेणुदालि (७) हरिन्द्र (८) हरिसहेन्द्र (९) अग्निसिंहेन्द्र (१०) अग्निज्ञानेन्द्र (११) पूर्णेन्द्र (१२) वशिष्ठेन्द्र (१३) जलकांतेन्द्र (१४) जलप्रभेन्द्र (१५) अमितकेन्द्र (१६) अमितवाहनेन्द्र (१७) वेलंबेन्द्र (१८) प्रभंजनेन्द्र (१९) घोषेन्द्र (२०) महाघोषेन्द्र (२१) चंद्रेन्द्र (२२) सूर्येन्द्र (२३) शक्रेन्द्र (२४) ईशानेन्द्र (२५) सनत्कुमारेन्द्र (२६) माहेन्द्र (२७) ब्रह्मेन्द्र (२८) लांतकेन्द्र (२९) महाशुक्रेन्द्र (३०) सहस्रारेन्द्र (३१) प्राणतेन्द्र (३२) अच्युतेन्द्र **(४)** एषणा समिति के ३२ बडे दोष- १६ उद्गम के १६ उत्पादना के- (१) आधाकर्मी (२) उद्देशिक (३) मिश्रजात (४) क्रीत (५) उधारा (६) छीना हुआ (७) मालिक की बिना आज्ञा (८) सामने लाया (९) महेमान निमित्तक (१०) पूतिकर्म (११) स्थापित (१२) प्रकाश करके दिया (१३) अदला बदली किया गया (१४) साधु के भाव से वृद्धि किया (१५) उद्भिन्न दोष (१६) मालोहड दोष । (१७) बालक को संभाल

कर (१८) संदेशा पहुँचाकर (१९) निमित्त बताकर (२०) अपने गुण प्रगट करके (२१) भिखारी की तरह दीन वृत्ति से (२२) दवा-औषध उपचार बता कर (२३) क्रोध करके (२४) अहं भाव करके (२५) माया-होशियारी करके (२६) लोभ करके आहार लेना (२७) पहले या पीछे दाता की अथवा खुद की प्रशंसा करके (२८) विद्या-कामण-टुमण बताकर । (२९) मंत्र सिखाकर (३०) चूर्ण मंत्रित करके देकर (३१) लेप बताकर या नक्षत्र योग बताकर (३२) गर्भपातादि दुष्कार्य बताकर । इनमें १६ दाता से लगने वाले दोष हैं और १६ खुद साधु के द्वारा लगने वाले दोष है । **(५)** व्यंतर देवों के ३२ इन्द्र हैं- (१) काल (२) महाकाल (३) सुरूप (४) प्रतिरूप (५) पूर्णभद्र (६) माणिभद्र (७) भीम (८) महाभीम (९) किन्नर (१०) किंपुरुष (११) सत्पुरुष (१२) महापुरुष (१३) अतिकाय (१४) महाकाय (१५) गीतरति (१६) गीतयश (१७) संनिहित (१८) समान (१९) धाता (२०) विधाता (२१) ईसी (२२) ईसीपाल (२३) ईश्वर (२४) महेश्वर (२५) सुवर्ण (२६) विशाल (२७) हास्य (२८) हास्यरति (२९) श्वेत (३०) महाश्वेत (३१) पतंग (३२) पतंगपति ।

तेतीस से छत्तीस संख्या वाले बोल :-

[३५] तेत्तीसं सेहस्स आसायणा पण्णत्ता तंजहा- सेहे रायणिस्स पुरओ गंता भवइ आसायणा सेहस्स *जाव* सेहे रायणियस्स आलवमाणस्स तत्थ गए चेव पडिसुणित्ता भवइ आसायणा सेहस्स।

[३६] चउतीसं अरिहंताणं भगवंताणं अइसेसा पण्णत्ता तंजहा- अवट्ठियकेस मंसुरोमणहे, णिरामयाणिरुवलेवागायलट्ठी, गोक्खीर पंडुरे मंससोणिए, पउमुप्पलं गंधियउस्सास णिस्सासे, पच्छण्ण आहार-णिहारे अदिस्से मंसचक्खूणा, आगासगयं धम्मचक्कं *जाव* पुव्वुपण्णा वि य णं उप्पइया वाहि खिप्पामेव उवसमंति ।

[३७] पणतीसं अरिहंताणं भगवंताणं सच्चवयणस्स अइसेसा पण्णत्ता। पणतीसं सव्वाइं भासाओ जहण्णपय-मूलमाउया पण्णत्ता तंजहा- अइउऋ, कखगघङ, चछजझञ, टठडढण, तथदधन, पफबभम, यरलव, सह । पणतीसं गुण-सिक्खा वयाणं अइयारा पण्णत्ता तं

जहा- उड्ढदिसि पमाणाइक्कम्मे *जाव* मच्छरियाए । पणतीसं गुण सिक्खावयाणं भावणा पण्णत्ता तंजहा- उड्ढदिसिपमाणं णो अइक्कम्मे *जाव* अमच्छरियाए ।

[३८] छत्तीसं उत्तरज्झयणस्स अज्झयणा पण्णत्ता तंजहा- विणयमूलधम्मे णाममज्झयणं, परीसह अज्झयणं *जाव* जीवाजीवविभत्तिणामं अज्झयणं छत्तीसं आयरियाणं पयस्स गुणाइं पण्णत्ता तंजहा- नाणं, दंसणं, चरित्तं, संजमे, महव्वयाइं सभावणा समायारी, सव्वाइं निक्खेवाइं णयाइं पमाणाइं णीई, पासंडविजये, सोइंदिय संवरे चक्खूइंदिय संवरे, घाणिंदियसंवरे, रसिंदियसंवरे, फासिंदिय संवरे, खंती, मद्दवं, अज्जवं, तोसं, इरियासम्मियं, भासासम्मियं, एसणासम्मियं, आयाण णिक्खेवणासम्मियं, उच्चारपासवण-खेल-जल्लमल्ल-सिंघाण परिठावणियासम्मियं, मणोगुत्ती, वइगुत्ती, कायगुत्ती, आयारसंपया, सुयसंपया, सरीरसंपया, वईसंपया, वायणासंपया, मईसंपया, पयोग मईसंपया, संगहपरिण्णासंपया, दव्व खित्त काल भावाणुसारेणं कज्जं, बंभचेरगुत्ती, तवाइं, भावरिद्धि सिद्धिलद्धिलक्खणं; एवं हवंति छत्तीसं एयाइं आयरियगुणाइं। एए चेव चरणस्स तिप्पया समत्ता ।

भावार्थ :- **(१)** गुरु वडील श्रमणों की अपेक्षा ३३ आशातना शिष्य को लगती है । विस्तार से दशाश्रुत स्कंध में देखें । **(२)** अरिहंत-तीर्थंकरों के ३४ अतिशय होते हैं अर्थात् विशेषताएँ होती है- (१) अवस्थित केश मूछ रोमनख (२) रोग रहित निर्मल शरीर (३) निर्लेप शरीर (४) मांस रुधिर श्वेत (५) सुगंधी श्वासोश्वास (६) चर्म चक्षु से अदृश्य आहार निहार (७) धर्मचक्र आकाशगत ***यावत्*** (३४) पूर्वोत्पन्न व्याधि शीघ्र उपशांत । विस्तार समवायांग में देखें ।

(३) तीर्थंकरों के ३५ वचनातिशय कहे गये हैं, स्पष्टीकरण समवायांग सूत्र में देखे **(४)** सर्व भाषा के मूल मातृ पद पैंतीस- (१-४) अ इ उ ऋ । क वर्ग च वर्ग ट वर्ग त वर्ग प वर्ग के ५ x ५ =२५ । य वर्ग के ४ और स, ह यों कुल- ४ + २५ + ४ + २ = ३५ । **(५)** श्रावक के गुण व्रत, शिक्षा व्रत के ३५ अतिचार है। ७ व्रत x ५ = ३५ अतिचार । **(६)** इन्हीं सात व्रतों के अतिचार वर्जन रूप भावना पैंतीस हैं अर्थात् ये अतिचार दोष नहीं लगाना ।

(७) उत्तराध्ययन सूत्र के ३६ अध्ययन है- (१) विनय मूल धर्म नामक अध्ययन (२) परीषह अध्ययन ***यावत्*** (३६) जीवाजीवविभक्ति अध्ययन । विस्तार समवायांग सूत्र में देखें ।

(८) आचार्य के ३६ गुण- (१) ज्ञान (२) दर्शन (३) चारित्र (४) १७ प्रकार का संयम (५) महाव्रत २५ भावना समाचारी सहित (६) नय निक्षेप प्रमाण का ज्ञाता (७) मिथ्यात्वी से वाद में विजयी (८ से १२) पाँच इन्द्रिय संवर, विजय (१३) क्षमा (१४) मृदुता (१५) सरलता (१६) निर्लोभता संतोष (१७ से २१) पांच समितिवंत (२२-२४) तीन गुप्ति वंत (२५-३२) आठ संपदा (३३) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का ज्ञाता (३४) ब्रह्मचर्य गुप्ति (३५) तपस्वी (३६)ऋद्धि सिद्धि लब्धि आदि विशिष्ट लक्षण संपन्न । चारित्र के ये १ से ३६ बोल कहे हैं, इनमें जानने योग्य जाने नहीं हो, आचरण करने योग्य का आचरण नहीं किया हो और छोडने योग्य को छोडा न हो; तो ये तीन अतिचार सर्व बोलों संबंधी चारित्रातिचार कहे गये हैं ।

[३९] से किं तं भंते ! तवस्सणं अइयारा पण्णत्ता ? गोयमा! तवस्सणं चउद्दस्सविहा अइयारा पण्णत्ता तंजहा- अहासुत्तं, अहाकप्पं, अहामग्गं, अहातच्चं, दव्वं, खित्तं, कालं, भावं, सद्धासत्तियं, अरोगवं, रोगातंके अणुसरणेणं, तस्स णं इमे अइयारा- सब्भावणा तवं अचिंतित्तए, अप्पतित्तए, अरोइत्तए, असद्धित्तए, अकडित्तए, उवसमकायेण अफासित्तए अपालित्तए, असोहित्तए, अविसोहित्तए, णो इरियत्तए, अकित्तित्तए, णो आणाए आराहित्तए, अकाले पारित्तए, अणुवओगेण पारित्तए, णियाण कडे। से तं तवस्स अइयारा ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! तप के कितने अतिचार कहे है ? हे गौतम! तप के स्वरूप सहित १४ अतिचार कहे हैं जिसमें ११ तप की भावना आराधना स्वरूप है- १. तप सूत्रानुसार, २. कल्पानुसार, ३. मोक्षमार्गानुसार, ४. यथातथ्य रूप से आराधना करना, ५. द्रव्य, ६. क्षेत्र, ७. काल, ८. भाव, ९. श्रद्धा-शक्ति अनुसार तप करना, १०-११. रोग तथा निरोग दोनों ही अवस्था में संयोगों में समभाव पूर्वक तप का अनुसरण करना। ऐसे तपाराधना के १४ अतिचार इस

प्रकार है- (१) भावना सहित तप का चिंतन न किया हो (२) प्रतीति न करी हो (३) रुचि न करी हो (४) श्रद्धा न करी हो (५) तप का आचरण न किया हो (६) शरीर की समाधि युक्त काया से स्पर्शना पालना न की हो । (७) शोधन-शुद्धि न की हो (८) विशुद्धि न करी हो (९) तप के समय उपयोग पूर्वक गमन न किया हो (१०) तप का कीर्तन-गुणगान बहुमान न किया हो, अहोभाव न रखा हो । (११) आज्ञानुसार तप का पालन न किया हो (१२) समय के पहले तप पाल लिया हो । (१३) तपस्या विधि सहित उपयोग सहित पूर्ण न करी हो (१४) नियाणा किया हो अर्थात् तप से आगामी फलाकांक्षा की हो । ये तप के अतिचार हैं ।

दूसरी तरह से अर्थ- (१) तप में सूत्रानुसार वर्तन न किया हो (२) क्रिया कल्पविधि का अनुसरण न किया हो । (३) ज्ञान दर्शन चारित्र रूप सत्य मोक्षमार्ग का अनुसरण न किया हो (४) द्रव्य क्षेत्र काल भाव श्रद्धा शक्ति अनुसार यथातथ्य पालन न किया हो (५) रोगातंक में भी दीनता रहित स्वस्थ भाव से पालन न किया हो (६) भाव पूर्वक तप करने का चिंतन निर्णय न किया हो । (७) श्रद्धा प्रतीति रुचि युक्त तप न किया हो । (८) शरीर की समाधि युक्त तप की स्पर्शना-पालना शोधन विशोधन न किया हो (९) उपयोग पूर्वक गमनागमन नहीं किया हो । (१०) तप का कीर्तन गुणग्राम अहोभाव न किया हो (११) आज्ञा अनुसार आराधन न किया हो (१२) समय पूर्ण हुए बिना तप पाला हो (१३) उपयोग सहित तप का पालन न किया हो (१४) नियाणा किया हो अर्थात् तप से आगामी फलाकांक्षा की हो । प्रथम अर्थ ही विशेष उपयुक्त लगता है ।

विवेचन :- प्रस्तुत सूत्र- १ से ३९ सूत्रों में ज्ञान दर्शन चारित्र और तप के अतिचारों का कथन किया गया है जिसमें ज्ञान के १४ और दर्शन के ५ अतिचार प्रचलित है । चारित्र के अतिचार प्रचलन में १०१ हैं वे नहीं कहकर यहाँ तीन अतिचार ही कहे हैं- (१) पहला अतिचार- १ बोल से ३६ बोल तक में जो जानने योग्य है उनका ज्ञान न किया हो, न रखा हो (२) दूसरा अतिचार- एक बोल से ३६ बोल तक में आचरण करने योग्य का पालन न किया हो (३)

तीसरा अतिचार- एक बोल से ३६ बोल तक में छोडने योग्य का त्याग न किया हो । इस तरह इन तीन पदों में समस्त अतिचारों का समावेश किया है । प्रचलित १०१ अतिचार इस प्रकार है- (१-२५) पाँच महाव्रतों के २५, (२६-२७) रात्रि भोजन के दो, (२८-३१) ईर्या समिति के चार, (३२-३३) भाषा समिति के दो, (३४-८०) एषणा समिति के ४७ अतिचार, (८१-८२) चौथी समिति के दो, (८३-९२) पाँचवीं समिति के दस, (९३-१०१) तीन गुप्ति के ३ X ३ = ९ यों कुल- १०१ अतिचार का भी तीन पद में समावेश हो जाता है ।

एक से ३६ तक के बोलों में कई बोल समवायांग, दशाश्रुत स्कंध आदि शास्त्रों का अनुसरण रूप है । कुछ विशेषताएँ हैं, यथा- प्रथम बोल में ४८ वें क्रमांक में श्रमणों के लिये एक श्वेत वस्त्र ही होना कहा है । **तीसरे बोल में**-आचार्य, उपाध्याय और तीर्थंकर ये तीन का स्वलिंग में ही होना कहा है अर्थात् अन्य श्रमण कभी अन्यलिंग आदि में हो सकते हैं । अन्यलिंग वाले को भाव से संयम आ सकता है । केवली भी अन्यलिंग में हो सकते हैं । यहाँ लिंग कुल-५ कहे हैं- गृहस्थ लिंग, अन्य लिंग, द्रव्य लिंग, कुलिंग और स्वलिंग । यहाँ स्वलिंग में मुँहपत्ति रजोहरण संयमोपकरण लिये हैं, द्रव्यलिंग में अन्य भण्डोपकरण लिये है । कुलिंग में स्वलिंग की वेशभूषा का विकृत रूप लिया है यथा- मुखवस्त्रिका मुख पर नहीं लगाना, रजोहरण यथास्थान नहीं रखना, अधिक या रंगीन उपकरण डंडा आदि रखना । **पाँचवें बोल में-** स्वलिंग और द्रव्यलिंग के ५-५ अतिचार कहे हैं- ४-४ तो सरीखे हैं प्रतिलेखन प्रमार्जन संबंधी, पाँचवाँ अतिचार स्वलिंग में मुखवस्त्रिका मुख पर नहीं बांधने का कहा है और द्रव्य लिंग में पाँचवाँ अतिचार भण्डोपकरणों को यथास्थल व्यवस्थित नहीं रखने को कहा है । ये बातें अन्य किसी शास्त्र में नहीं मिलती ।

छट्ठे बोल में रात्रि भोजन के छ अतिचार कहे हैं- जो भावार्थ में स्पष्ट है, प्रचलन में दो अतिचार इस तरह है- (१) दिवस रात्रि भोजन- दिन में अंधेरे में भोजन करना (२) रात्रि-रात्रि भोजन- भूल से सुबह शाम सूर्योदय नहीं हो, सूर्यास्त हो जाय तो अतिचार होता

है । जिसका दिग्दर्शन बृहत्कल्प और निशीथ सूत्र में है । **आठवें बोल में** आठ कर्मों के नाश के लिये आठ पडवाली मुँहपत्ति कही है । **दसवें बोल में** प्रश्न व्याकरण सूत्र के १० अध्ययन कहे है साथ ही उसके पहले अध्ययन के हिंसादि १० उद्देशे कहे हैं । जो वर्तमान प्रश्न व्याकरण में १० अध्ययन रूप में मौजूद है । **बारहवें बोल में-** अरिहंत के १२ गुण संकलन हैं जो प्रचलन के १२ गुण से विशेष हैं । **चौदहवें बोल में** श्रावक के १४ नियम के नाम स्पष्ट कहे हैं । अन्य आगमों में संकेत मात्र है । **वीसवें बोल में** २० विहरमान के पूर्ण नाम दिये हैं । **पच्चीसवें बोल में** उपाध्याय के २५ गुण कहे हैं जो प्रचलन से कुछ विशेष एवं नये ढंग से हैं । **छत्तीसवें बोल में** आचार्य के ३६ गुण भी प्रचलन से नये ढंग के दिये हैं । **अट्ठाइसवें बोल में २८ लब्धियों के नाम गिनाये हैं जो एक साथ अन्यत्र नहीं मिलते हैं** । **तप के १४** अतिचार भी विशेष कहे हैं जो भावार्थ से स्पष्ट हैं । और भी कई नई सामग्री जो हमने ३२ आगम में नहीं देखी होगी वह इस पूरे सूत्र में जगह-जगह रही हुई है।उसको एक परिशिष्ट रूप में संकलन करके अंत में दिया है ।

प्रथम सामायिक आवश्यक :-

[४०] से किं तं भंते! इच्छामि आलोइयं णामं सुत्तं ? गोयमा! इच्छामि आलोइयं जो मे देवसिओ अइयारो कओ णाणम्मि दंसणम्मि चरित्तम्मि तवम्मि य मणेणं वायाए कायेणं करेइ करावेइ करंतं वा साइज्जइ तस्स मिच्छामि दुक्कडं अहवा तस्स विचिंतितं वा तस्स विसोढुं । पढमं सामाइय णामावस्सयमज्झयणं समत्तं ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! आलोचना नाम का सूत्र क्या है ? हे गौतम! आलोचना अर्थात् पश्चात्तापकरण-शुद्ध हृदय से क्षमा मांगना । यथा- दिवस संबंधी ज्ञान दर्शन चारित्र तथा तप में मन, वचन, काया से कोई दुष्कृत्य किया हो, कराया हो, करने वाले को भला जाना हो यों कोई अतिचार लगा हो तो मेरा दुष्कृत्य निष्फल हो। दुष्कृत्य की आलोचना करके विशेष शुद्ध बनूँ ऐसा आचरण यह आलोचना है अथवा अतिचारों के चिंतन के लिये विशेष शुद्धि रूप कायोत्सर्ग करना यह प्रथम सामायिक नामक आवश्यक अध्ययन है ।

दूसरा चतुर्विंशति स्तव आवश्यक :-

[४१] से किं तं भंते ! चउवीसत्थवो वा उक्कित्तणाणामं सुत्तं? गोयमा ! लोगहियं वा चउवीसत्थवो (उक्कित्तणा) णामं सुत्तं एवामेवं पण्णत्तं तं जहा-

लोगस्स उज्जोगरे धम्मतित्थयरे जिणे,
अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसंपि केवली ॥१॥

उसभ मजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च,
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥२॥

सुविहिं च पुप्फदंतं, सीयलसिज्जंसवासुपुज्जं च,
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥३॥

कुंथुं अरं च मल्लिं वंदे, मुणिसुव्वयं णमिजिणं च,
वंदामि अरिट्ठणेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ॥४॥

एवं मए अभित्थुआ, विहुय रयमला पहीण जरमरणा,
चउवीसंपि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु ॥५॥

कित्तिय वंदिय महिया जेए लोगस्स उत्तमा सिद्धा,
आरुग्ग बोहिलाभं समाहिवरमुत्तमं दिंतु ॥६॥

चंदेसु निम्मलयरा आइच्चेसु अहियं पयासयरा,
सागरवर गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु॥७॥

सव्वे काले वि भंते ! एवामेवं वट्टइ ? णो तिणट्ठे ! गोयमा! एगे अरिहे एगे थवे जाव चउवीसा य चउवीसत्थवे णवरं णाम सासए ति वुच्चइ बितियावस्सयस्स अट्ठे। इति उक्कित्तणा णामं वा चउवीसत्थवावस्सयं णामज्झयणं समत्तं ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! चतुर्विंशति स्तव अथवा उत्कीर्तन नामक सूत्र क्या है ? हे गौतम ! लोक में हितकारी २४ तीर्थंकरों की स्तुति -कीर्तन रूप सूत्र इस प्रकार है - **गाथा-१ :** लोक में प्रकाश करने वाले, धर्मरूप चार तीर्थ की स्थापना करने वाले, राग द्वेष विजेता, कर्म शत्रु को नष्ट करने वाले २४ केवलज्ञानी तीर्थंकरों की स्तुति करूँगा । **गाथा- २ :** ऋषभदेव और अजितनाथ को वंदन करता हूँ । संभवनाथ और अभिनंदन स्वामी को, सुमतिनाथ भगवान और

पद्मप्रभु स्वामी को, श्री सुपार्श्वनाथ तथा जिनेश्वर चन्द्र प्रभु को वंदन करता हूँ । **गाथा-३ :** श्री सुविधिनाथ जिनका दूसरा नाम पुष्पदंत है उन्हें तथा श्री शीतलनाथ, श्रेयांशनाथ, वासुपूज्य स्वामी, श्री विमलनाथ, अनंतनाथ, श्री धर्मनाथ, शांतिनाथजी को वंदन करता हूँ। **गाथा-४ :** श्री कुंथुनाथ, श्री अरनाथ, मल्लिनाथ को वंदना करता हूँ। श्री मुनिसुव्रत स्वामी को, श्री नमिजिन भगवान को वंदन करता हूँ। श्री अरिष्ट नेमि, श्री पार्श्वनाथ तथा श्री वर्धमान स्वामी-महावीर भगवान को वंदन करता हूँ । **गाथा-५ :** इस प्रकार स्तुति किये गये, कर्म रूपी रजमेल को दूर किये हुए तथा जिनके जरामरण दुःख नष्ट हो गये ऐसे चौवीसों जिनेश्वर तीर्थंकर मुझ पर प्रसन्न होवो । **गाथा-६ :** इस तरह कीर्तित वंदित पूजित जो लोक में उत्तम सिद्ध भगवंत है वे मुझे शुद्ध समकित लाभ और श्रेष्ठ, उत्तम, भावसमाधि देवें । **गाथा-७ :** चंद्रों से भी विशेष निर्मल, सूर्यों से भी अधिक प्रकाश करने वाले तथा सागर के समान श्रेष्ठ और गंभीर सिद्ध भगवान मुझे सिद्धि प्रदान करें ।

हे भगवन् ! क्या हमेशा यह स्तुति ऐसी ही रहती है ? हे गौतम! ऐसा नहीं है । एक तीर्थंकर हुए हो तो एक की स्तुति और २४ हुए हों तो २४ की स्तुति लोगस्स के पाठ में रहती है । तथापि दूसरे आवश्यक का यह नाम ''चौवीस तीर्थंकरों की स्तुति'' या दूसरा आवश्यक स्तुति नामक अध्ययन यह शाश्वत होता है ।

तीसरा वंदना आवश्यक :-

(४२) से किं तं भंते ! तइयं वंदणा नामं वा दुवालसावत्ते किईकम्मे आवस्सयसुत्तं ? गोयमा ! एयं चेव वंदणा किईकम्मे णामावस्सयं वा तइयं दुवालसावत्ते विहिसुत्ते पण्णत्ते तंजहा- इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्जाए णिस्सीहियाए अणुजाणह मे मिउग्गहं णिस्सीही अहोकायं कायसंफासं खमणिज्जो भे किलामो अप्पकिल्लंताणं बहुसुभेणं भे दिवसो वइक्कंतो जत्ता भे जवणिज्जं च भे खामेमि खमासमणो देवसिअं (राइअं पक्खीयं चउमासिअं संवच्छरिअं) वइकम्मं आवस्सिआए पडिक्कमामि खमासमणाणं देवसियाए आसायणाए तित्तीसण्णयराए जं किंचि मिच्छाए मणदुक्कडाए वयदुक्कडाए कायदुक्कडाए कोहाए माणाए

मायाए लोहाए सव्वकालियाए सव्वमिछोवयराए सव्व धम्माइक्कमणाए जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स खमासमणो पडिक्कमामि णिंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । वंदणा णामं वा किईकम्मावत्ते तइयं आवस्सयज्झयणं समत्तं ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! तीसरा द्वादशावर्त कृतिकर्म वंदना आवश्यक क्या है ? हे गौतम ! यह वंदना कृतिकर्म नाम का तीसरा आवश्यक द्वादशवर्त वंदन विधि सूत्र इस प्रकार है -हे क्षमावंत गुरुदेव ! मैं पापकारी प्रवृत्तिओं का निरोध कर आपको वंदन करना चाहता हूँ इसलिये मुझे आपके अवग्रह में प्रवेश करने की स्वीकृति देवें । फिर शिष्य अवग्रह में प्रवेशकर, गुरुदेव के चरण स्पर्श करने की आज्ञा प्राप्त कर, हाथ एवं मस्तक से चरण स्पर्श करके मस्तक ऊँचा करके दोनों हाथ जोडकर मस्तक के पास अंजलि करके बोले- क्षमा के योग्य मेरे से आपके चरण स्पर्श करने में आपको कुछ भी किलामना पीडा हुई हो तो क्षमा करें, ऐसा कह कर गुरु को क्षेम कुशल पूछे, आपका दिवस पूर्ण समाधि में निराबाधपने बीता (दिवस के स्थान पर कभी पक्खी चौमासी एवं संवत्सरी शब्द बोले) फिर आवर्तन करते हुए संयम यात्रा यम नियम आदि कार्य की समाधि पृच्छा करे, फिर मन, इन्द्रिय, शरीर की समाधि पृच्छा करके शिष्य कहे- हे क्षमाश्रमण मेरे द्वारा दिवस संबंधी कोई आशातना हुई हो तो क्षमा मांगता हूँ । आवश्यक कार्य करते हुए कोई अतिचार लगा हो तो उससे अलग हटता हूँ । आप क्षमाश्रमण की दिवस भर में ३३ में से कोई आसातना हुई हो या अन्य गलत कार्य मन, वचन, काया से, क्रोध, मान, माया, लोभ से, त्रिकाल संबंधी हुआ हो एवं यति धर्म संबंधी मर्यादा उल्लंघन रूप कोई भी मिथ्या आचरण-आशातना हुई हो, अतिचार लगा हो तो उनसे हे क्षमाश्रमण ! आपके पास निवृत्त होता हूँ, निंदा, गर्हा करते हुए दोष स्वीकार कर अपनी अशुभ आत्मा का त्याग करता हूँ । इस तरह यह वंदना आवश्यक पूर्ण होता है ।

चौथा प्रतिक्रमण आवश्यक :-

(४३) से किं ते भंते ! चउत्थावस्सयं ? गोयमा ! णाणदंसण चरित्ततव अइयाराइं विहि अणुसारेणं पडिकम्मेज्जा गरिहेजा अणत्थ सव्व तस्स

मिच्छायारं भणेज्जा । से तं चउत्थावस्सयं पडिक्कमणं णाममज्झयणं समत्तं।

भावार्थ :- हे भगवन् ! चौथा आवश्यक क्या है ? हे गौतम ! ज्ञान दर्शन चारित्र तप के अतिचारों का विधि अनुसार प्रतिक्रमण, निंदा करते हुए मिच्छामि दुक्कडं देवे, बोले । यह ऐसा प्रतिक्रमण नामक अध्ययन है अर्थात् चौथा आवश्यक है ।

सम्यक्त्व गुणधारणा विधि सूत्र :-

(४४) से किं तं भंते! विहिसुत्तं वा समत्तगुणधारणा विहिसुत्तं पण्णत्तं? गोयमा! समत्तगुणधारणासुत्तं तंजहा- णमो अरिहंताणं इसिज्झईणं च सिद्धाणं च अरिहंत चउवीसंपि सलिंगी तित्थयराणं उसभं जाव वद्धमाणं च महावीर पज्जवसाणं इयं देवपयंसि इणमेव णिग्गंथं पावयणं सच्चं अणुत्तरं अरिहंताणं पण्णत्तं णेयाउयं संसुद्धं सल्लगत्तणं सिद्धिमग्गं मुत्तिमग्गं णिज्जाणमग्गं णिव्वाणमग्गं अवितहमविसंधि सव्वदुक्खप्पहीणमग्गं इत्थं ठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति ।

इयं णिग्गंथपवट्टिअ धम्मं सद्दहामि पत्तियामि रोएमि फासेमि पालेमि अणुपालेमि तं धम्मं सद्दहंतो पत्तियंतो रोयंतो फासंतो पालंतो अणुपालंतो तस्स धम्मस्स अरिहंत पण्णत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए विरओमि विराहणाए- अण्णाणं परियाणामि णाणं उवसंपज्जामि, मिच्छादंसणं परियाणामि सम्मदंसणं उवसंपज्जामि अचरित्तं परियाणामि चरित्तं उवसंपज्जामि अवयंपरियाणामि वयं उवसंपज्जामि, असजमं परियाणामि संजमं उवसंपज्जामि अधम्मं परियाणामि धम्मं उवसंपज्जामि पावं परियाणामि अपावं उवसंपज्जामि, अबंभं परियाणामि बंभं उपसंपज्जामि अकप्पं परियाणामि कप्पं उवसंपज्जामि कुपडिरूवं परियाणामि पडिरूवं उवसंपज्जामि णो दव्वलिंगं परियाणामि दव्वलिंगे उवसंपज्जामि अकिरियं परियाणामि किरियं उवसंपज्जामि अबोहिं परियाणामि बोहिं उवसंपज्जामि अमग्गं परियाणामि मग्गं उवसंपज्जामि, जं संभरामि जं च ण संभरामि जं पडिक्कमामि जं च ण पडिक्कमामि तस्स सव्वस्स देवसियस्स *जाव* संवच्छरियस्स अइयारस्स पडिक्कमामि।

समणोहं *जाव* समणोवासियाहं संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे अणियाणो दिट्ठिसंपण्णो मायामोस विवज्जओ अढ़ाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पण्णरस कम्मभूमीसु जावंति केई आयरिय-उवज्झाय साहू मुहे मुहपत्तिं रयहरणं गुच्छगं वत्थ-पडिग्गहधरा णाण दंसण चरित्त महव्वयधरा अट्ठारस्स सहस्स सीलांगरहधरा संपयावुड्ढी अक्खयायार तवसा ते सव्वे सिरसा मणसा मत्थएण वंदामि । से तं समत्त गुणधारणा णामं विहिसुत्तं ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! विधि सूत्र अथवा समकित गुणधारण की विधि वाला सूत्र क्या है ? हे गौतम ! वह समकित गुण धारण विधि सूत्र इस प्रकार है- ऋषिध्वज अर्थात् रजोहरण आदि स्वलिंग को धारण करने वाले अरिहंत भगवान को नमस्कार तथा सिद्ध भगवंतो को नमस्कार एवं वर्तमान चौवीसों तीर्थंकर स्वलिंगी अर्थात् मुखवस्त्रिका रजोहरण धारण करने वाले अरिहंत ऋषभदेव स्वामी ***यावत्*** महावीर स्वामी पर्यंत जो आराध्य देव पद पर है उन सभी अरिहंतों को नमस्कार हो । उन भगवान का मार्ग निर्गंथ प्रवचन है अर्थात् राग-द्वेष की ग्रंथी रूप बाह्य आभ्यंतर परिग्रह से रहित उत्तम सत्य मार्ग बताने वाले अरिहंतों के द्वारा कहा हुआ यह निर्ग्रंथ प्रवचन सत्य है, अनुत्तर है इत्यादि संपूर्ण भावार्थ जानना (दीक्षा विधि के उद्देशक में देखें) ***यावत्*** ढाई द्वीप, दो समुद्र के १५ कर्मभूमि क्षेत्र में जितने भी साधु-साध्वी आचार्य उपाध्याय मुख पर मुँहपत्ति बांधने वाले रजोहरण गोच्छग सफेद वस्त्र-पात्र धारण करने वाले ज्ञान दर्शन चारित्र, महाव्रतधारी १८००० अट्ठारह हजार शील-संयम गुणों को धारण करने वाले अखंड आचार तप को धारण करने वाले उन सभी को अंतःकरणपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके वंदन करता हूँ।

[४५] एवमहं आलोइयं, णिंदियं गरिहियं दुग्गंच्छियं सव्वं ।
तिविहेणं पडिक्कंतो, वंदामि जिण चउवीसं ॥१॥

भावार्थ :- इस प्रकार मैं प्रतिक्रमण द्वारा आलोचना, निंदा करके गुरु साक्षी से गर्हा करता हुआ एवं दोषों से दूर होकर मन, वचन काया से समस्त पापों से पीछे हटता हूँ और चौवीसों अरिहंत भगवंत को वंदन करता हूँ ।

[४६] से किं तं भंते ! आवस्सहि इच्छाकारेणं नाम विहिसुत्तं? गोयमा! से एवामेव पण्णत्ता तंजहा- आवस्सही इच्छाकारेणं *जाव* अट्ठं करेमि काउसग्गं । से तं आवस्सयविहिट्ठवणा सुत्तं । से किं तं भंते ! इच्छामि ठामि एगट्ठाणे काउसग्गं नाम विहिसुत्तं? गोयमा! से एवामेव पण्णत्ता तंजहा- इच्छामि ठामि एगट्ठाणे काउस्सग्गं जो मे देवसिओ अइयारो कओ णाणंमि दंसणंमि चरित्तंमि तवंमि य मणेणं वायाए काएणं करेइ करावेइ करंतं वा साइज्जइ जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं (तस्स आलोउं) ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! आवश्यक में इच्छाकार नामक विधि सूत्र क्या है ? हे गौतम ! वह इस प्रकार है- हे भंते ! मैं एक स्थान पर स्थित होकर कायोत्सर्ग करना चाहता हूँ । उसका विधि पाठ- मैं एकाग्रता पूर्वक मन, वचन, काया से स्थिर होकर आज दिन भर के ज्ञान दर्शन चारित्र तप के अतिचारों का चिंतन करने के लिये कायोत्सर्ग करता हूँ । यह प्रतिक्रमण का प्रथम प्रतिज्ञा सूत्र है । इसे प्रचलन में इच्छामि णं भंते का पाठ कहा जाता है ।

[४७] से किं तं भंते! इरियावहियं आलोयणा विहिसुत्तं वा गमणागमण आलोयणा विहि णाम सुयं ? गोयमा ! से एवामेवं इरियावहियं आलोयणाविहि णाम सुत्तं पण्णत्ता तं जहा- इच्छाकारेणं संदिसह भगवं इरियावहियं पडिक्कमामि, पडिक्कमह इच्छं, इच्छामि पडिक्कमिउं इरियावहियाए विराहणाए गमणा गमणे पाणक्कमणे, बीयक्कमणे, हरियक्कमणे ओसा उत्तिंग पणग दग मट्टी मक्कडा संताणा संकमणे जे मे जीवा विराहिया एगिंदिया बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया अभिहया वत्तिया लेसिया संघाइया संघट्टिया परियाविया किलामिया उद्दविया ठाणाओ ठाणं संकामिया जीवियाओ ववरोविया तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! गमनागमन में जीवों की विराधना संबंधी आलोचना सूत्र (इच्छाकारेणं का पाठ) क्या है ? हे गौतम ! वह गमनागमन आलोचना सूत्र इस प्रकार है- हे भगवन्! आज्ञा दीजिये गमनागमन संबंधी प्रतिक्रमण करने की इत्यादि (अर्थ भावार्थ पहले

दीक्षा प्रसंग के अध्ययन में देखे) ***यावत्*** कोई के प्राण नष्ट किये हो तो तत्संबंधी मेरा पाप निष्फल हो ।

[४८] से किं तं भंते ! तस्स उत्तरीकरेणेणं णामयं विहीसुत्तं वा झाणागारे णामयं विहीसुत्तं ? गोयमा ! से एवामेव पण्णत्ता तंजहा- तस्स उत्तरीकरणेणं पायच्छित्तकरणेणं विसोहिकरणेणं विसल्लीकरणेणं पावाणं कम्माणं णिग्घायणट्ठाए ठामि काउस्सगं अणत्थ उससिएणं णीससिएणं खासिएणं छीएणं जंभाइएणं उड्डूएणं वायणिसग्गेण भमलीए पित्तमुच्छाए सुहुमेहिं अंग संचालेहिं सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं एवमाइएहिं आगारेहिं अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउसग्गो जाव अरिहंताणं भगवंताणं(णाणदंसण-चरित्ततवाइयाराइं चिंतित्ताणं) णमुक्कारेणं ण पारेमि ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि । से तं तस्स उत्तरीकरणेणं वा झाणागारे विही णामं सुत्तं ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! **आत्मा को श्रेष्ठ उत्कृष्ट बनाने का** ध्यान और आगार नाम का विधि सूत्र क्या है ? हे गौतम ! वह इस प्रकार है- आत्मा को उत्कृष्ट बनाने हेतु प्रायश्चित्त करने, आलोचना विशेष से शुद्ध और शल्य रहित करने और पाप कर्मों को नष्ट करने के लिये मैं कायोत्सर्ग करता हूँ इत्यादि (भावार्थ पहले आ गया है) ***यावत्*** **कायोत्सर्ग में मौनपूर्वक शुभ ध्यान में मन को लगाकर आत्मा को पापों से दूर रखता हूँ ।** यह तस्स उत्तरी का पाठ अथवा ध्यान और आगार विधि प्रतिज्ञा सूत्र है ।

[४९] से किं तं भंते ! अरिहंत सिद्धाणं णमोत्थुणं णामयं विही सुत्तं ? गोयमा ! से एवामेवं- अरिहंत सिद्धाणं वा णमोत्थुणं णामयं सुत्तं पण्णत्तं तंजहा- णमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं आइगराणं तित्थराणं सयं संबुद्धाणं पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुंडरियाणं पुरिसवरगंधहत्थिणं लोगत्तमाणं लोगणाहाणं लोगहियाणं लोगपइवाणं लोग पज्जोयगराणं अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं जीवदयाणं बोहिदयाणं धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मणायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवर चाउरंतचक्कवट्टीणं दीवोत्ताणं सरणगइ पइट्ठा अप्पडिहयवरणाण दंसणधराणं वियट्टच्छउमाणं जिणाणं जावयाणं तिण्णाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहियाणं मुत्ताणं मोयगाणं

सव्वण्णूणं सव्वदरिसीणं सिवमयलमरूयमणंतमक्खय मव्वाबाह मपुणरावित्तिं सिद्धिगइ णामधेयं ठाणं संपत्ताणं(ठाणं संपाविउकामस्स) णमो जिणाणं जियभयाणं । से तं अरिहंत सिद्धाणं संत्थूइ वा थव- थूइमंगलं णामं सुत्तं । से एवामेव वि भंते ! सक्किंदथुई भणित्ता भवइ ? हंता गोयमा ।

से किं तं भंते ! सव्वं सिद्धाणं भगवंताणं संथूइ णामयं सुत्तं वा पण्णरसविहं सिद्धाणं णमोत्थुणं णामयं सुत्तं ? गोयमा! से एवा- मेवं पण्णत्तं तंजहा- णमोत्थुणं सव्व सिद्धाणं भगवंताणं सव्वण्णूणं सव्वदरिसिणं अणंत सुहीणं वीयराईणं अपुणरा वित्तीणं अरूवीणं (असरीरीणं) अगुरुलहुएणं अणंतसत्तीणं सिद्धि गइणामधेयं ठाणं ठियाणं णमो सव्व सिद्धाणं जियभयाणं । सव्व सिद्धाणं भगवंताणं संथवं वा णमोत्थुणं णामयं सुत्तं ।

आवस्सय विहिसुत्तं अण्णत्थ गोयमा ! समणो वा समणी वा समणोवासए वा समणोवासिया वा से एवामेवं भणिज्जा- जं सुत्तं समणाणं वा समणीणं वा सावणाणं वा साावियाणं या भवइ सम्मिलियं तं सुत्तेसु सयं सयं किरियं वा सद्दमहियोवओगपुव्वयं भणेज्जा । जहाणामेणं समत्तगुण धारणा सुत्ते एयं चेव सद्दे भवइ समणोहं तस्सणं ठाणे एवं भणिज्जा समणी समणीहं वा सावगे समणोवासएहं वा साविया समणोवासियाहं जस्स ठाणे एवामेवं भवइ सुत्तं तं सव्वं वि सुयं तस्स ठाणे पुव्ववुत्तं विहि वियाणित्ता भणेह ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! अरिहंत सिद्धों को नमस्कार गुणकीर्तन नामक विधि सूत्र क्या है ? (यहाँ संपूर्ण नमोत्थुणं पाठ का अर्थ पूर्ववत् समझना) । हे भगवन् ! सर्व (१५ भेदे) सिद्ध भगवंतों की स्तुति एवं नमस्कार नामक सूत्र क्या है ? हे गौतम ! वह इस प्रकार है- नमस्कार हो सर्व सिद्ध भगवंतो को जो सर्वज्ञानी, सर्वदर्शी, अनंत सुखी, वीतरागी, पुनरागमन वृत्ति रहित ऐसे अरूपी-अशरीरी, अगुरुलघु और अनंत शक्ति गुण युक्त सिद्ध गति नामक स्थान में स्थित सभी भयों से रहित हैं उन सिद्धों को मेरा नमस्कार हो । (यद्यपि नमोत्थुणं के पाठ से सिद्धों को नमस्कार हो ही जाता है फिर भी इस शास्त्र में यह इतना पाठ अलग दिया है ।) हे गौतम ! आवश्यक विधि सूत्र

में जहाँ भी साधु-साध्वी श्रावक श्राविका का जो सम्मिलित सूत्र हो वहाँ अपने अपने योग्य शब्द लगाकर उपयोग पूर्वक पाठ बोलना चाहिये। यथा- णमो चोवीसाए गुण धारणा सूत्र में जब जहाँ **समणोहं** शब्द आवे वहाँ अपने अपने योग्य श्रमणी, श्रावक, श्राविका आदि शब्द बोलना चाहिये ।

[५०] पंचमं छट्ठं आवस्सयं वि पंचमोद्देसस्स विही अणुसारेणं आराहणं करेह, अहवा छट्ठे आवस्सए दस महया पच्चखाणा पण्णत्ता तंजहा- अणागयं वा, अइक्कंतं वा, कोडीसहियं वा, णियट्टियं वा सागारं वा अणागारं वा परिमाणकडं वा णिरवसेसं वा संकेयं वा अद्धायं वा । एवं अण्णं वि मुट्ठिसहियं वा गंठीसहियं वा णमुकारसहियं वा मुहुत्तगं वा दुमुहुत्तगं वा तिमुहुत्तगं वा चउ मुहुत्तगं वा एवं *जाव* एग दिवसं वा छट्ठभत्तं वा अट्ठमभत्तं वा एवामेव *जाव* छम्मासियं ।

एएसु चेव चउविहारं पच्चक्खाणेसु केइ केइ ठाणे चउ आगारा पण्णत्ता तंजहा- अण्णत्थणाभोगेणं वा सहस्सागारेणं वा महत्तरागारेणं वा सव्वसमाहिवत्तियागारेण । एवं दव्वं खेत्तं कालं भावं जाणित्ता पासित्ता *जाव* सत्ति अणुसारं करेह। एयं छट्ठावस्सयस्स भावा गोयमा! पुव्ववुत्ते त्ति ।

भावार्थ :- पाँचवाँ छट्ठा आवश्यक भी पाँचवें उद्देशक में कही विधि अनुसार उच्चारण करना चाहिये तथा छट्ठे आवश्यक में दस महान अर्थात् विशिष्ट पच्चक्खाण इस प्रकार भी समझना- (१) भविष्य का तप पहले करना (२) वर्तमान में करने का तप आगे बाद में करना (३) निरंतर तप अर्थात् एक उपवास पूरा होते दूसरे दिन पारणा कर फिर उपवास करना । इस प्रकार करना कोटि सहित तप कहा जाता है । (४) निश्चित समय पर ही करना (५) आगार सहित तप करना (६) आगार रहित तप करना (७) दत्ती परिमाण तप करना (८) परिपूर्ण चौविहार तप करना । (९) संकेत पच्चक्खाण-अंगुठी, नवकार आदि से करना । (१०) काल की मर्यादा वाले पोरसी आदि तप करना । इसमें मुहूर्त, दो मुहूर्त, तीन मुहूर्त आदि छ मास तक चाहे जैसा प्रत्याख्यान हो सकता है अर्थात् संकेत पच्चक्खाण और

अद्धा प्रत्याख्यान बहुत विशाल है उसमें इच्छित अनेक विकल्प के तप का समावेश होता है । नवकारसी आदि दस प्रत्याख्यान सामान्य रूप से छट्ठे आवश्यक में प्रचलित है । अतः यहाँ अप्रचलित(जो भगवती में है) विशिष्ट अभिग्रह युक्त दस प्रत्याख्यान को 'महान' शब्द से कहा गया है अर्थात् उनकी विशिष्टता को महत्त्व दिया है । इन उपरोक्त पच्चक्खाणों में चौविहार प्रत्याख्यान संबंधी चार मुख्य आगार होते हैं- (१) भूल से मुँह में डाल दे (२) अचानक स्वतः मुँह में छींटे पड जाय (३) वडील का आदेश हो तो आगार (४) अकस्मात् शरीर की अत्यंत असमाधि हो जाय तो उसका सभी अद्धा प्रत्याख्यान में आगार होता है । उसे सर्व समाधि प्रत्ययिक आगार कहा जाता है । इसके अतिरिक्त द्रव्य क्षेत्र काल भाव को जानकर शक्ति अनुसार करे, ऐसा अंतिम सूचन पाठ में दिया है । तात्पर्य यह है प्रत्येक विशेष परिस्थिति का आगार प्रत्याख्यान में होता है। कोई अणागार प्रत्याख्यान भी शक्ति अनुसार करे तो उपर दस पच्चक्खाण में उसकी अलग गणना की गई है ।

विवेचन :- प्रस्तुत सूत्रों में ६ आवश्यक संबंधी कुछ सूचन है । दूसरे आवश्यक में कहा है कि लोगस्स शास्वत है । दूसरा आवश्यक भी शास्वत है परंतु तीर्थंकर जितने हुए हो उतने नाम रहते हैं । आगामी तीर्थंकर के नाम नहीं होते हैं । आगामी तीर्थंकर द्रव्य निक्षेप में आते है। नाम स्थापना और द्रव्य निक्षेप में वंदन स्तुति का व्यवहार नहीं होता है । भाव निक्षेप वाले ही व्यवहार वंदनीय होते हैं तथापि लोक में द्रव्य निक्षेप में जीताचार से व्यवहार होता है धर्म या आदर्श मार्ग नहीं समझना । यथा- इन्द्र तीर्थंकर के बाल्य शरीर को और मृत शरीर को वंदन करके फिर महोत्सव की क्रिया करता है।

प्रतिक्रमण करने वाला अपना-अपना उपयुक्त शब्द फेर बदलकर बोल सकता है, ऐसा स्पष्ट किया है। यथा- **समणोहं** की जगह **समणीहं सावगोहं** बोल सकता है । छट्ठे आवश्यक में संक्षिप्त कथन करके भी १० नये प्रत्याख्यानों का खुलासा किया है । जो भावार्थ में स्पष्ट है ।

प्रत्याख्यानों के चार विशिष्ट आगारों और द्रव्य क्षेत्र काल

भाव रूप अन्य विशिष्ट आगारों का विवेक प्रदर्शित किया है । जो यथाशक्ति किया जाता है । क्योंकि इस बताये गये प्रत्याख्यान में एक अनागार प्रत्याख्यान भी कहा है अतः अपनी शक्ति अनुसार कोई विशिष्ट साधक अणागार प्रत्याख्यान भी कर सकता है । उसे अपनी दृढता को तोल लेना आवश्यक होता है ।

नमो चोवीसाए के पाठ में श्रमण शब्द की जगह श्रमणी, श्रमणोपासक और श्रमणोपासिका शब्द भी परिवर्तन करके बोलना कहा है । इससे स्पष्ट होता है कि श्रमण सूत्र के पाँच पाठ श्रावक मी बोल सकते है, उचित शब्द का फेरफार करके ।

इस प्रकरण में सूत्रकार ने अपने लक्ष्य अनुसार कुछ ही पाठ दिये हैं, शेष पाठों को आवश्यक सूत्रानुसार समझ लेना । अथवा भंडारों में इस सूत्र की सुरक्षा बराबर न होने से कुछ पाठ नष्ट भी हो गये हों, ऐसा संभव है । मूल पाठ मिला वैसा ही यहाँ संकलित किया गया है और हिन्दी अनुवाद तो प्रथम बार ही प्रकाशित हो रहा है । मूलपाठ तो जितना जैसा उपलब्ध हुआ है वैसा ही पहले पंजाब से और फिर जामनगर से विक्रम संवत १९९८ में प्रकाशित हुआ था जिसमें बोटाद संप्रदाय के संतो का पुरुषार्थ रहा था ।

चारित्र के अतिचार चिंतन की विधि :-

[५१] चरित्तस्स पयाणं अण्णे वि तिपया पण्णत्ता तं जहा- संजम बहुला य, संवरबहुला य सव्वसमाही अणुपेहा य से जहाणामं- जहण्णे मज्झिमे उक्कोसे । से किं तं भंते ! जहण्ण पदे ? गोयमा ! जहण्णपयं से एवामेवं पण्णत्ता तंजहा- सलिंगे वा भंडोवगरणोवहीणं दसाइयाराणं वा, पंचमहव्वयाणं पणवीसं वा, अइयाराइं छट्ठं राईभोयणवेरमणस्स छण्हं अइयाराइं चिंतेज्जा झाणेसु पडिक्कमेज्जा वा पुणो तेसु जहण्णपदेसु समणो वा समणी वा आराहिओ भवइ से तं जहण्णपयं । से किं तं भंते ! मज्झिम पयं ? गोयमा ! से एवामेवं समणाणं वा समणीणं वा णाणट्ठाए ते समणा वा समणी वा णिच्चमेवं चिंतेज्जा पडिक्कमेज्जा जहातिणामेणं एगे जीवमाइया स अइयाराणं *जाव* छत्तीसं आयरियाणं पयस्स गुणमाइया से तं मज्झिमपयं ।

से किं तं भंते! उक्कोसपयं? से एवामेवं गोयमा! माहणाणं

समणाणं महया णाणट्ठाए चउद्दसपुव्वेसु भणियव्वा पण्णत्ता तं जहा- एएसु पदेसु आइमज्झमंते सव्वे सद्दे भणिज्जा जहातिणामेणं एगे जीवे *जाव* अनंत गम्मा णवरं एसठाणे एगमेगस्स णं(सव्व पयाणं वि) अणंत गम्मा णायव्वा । से तं उक्कोसपयं।

जे समणा वा समणी वा जहण्णपए विहरंति से समणा वा समणी वा णो अण्णं णिंदेज्जा *जाव* पराभवेज्जा । एयं सव्व पयंमि णायव्वं उक्कोसे मज्झिमे जहण्णे । इच्चेवं पयाओ अण्णयरं पयं पवज्जमाणे णो एवं वएज्जा- मिच्छा पडिवण्णे खलु एते भयंतारो अहमेगे सम्मं पडिवण्णे, जे एते भयंतारो एयाओ पयाओ पडिवज्जित्ताणं विहरंति जे य अहमंसि एयं पयं पडिवज्जित्ताणं विहरामि सव्वे ते जिणाणाए उवट्ठिया अण्णोण्णं सयं सयं समाहिएणं एवं च णं विहरंति ।

भावार्थ :- संयम, संवर, और समाधि का विचार करते हुए अतिचार चिंतन तीन तरह से दर्शाया गया है - जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट । जघन्य चिंतन में स्वलिंग के पाँच अतिचार और भंडोपकरण के पाँच अतिचार, पाँच महाव्रतों के २५ अतिचार और रात्रि भोजन के ६ अतिचारों का ध्यान में चिंतन कर प्रतिक्रमण करने वाला श्रमण श्रमणी जघन्य पद से आराधित होता है । **मध्यम पद से चिंतन** करने वाले साधु-साध्वी, १ बोल से ३६ बोलों तक का चिंतन कर **उस सभी बोलों में जानने, आचरण करने और छोडने योग्य** के संबंध में जो जो अतिचार लगा हो उसका चिंतन कर प्रतिक्रमण करे; यह मध्यम पद आराधना चिंतन और प्रतिक्रमण है । **उत्कृष्ट पद से चिंतन-** विशिष्ट ज्ञानी ***यावत्*** १४ पूर्वधारी अपने ज्ञान से जितना आवश्यक हो उन सर्व पदों को याद करके उसमें उपरोक्त तीन पद रूप अतिचार चिंतन कर प्रतिक्रमण करे मिथ्या दुष्कृत करे; यह उत्कृष्ट पद आराधना चिंतन प्रतिक्रमण है ।

जघन्य मध्यम उत्कृष्ट किसी भी पद से प्रतिक्रमण करने वाले साधु-साध्वी किसी की परस्पर निंदा पराभव रूप चर्चा नहीं करे । किसी भी पद्धति से विचरण आचरण करने वाले इस प्रकार कभी नहीं **बोले कि मैं ही एक सम्यग् प्रवृत्ति करने वाला हूँ अन्य तो गलत**

कर रहे हैं, अधूरा कर रहे हैं या अति कर रहे हैं । किंतु ऐसा बोले कि दूसरे श्रमण जो विधि से कर रहे हैं और मैं जिस विधि से कर रहा हूँ ये तीनों ही विधि आगमोक्त है । **जो भी अपनी परंपरा और समाधि अनुसार जैसा कर रहे हैं वे सभी जिनाज्ञा में उपस्थित हैं ।**

विवेचन :- प्रस्तुत सूत्रों में अतिचार चिंतन करने की तीन प्रकार की जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट पद्धति बताकर उन तीनों से प्रतिक्रमण किया जाना विहित कहा है । यहाँ पर जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट आराधना पद्धति से करने वालों को **संकीर्ण मानस रखने का निषेध और उदार मानस रखने की प्रेरणा दी गई है । अपनी साधना का अहं नहीं करना** यह जिन शासन में संयम साधना का प्राण सूचित किया है ।

किसी भी प्रवृत्ति से गुरु आज्ञापूर्वक **संयम साधना के दैनिक आदि अतिचारों का चिंतन अवश्य होना चाहिये । क्योंकि यह प्रवृत्ति (प्रतिक्रमण) स्वदोष दर्शन की प्रेरणारूप है ।** ऐसा भाव प्रतिक्रमण करने वाला साधक **अपनी साधना के दोषों का निरीक्षण करता है, तो उसमें लघुता गुण की वृद्धि होती है और अहं भाव का सर्वथा निष्कासन होता है ।** अतः सभी साधकों को दिन रात में भगवान ने दो बार पूर्ण रीति से स्वदोष दर्शन का चांस एक मुहूर्त के लिये फरजियात रूप में दिया है । जिसके लिये अनुयोग द्वार सूत्र में और इस सूत्र में लोकोत्तर भाव आवश्यक का स्वरूप दर्शाते हुए प्रतिक्रमण और अतिचार चिंतन का तरीका बताया है वह इस प्रकार है- साधु एकाग्र चित से, चिंतन को अन्यत्र नहीं लगाते हुए स्वदोष दर्शन में दत्तचित्त होकर प्रतिक्रमण करे । ऐसी शुद्धि एकाग्रता के लिये विशेषण रूप में ८-१० शब्द दिये है उनका भावार्थ पहले कर दिया गया है (पाँचवें उद्देशक में) । **अतः प्रत्येक साधक को संयम जीवन की यह आवश्यक क्रिया रूप प्रतिक्रमण-स्वदोष दर्शन भाव पूर्वक करना चाहिये तभी लोकोतर भाव आवश्यक होता है ।** केवल परंपरा रूप में एक घंटा पार कर देना और कुछ स्व अवलोकन चिंतन संशोधन करना ही नहीं, तो वह सब द्रव्य आवश्यक में गिना जाता है । सार यह है कि किसी भी जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट पद्धति से अतिचार दोषों का चिंतन और शुद्धि अवश्य करने चाहिये किन्तु

उसमें अपना अहं पोषण कर किसी की निंदा नहीं करनी चाहिए । हाँ, यदि जो कुछ भी सही चिंतन करते ही न हो तो उन्हें शुद्ध भावों से प्रेरणा अवश्य देनी चाहिये ।

तीन प्रकार के प्रव्रज्या पुरुष :-

[५२] गोयमा ! तिविहा पुरिसा पण्णत्ता तंजहा- जहण्ण पुरिसे, मज्झिम पुरिसे, उत्तम पुरिसे । तिविहे विहाणे पवज्जाए पण्णत्ते तं जहा- जहण्ण पुरिसाणं, मज्झिम पुरिसाणं, उत्तम पुरिसाणं । से किं तं भंते ! जहण्ण पुरिसाणं पवज्जा विहाणं ? गोयमा! से ठप्पा । से केणट्ठेणं भंते ? गोयमा ! से पुरिसा णो सयमेव पवज्जं गिण्हेइ णो अण्णं गिण्हावेइ णो अण्णेण गिण्हेइ । से तेणट्ठेणं ठप्पा । से किं तं भंते ! मज्झिम पुरिसाणं पवज्जा विहाणं ? गोयमा ! से पुरिसे णो सयमेव पवज्जा गिण्हंति अण्णेण पुरिसेणं पवज्जा गिण्हइ अण्णं पुरिसं वि गिण्हावेइ । से किं तं भंते ! उत्तम पुरिसाणं पवज्जा विहाणं ? गोयमा ! उत्तम पुरिसा सयमेव पवज्जं गिण्हंति, णो अण्णेण पुरिसेणं पवज्जं गिण्हंति, अण्णे सव्वे वि मज्झिम पुरिसाणं पवज्जं गिण्हावेंति ।

भावार्थ :- हे गौतम ! तीन प्रकार के पुरुष और तीन प्रकार से दीक्षा का विधान कहा गया है- जघन्य मध्यम और उत्तम पुरुष और प्रव्रज्या भी तीन प्रकार से जघन्य मध्यम और उत्तम कही गई है ।

हे भगवन् ! जघन्य पुरुष और जघन्य प्रवज्या क्या है ? हे गौतम! जघन्य पुरुष अर्थात् जिसकी दीक्षा की आज्ञा गुरु द्वारा या माता पिता द्वारा नहीं हुई है वह जघन्य पुरुष स्वयं दीक्षा नहीं ले सकता, दूसरों से भी दीक्षा नहीं ले सकता और किसी को दीक्षा दे भी नहीं सकता, यह अपरिपक्व दीक्षार्थी का कथन है । मध्यम पुरुष अर्थात् दीक्षा के लिये आज्ञा प्राप्त सामान्य ज्ञानी है, वह स्वयं दीक्षा नहीं लेता है, अन्य के पास दीक्षा ले सकता है और दूसरों को दीक्षा दे भी सकता है यह जघन्य बहुश्रुत मध्यम पुरुष है यह दीक्षा काल में कभी अन्य को दीक्षा दे भी सकता है । तीसरे उत्तम पुरुष स्वयं दीक्षा ग्रहण करते हैं, दूसरों के पास दीक्षा लेते नहीं तथा अन्य मध्यम पुरुषों को दीक्षा दे सकते हैं । ये उत्तम पुरुष तीर्थंकर होते हैं। उसके सिवाय प्रत्येक बुद्ध और स्वयं बुद्ध भी उत्तम पुरुष में गिने गये हैं ।

[५३] से किं तं भंते ! जेण पाठेण सद्धं उत्तम पुरिसा सयमेव पवज्जं गिण्हंति ? गोयमा ! से एवामेवं- करेमि *जाव* अप्पाणं वोसरामि । से किं तं भंते ! मज्झिम पुरिसाणं जेण पाठेण सद्धं गिण्हावंति ? से एवामेवं गोयमा ! करेसि त्ति सामाइयं *जाव* अप्पाणं वोसिरे ।

भावार्थ :- उत्तम पुरुष दीक्षा ग्रहण का पाठ किस तरह बोलते हैं? हे गौतम ! वे उत्तम पुरुष की क्रिया बोलते है यथा- करेमि, वोसिरामि इत्यादि । मध्यम पुरुषों की दीक्षा के पाठ में- करेसि ति सामाइयं *यावत्* अप्पाणं विसिरेह, इस तरह मध्यम पुरुष की क्रिया का उच्चारण प्रत्याख्यान के पाठ में किया जाता है ।

विवेचन :- यहाँ उत्तम पुरुष आदि की प्रव्रज्या के संबंध में निरूपण किया गया है । ये भाव हमारी परंपरा में भी इसी तरह प्राप्त होते हैं परन्तु मूल पाठ में इस तरह का निरूपण और खुलासा यह इस सूत्र की अपनी विशेष महत्ता है । इन सूत्रों में दीक्षार्थी पुरुष, उनकी दीक्षाएँ तथा उनके लिये विशेष विधान किये गये हैं ।

सामायिक शब्द का प्रयोग तीन प्रकार से :-

[५४] तिविहे सामाइए पण्णत्ते तंजहा- सावज्ज जोग विरई, वय णियम संजम तवं, णाण दंसण चरित्त तवस्स अइयाराइं झाणोवगओ चिंतेज्जा।

भावार्थ :- सामायिक शब्द का प्रयोग आगमों में तीन अपेक्षाओं से किया गया है- (१) सावद्य योगों का मर्यादित समय त्याग(नवमा व्रत रूप श्रावक की सामायिक) (२) व्रत नियम युक्त संयम तप साधु की सामायिक रूप प्रथम सामायिक चारित्र । (३) सामायिक आवश्यक प्रतिक्रमण का प्रथम आवश्यक, रूप में कायोत्सर्ग में अतिचार चिंतन किया जाता है । अतः तीसरी सामायिक ज्ञान दर्शन चारित्र तप के अतिचार चिंतन रूप प्रथम आवश्यक को सामायिक आवश्यक शास्त्र में कहा गया है ।

पंच परमेष्टी के उत्कीर्तन संबंधी भेद प्रभेद :-

[५५] तिविहा उक्कित्तणा पण्णत्ता तंजहा- पंचपरमेट्ठी पयकित्तणं पंचपरमेट्ठि गुणकित्तणं पंचपरमेट्ठी णामकित्तणं । से किं ते भंते ! पंचपरमेट्ठी पदकित्तणं ? गोयमा ! से एवं- अरिहंता *जाव* साहू से तं पयकित्तणं ।

से किं तं भंते ! पंचपरमेट्ठी गुणकित्तणं ? गोयमा ! से तिविहा पण्णत्ता तंजहा- जहण्णे मज्झिमे उक्कोसे । से किं तं भंते ! जहण्णं पंचपरमेट्ठी गुणकित्तणं ? गोयमा ! से तिविहा पण्णत्ता तंजहा- पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी।

से किं तं भंते ! पंच परमेट्ठी गुणकित्तणं पुव्वाणुपुव्वी? गोयमा! से एवं पण्णत्ता तंजहा- णाणं, दंसणं, चरित्तं, तवं, रिद्धी, सिद्धी, लद्धी, अइसेसा, तणुलक्खणा, अगुरुलहु,भावं, वइरागं, भावणाइं, वीयरागं, सुहं, संपया, अयलं, मुत्तिमग्गस्स वुड्ढि, सत्ती, अरूवीयं । से तं पंचपरमेट्ठी जहण्ण गुणकित्तणं पुव्वाणुपुव्वी । से किं तं भंते ! पंचपरमेट्ठी जहण्णगुण पच्छाणु-पुव्वी ? गोयमा ! से एवं पण्णत्तं तंजहा- अरूवी य *जाव* णाणं । से तं पंचपरमेट्ठी गुणकित्तणं पच्छाणुपुव्वी । से किं तं भंते ! पंचपरमेट्ठी गुण कित्तणं अणाणुपुव्वी ? गोयमा ! से एवं अणाणुव्वी- एयाए चेव एगुत्तरियाए बीसाए गच्छागयाए सेढीए पत्ताए अण्णमण्ण-ब्भासो दुरूवूणो से तं पंचपरमेट्ठी जहण्णगुण अणाणुपुप्वी । एवं सव्वठाणे पुव्व वण्णोत्तराणं णायव्वो । से किं तं भंते ! मज्झिमं पंचपरमेट्ठी गुणकित्तणं ? गोयमा ! से एवं पण्णत्तं तंजहा- दुवालस गुण अरिहंताणं, अट्ठेव गुण सिद्धाणं, छत्तीसं आयरिणाणं, पणवीसो उवज्झायाणं, सत्तवीसं च साहूणं गुणा हुंति; परमेट्ठीणं एए एगट्ठसयं गुणा य भणिया अट्ठसयं अट्ठसयं से तं मज्झिमा। से किं तं भंते ! पंचपरमेट्ठी गुणकित्तणं उक्कोसा ? गोयमा ! से तिविहा पण्णत्ता तंजहा- संखिज्जाइं वा असंखिज्जाइं वा अणं-ताइं वा । से किं तं भते ! पंचपरमेट्ठी संखिज्जा गुणा ? गोयमा! जे गणणाए आगच्छइ । से तं संखिज्जा । से किं तं भंते ! पंच परमेट्ठी गुणकित्तणं असंखिज्जाइं ? गोयमा! अत्तपएसासिए जण्हं जण्हं आयपएसा से सव्वेवि गुणा णायव्वा । से किं तं भंते! पंच परमेट्ठी गुणकित्तणं अनंत गुणा ? गोयमा! से एवामेवं पण्णत्ता तं जहा- अनंत मइणाणपज्जवे *जाव* केवलणाणपज्जवे । से तं पंचपरमेट्ठी गुणकित्तणं ।

भावार्थ :- उत्कीर्तना-कीर्तन-गुणग्राम तीन प्रकार के कहे गये

हैं- (१) पंच परमेष्ठी पद संबंधी कीर्तन (२) पंच परमेष्ठी के गुण संबंधी कीर्तन (३) पंच परमेष्ठी नाम संबंधी कीर्तन ।

हे भगवन् ! पंच परमेष्ठी पद कीर्तन क्या है ? हे गौतम ! पाँचों पदों का कथन करना, जाप करना यह पद कीर्तन है ।

हे भगवन् ! पंच परमेष्ठी गुण कीर्तन क्या है ? हे गौतम! यह तीन प्रकार का है- जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट । हे भगवन् ! जघन्य गुण कीर्तन क्या है ? हे गौतम ! यह भी तीन प्रकार का है- पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी, अनानुपूर्वी ।

हे भगवन् ! पंचपरमेष्ठी जघन्य गुण पूर्वानुपूर्वी कीर्तन क्या है ? हे गौतम ! पंच परमेष्ठी के जघन्य गुण २० कहे हैं । उनको क्रम से उच्चारण करना अनुपूर्वी जघन्य गुण कीर्तन है । पंचपरमेष्ठी के जघन्य २० गुण- यहाँ पांचों पद के अल्प गुणों का संकलन कर इन्हें पंच परमेष्ठी के जघन्य गुण-२० रूप में कथन किया है यथा- (१) ज्ञान (२) दर्शन (३) चारित्र (४) तप (५) रिद्धि (६) सिद्धि (७) लब्धि (८) अतिशय-असाधारण प्रभाव (९) शरीर के सुलक्षण (१०) अगुरु लघु (११) भाव विशोधि (१२) वैराग्य (१३) भावना -अनुप्रेक्षा-१२ (१४) वीतरागता (१५) सुख(अव्यबाध) आत्मसुख (१६) संपदा-आठ (१७) अचल-स्थिर-गमनागमन रहित । (१८) मुक्ति मार्ग की वृद्धि-प्रभावना (१९) शक्ति पंडित वीर्य-तप पुरुषार्थ (२०) अरूपी । यह पूर्वानुपूर्वी जघन्य पंच परमेष्ठी गुण कीर्तन-कथन है ।

हे भगवन् ! पश्चानुपूर्वी पंच परमेष्ठी जघन्य गुण कीर्तन क्या है? हे गौतम ! उपरोक्त २० गुणों को उल्टे क्रम से बोलना जघन्य पश्चानुपूर्वी गुण कीर्तन है। हे भगवन् ! अनानुपूर्वी जघन्य गुण कीर्तन क्या है ? हे गौतम ! १ से २० की संख्या को श्रेणी बद्ध रख कर क्रम से आगे से आगे गुणा करने पर जो संख्या आवे उतने १ से २० संख्या के भंग बनते हैं । उसमें पहला भंग पूर्व आनुपूर्वी का, अंतिम भंग पश्चाद् अनुपूर्वी का और बीच के सभी भंग अनानुपूर्वी के होते हैं । जैसे पंच परमेष्ठी भंग की जो अनानुपूर्वी है उसमें पांच पद के १२० भंग होते हैं । उसमें पहला आनुपूर्वी का विकल्प १-२-३-४-५ बना है, अंतिम भंग ५-४-३-२-१ बनता

है, बीच के ११८ भंग अनानुपूर्वी के अर्थात् व्युत्क्रम के बनते हैं। इसी प्रकार प्रस्तुत में १-२-३-४-५-६ ***यावत्*** २० यों रखकर क्रम से आगे से आगे गुणा करते जायें, इस तरह गुणा करते जो अंतिम गुणांक आवे उसमें दो कम करना, शेष संख्या २० जघन्य गुणों के अनानुपूर्वी भंगों की होगी।

हे भगवन् ! मध्यम पंच परमेष्ठी गुण कीर्तन क्या है ? हे गौतम! अरिहंत के-१२, सिद्धों के- ८, आचार्य के- ३६, उपाध्याय के -२५, साधु के- २७ ये कुल मिलकर- १०८ गुण मध्यम है । इनका कथन करना पंच परमेष्ठी मध्यम गुण कीर्तन कहा जाता है । हे भगवन् ! पंच परमेष्टी उत्कृष्ट गुण कीर्तन क्या है ? हे गौतम! इसके तीन प्रकार है- संख्यात, असंख्यात और अनंत । (१) इसमें जहाँ तक गणना हो सके इतने १००-२००-१००० आदि गुणों से कीर्तन करना संख्यात गुण कीर्तन है । (२-३) असंख्यात और अनंत गुणों का कीर्तन वास्तव में मानव की छोटी उम्र में हो भी नहीं सकता हैं। फिर भी १८,००० अठारह हजार शीलाग रथ गुण है जो कहे जा सकते है, असंख्यात आत्म प्रदेश गुणयुक्त होते हैं उन्हें यहाँ असंख्य गणना में सूचित किया है और अनंत गुण में- पाँच ज्ञान की अनंत पर्यायों को सूचित किया है । फिर भी यहाँ कीर्तन-कथन से मतलब है अत: यह भी अकथनीय है ।

[५६] से किं तं भंते ! पंचपरमेट्ठी णामकित्तणं ? गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता तंजहा- अरिहंतणामकित्तणं *जाव* साहूणामकित्तणं।

से किं तं भंते ! णामकित्तणं ? गोयमा! से तिविहं पण्णत्तं तं जहा- पदणामकित्तणं, गुणणिप्फण णामकित्तणं, अरिहंत णामकित्तणं। से किं तं भंते ! पयणामकित्तणं ? अणेगाइं सहस्साइं अरिहंत ईस्सरमाइयाइं सासय णाम धिज्जाइं, से तं पयकित्तणं। से किं तं भंते ! गुणणिफण्ण णामकित्तणं? गोयमा! अणेगाइं सहस्साइं गुणनिप्फण्णाइं णामधिज्जाइं पण्णत्ता तंजहा- णाणेणं होइ णाणी *जाव* तवेण हवइ तवस्सी। से तं गुणणिफण्णं णामकित्तणं ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! पंच परमेष्ठी नाम कीर्तन क्या है ? हे गौतम! वह पाँच प्रकार का है- अरिहंत नाम कीर्तन ***यावत्*** साधु नाम कीर्तन ।

हे भगवन् ! नाम कीर्तन कितने प्रकार का होता है ? हे गौतम! यह तीन प्रकार का है- पदनाम कीर्तन, गुण निष्पन्न नाम कीर्तन और तीसरा अरिहंत-तीर्थंकरों के नाम का कीर्तन । हे भगवन्! पद नाम कीर्तन क्या है ? हे गौतम ! यह अनेकों हजार प्रकार का है। अरिहंत आदि के पर्याय नाम वे सब अरिहंत पद नाम कीर्तन है यथा- अरिहंत, ईश्वर, तीर्थंकर, सर्वज्ञ, वीतरागी, जिनेश्वर, भगवंत आदि । इसी तरह सिद्ध आचार्य आदि पद के पर्यायवाची जानना । हे भगवन् ! गुण निष्पन्न नाम कीर्तन क्या है ? हे गौतम ! यह भी गुणों की अपेक्षा अनेकों हजार प्रकार का है यथा- ज्ञान से ज्ञानी, तप से तपस्वी आदि अनेक हजारों समझना।

[५७] से किं तं भंते ! अरिहंत णामकित्तणं ? गोयमा ! से एवं- जंबुदीवेसु तिविहा पण्णत्ता तंजहा- भारहेवासे खेत्तस्स, एरवए खेत्तस्स, महावेदेहे वासे खेत्तस्स । से किं तं भंते ! भारहवासखेत्तस्स अरिहंत णामकित्तणं ? गोयमा ! से तिविहा पण्णत्ता तंजहा- अतीत णामकित्तणं, पडुपण्ण णामकित्तणं, अणागय णामकित्तणं । से किं तं भंते ! अतीत णामकित्तणं? गोयमा ! से एवं पण्णत्ता तंजहा- केवलणाणी, णिव्वाणी, सायरे, महाजसे, विमले, सव्वाणुभूई, सिरिहरे, दत्तारिहा, दामोयरे, सुतेजे, सामिणाहे, मुणिसुव्वय, सुमइ, सिवगई, अट्ठागे, णमीस्सरे, अणीले, जसोहरे, कित्तत्थे, जिणेस्सरे, सुद्धमई, सियंकरे, सयंदणे, संपत्तिणाहे । से तं भारहेवासे अतीत अरिहंत णामकित्तणं ।

से किं तं भंते ! भारहेवासे वट्टमाणाणं अरिहताणं णामकित्तणं? गोयमा! से णं एवामेवं पण्णत्ता तंजहा- उसभे *जाव* वद्धमाणे य महावीरे । से किं तं भंते ! भारहेवासे अणागय अरिहंत णामकित्तणं? गोयमा ! से एवं पण्णत्ता तंजहा- महापउमे *जाव* अणंतविजये भद्दे।

से किं तं भंते ! जंबूदीवे एरवयखेत्तस्स अतीताणं अरिहंत -तित्थयराणं णामकित्तणं ? गोयमा! से एवामेवं पण्णत्ता तंजहा- पंचरूवे, जिणहरे, संपयगे, उरमई, अइच्छाय, अभिनंदे, रयणसेणे, रामेस्सरे, रंगोजिय, जिणपासे, आरोवसे, सुभज्झाणे, विप्पदत्ते, कुंवारे, सव्वसहेइले, परभंजणे, सोहागे, दिवाकरे, वय-विंदो, सिद्धकंते, णाणसिरी, कप्पदुमे, तित्थफले, बंभपहू से तं अतीता।

से किं तं भंते ! जंबूदीवे एरवए खित्तस्स वट्टमाणाणं अरिहंताणं णामकित्तणं ? से वि एवं गोयमा ! चंदाणणे *जाव* वारिसेणे । से किं तं भंते ! जंबूदीवे एरवए खित्तस्स अणागय अरिहंत-तित्थरायणं णामकित्तणं ? से वि एवं गोयमा ! पण्णत्ता तंजहा- सुमंगले, सिद्धत्थे *जाव* देवाणंदे । से एवामेवं अण्णं भारहेरवएसु खेत्तेसु तिण्णि तिण्णि गम्मा णायव्वा ।

भावार्थ :- हे भगवन ! तीसरा अरिहंत (तीर्थंकर) नाम कीर्तन क्या है ? हे गौतम ! जंबूद्वीप की अपेक्षा वह तीन प्रकार का है यथा- भरत क्षेत्र के तीर्थंकरों के नाम, एरवत क्षेत्र के तीर्थंकरों के नाम और महाविदेह क्षेत्र के तीर्थंकरों के नामों का कीर्तन-कथन । हे भगवन्! भरत क्षेत्र के तीर्थंकर अरिहंत नाम कीर्तन क्या है ? हे गौतम ! यह तीन प्रकार का है- भूतकाल के, वर्तमान काल के और भविष्य काल के तीर्थंकर के नाम का कथन करना ।

हे भगवन् ! भरत क्षेत्र का भूतकालीन अरिहंत नाम कीर्तन क्या है ? हे गौतम ! वह इस प्रकार है- भूतकालीन भरत क्षेत्र की चौवीसी के नाम- (१) केवल ज्ञानी (२) निर्वाणी (३) सागर (४) महायश (५) विमल (६) सर्वानुभूति (७) श्रीधर (८) दत्तार्ह (९) दामोदर (१०) सुतेज (११) स्वामीनाथ (१२) मुनिसुव्रत (१३) सुमति (१४) शिवगति (१५) अर्थाक (१६) नमीश्वर (१७) अनिल (१८) यशोधर (१९) कृतार्थ (२०) जिनेश्वर (२१) शुद्धमति (२२) शिवंकर (२३) सतंदन (२४) संपतिनाथ । यह भरत क्षेत्र भूतकालीन अरिहंत (तीर्थंकर) नाम कीर्तन है । हे भगवन् ! भरत क्षेत्र के वर्तमान अरिहंत नाम गुण कीर्तन क्या है ? हे गौतम ! वह इस प्रकार है- ऋषभ देव स्वामी ***यावत्*** वर्धमान महावीर स्वामी । हे भगवन्! अनागत कालीन भरत क्षेत्र का अरिहंतनाम कीर्तन क्या है ? हे गौतम ! वह इस प्रकार है- महापद्म ***यावत्*** अनंत विजय भद्र ।

हे भगवन् ! जंबद्वीप के एरवत क्षेत्र के भूतकालीन तीर्थंकर का नाम कीर्तन क्या है ? हे गौतम ! वह इस प्रकार है- (१) पंचरूप (२) जिनधर (३) संपतक (४) उरमति (५) अतिच्छाय (६) अभिनंद (७) रतनसेन (८) रामेश्वर (९) रंगोजित (१०) विनपास(जिनपास)

(११) आरोपस (१२) शुभध्यान (१३) विप्रदत्त (१४) कुंवार (१५) सर्व सखेइन (१६) परभंजन (१७) सोभाग (१८) दिवाकर (१९) वयवृन्द (२०) सिद्धकांत (२१) ज्ञानश्री (२२) कल्पद्रुम (२३) तीर्थफल (२४) ब्रह्मप्रभु ।

हे भगवन् ! जंबूद्वीप के एरवत क्षेत्र के वर्तमान अरिहंत का नाम कीर्तन क्या है ? हे गौतम ! वह इस प्रकार है- (१) चंद्रानन ***यावत्*** (२४) वारिषेण । हे भगवन् ! जंबूद्वीप के एरवत क्षेत्र के अनागत तीर्थंकर का नाम कीर्तन क्या है ? हे गौतम ! वह इस प्रकार है- (१) सुमंगल (२) सिद्धार्थ ***यावत्*** (२४) देवानंद । इस प्रकार अन्य भी धातकीखंड और पुष्करार्ध द्वीप के भरत एरवत क्षेत्र के तीन तीन गमक समझना ।

[५८] से किं तं भंते ! सव्वेसु वि महाविदेहवासेसु खेत्तेसु सया वट्टमाणाणं अरिहंताणं भगवंताणं णामकित्तणं ? गोयमा! अरिहंताणं भगवंताणं सव्वेसु वि महाविदेहवासेसु सया वट्टमाणाणं णिच्च णामकित्तणं एवं पण्णत्तं तंजहा-

णमो सव्वलोए पभंकरं, विहरमाणं जिण वीसं ।
सीमंधरं च जुगमंधरं, बाहुं सुबाहुं सुजातं च ॥१॥
सयंपहं च वंदामि, उसभाणणं वा पुणो ।
वंदामि अणंतवीरियं, सूरपहं च वा पुणो ॥२॥
विसालभद्दं च वंदे, वज्जधरं चंदाणणं ।
चंदबाहुं च वंदामि, भुजंगेस्सरं नेमपहं ॥३॥
अजिय वीरसेणं च, वंदामि य महाभद्दे ।
वंदामि देवजसं च, अजिताणंतवीरियं ॥४॥
णमो णिच्चं जिणणामाइं, वीसईसरे सव्वजिणे।
महाविदेहवासेसुं, वंदे एए भत्तिपुव्वयं ॥५॥

भावार्थ :- हे भगवन् ! पाँचों महाविदेह क्षेत्रों में सदा रहनेवाले-मिलनेवाले अरिहंत भगवंतों का नाम कीर्तन क्या है ? हे गौतम ! सभी महाविदेह क्षेत्रों में सदा वर्तमान अरिहंत भगवान का सदा एक सरीखा नाम कीर्तन है । वह बीस विहरमान तीर्थंकर नाम कीर्तन इस प्रकार है-

गाथा-१. सर्व लोक में उद्योत करने वाले विहरमान २० जिनेश्वरों को नमस्कार हो- श्री सीमंधर स्वामी, युगमंधर स्वामी, बाहु-सु बाहु सुजात स्वामी । **गाथा-२.** स्वयंप्रभ स्वामी को वंदन करता हूँ। फिर ऋषभानन स्वामी, अनंतवीर्य, सूर्यप्रभ स्वामी को वंदन करता हूँ। **गाथा-३.** श्री विशालभद्र, वज्रधर, चंद्रानन तथा चंद्रबाहु स्वामी को वंदन करता हूँ । श्री भुजंगेश्वर और नेमप्रभ स्वामी को वंदन करता हूँ । **गाथा-४.** श्री अजित स्वामी, वीरसेन, महाभद्र स्वामी को वं दन करता हूँ । देवयश और अजितानंतवीर्य स्वामी को वंदन करता हूँ । **गाथा-५.** ये नित्य एक सरीखे नाम वाले २० ईश्वर रूप सर्व विहरमान जिनेश्वरों को जो महाविदेह क्षेत्र में विराजमान है उन्हें भक्तिपूर्वक वंदन करता हूँ । (प्रचलित नामों में थोडा अंतर है जिसे परिशिष्ट में देखें ।)

विवेचन :- प्रस्तुत सूत्रों में पंच परमेष्ठी के पद नाम गुण कीर्तन का कथन करते हुए फिर अरिहंत तीर्थंकरों के त्रैकालिक नाम कीर्तन है । इस प्रसंग से भरत, एरवत क्षेत्र के भूत, वर्तमान और भावी तीर्थंकरों के नाम सूचित किये हैं जो पहले भी आ गये हैं । महाविदेह में भूत, भावी नाम अलग नहीं होते सदा एक सरीखे ये ही २० विहरमान के प्रसिद्ध नाम होते हैं । ऐसा मूल पाठ में स्पष्ट किया है। विशेष में हमारे यहाँ लोगस्स में सात गाथा है किंतु महाविदेह के विहर मानों के नाम गुण कीर्तन पाँच गाथा से बताये हैं । प्रारंभ में यहाँ पंच परमेष्ठी के सम्मिलित २० गुण जघन्य पद विभाग से कहे हैं जो भावार्थ में स्पष्ट कर दिये गये हैं । ऐसा २० गुणों का संकलन अन्यत्र अनुपलब्ध है । यह इस सूत्र की अपनी अलग विशेषता है ।

विहरमान तीर्थंकरों की विविध संख्या :-

[५९] किण्हं भंते ! सया णिच्चणामी पण्णत्ता ? गोयमा ! महाविदेहेसु खेत्तेसु एग णामी अरिहंता पण्णत्ता तंजहा- सीमंधरा जाव अजिताणं तवीरिया। चउरासीयं चउरासीयं एग णामिया अरिहंता पण्णत्ता तंजहा- एगे एगलक्खपुव्वं आउसं धरे जाव एगे चउरासीयाए पुव्वसयसहस्सं आउसंतेणं विहरंति। जइ णं भंते! गणणाणं एग सहस्स अस्सी छ सयं अरिहंता हुंति, तओ णं भंते !केणट्ठेणं वीसं भणामि ? गोयमा ! केवल

णाणस्स पज्जाया होंति वीसं। सव्वाणं वि अरिहंताणं भगवंताणं चउरासीयं पुव्वसयसहस्साइं पडिपुण्णं आउसं भवइ । सव्वेसिं अरिहंताणं भगवंताणं चउरासियं चउरासियं गणा-गणहरा पण्णत्ता । सव्वेसिं अरिहंताणं पंच धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं तणु पण्णत्ता । सव्वेसिं वि अरिहंताणं भगवताणं सरीराणं पियवर पउमवण्णा पण्णत्ता । सव्वेसिं अरिहंताणं भगवंताणं दोकोडी केवलणाणी संपया पण्णत्ता । सव्वेसिं अरिहंताणं भगवंताणं दुवे सहस्साइं कोडी साहु संपया पण्णत्ता । गोयमा! ते समासओ तिविहं पण्णत्तं तंजहा- जहण्णमज्झिममुक्कोसा ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! सदा नित्यनामी तीर्थंकर क्या है ? हे गौतम! एक महाविदेह क्षेत्र में सदा एक नामी तीर्थंकर चार चार होते हैं- सीमंधर ***यावत्*** अजितानंतवीर्य । वे ऐसे नाम वाले एक सरीखे ८४-८४ होते हैं अर्थात् एक सीमंधर केवली और ८३ छद्मस्थ। इन चौरासी में एक तीर्थंकर एक लाख पूर्व की आयुष्य वाला हो तब दूसरे दो लाख पूर्व, तीसरे तीन लाख पूर्व, यों चोरासीवें चौरासी लाख पूर्व के होते हैं, अर्थात् एक-एक लाख पूर्व के अंतर से वे नये नये जन्मते रहते हैं । इन सभी २० विहरमान की गणना करने से ८४ X २० = १६८० होते हैं । तो हे भगवन् ! २० क्यों कहे जाते हैं ? हे गौतम! केवली तीर्थंकर २० ही होते हैं इसलिये ।

इन प्रत्येक तीर्थंकरों का कुल आयुष्य ८४ लाख पूर्व का होता है। इन सभी के ८४-८४ गणधर होते हैं । सभी के ऊँचाई अवगाहना ५०० धनुष की होती है । इन सभी का वर्ण प्रियवर पद्मवर होता है । इन सभी के कुल दो क्रोड केवली संपदा और दो हजार क्रोड साधु संपदा होती है । यह जघन्य संख्या समझना । उत्कृष्ट अनेक क्रोड और अनेक हजार क्रोड समझना । हे गौतम ! उन विहरमान तीर्थंकर की संख्या के तीन प्रकार है- जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट।

[६०] से किं तं भंते ! जहण्णे अरिहंते ? गोयमा! जहण्णे जंबूदीवे महाविदेहवासे चत्तारि अरिहंता उवज्जिंसु उवज्जंति उवज्जिस्संति तंजहा- सीमंधरे *जाव* सुबाहू । अवसेसं धायईसंडदीवस्स महाविदेहवासे वा अद्धपुक्खरदीवस्स महाविदेहवासे अट्ठ अरिहंता उवज्जिंसु उवज्जंति उवज्जिस्संति तंजहा- उसहाणणं

जाव **अजिताणंतवीरियं । से किं तं भंते ! मज्झिमा अरिहंता ? गोयमा! मज्झिमा अरिहंता- एग सहस्सं अस्सी छ सयं अरिहंता विहरंति । से किं तं भंते ! उक्कोसा अरिहंता ? गोयमा! ते समासओ तिविहा पण्णत्ता तंजहा- जंबूदीवस्स महाविदेहवासेसु बत्तीसं अरिहंता उवज्जिंसु उवज्जंति उवज्जिसंति । अवसेसं अवर महाविदेहवासेसु चउसट्ठी चउसट्ठी अरिहंता उवज्जिंसु उवज्जंति उवज्जिस्संति ।**

ताणं अरिहंताणं भगवंताणं गोयमा ! चत्तारि अवत्था पण्णत्ता तंजहा- कुमारावत्था रायावत्था साहुअवत्था केवल णाणावत्था। वीसइणं ते हुंति दुवालस गुणसंजुत्ता। तेसिं सव्वेसिं वि गोयमा ! वीसइ अरिहंताणं कज्जाइं एगसरिसाइं भवंति तंजहा- तित्थगरणामगोयं कम्मबंधणं *जाव* णिव्वाणं। से तेणट्ठेणं गोयमा! अरिहंता पवुच्चंति निच्चणामी । एवं जहा अरिहंताणं णामकित्तणं तहा सिद्धाणं वि आयरियाणं वि उवज्झायाणं वि साहूणं वि णामकित्तणं करिज्जा पुव्वुत्त विहिणा । से तं पंच परमेट्ठी उक्कित्तणं ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! जघन्य अरिहंत कितने हैं ? हे गौतम! जंबूद्वीप के महाविदेह में जघन्य (केवली-तीर्थंकर की अपेक्षा) चार होते हैं- सीमंधर ***यावत्*** सुबाहु । अन्य महाविदेह में ८-८ होते हैं- ऋषभानन ***यावत्*** अजितानंतवीर्य । इस तरह ये जघन्य तीर्थंकर अरिहंत कुल २० होते हैं । हे भगवन् ! मध्यम अरिहंत कितने होते हैं ? हे गौतम! मध्यम तीर्थंकर इन बीस की पंक्ति के कुल- १६८० होते हैं ।

हे भगवन् ! उत्कृष्ट अरिहंत किस तरह समझना ? हे गौतम ! जम्बूद्वीप के महाविदेह क्षेत्र में उत्कृष्ट ३२ तीर्थंकर केवली हो सकते हैं । उसी तरह शेष चारों महाविदेह क्षेत्र में भी ३२-३२ केवली तीर्थंकर उत्कृष्ट हो सकते हैं । अर्थात् धातकी खंड के दो महाविदेह में ३२+३२ = ६४ अरिहंत होते हैं उसी तरह पुष्करार्ध द्वीप के दो महाविदेह में ६४ जानना ।

हे गौतम ! इन अरिहंत भगवंतों की चार अवस्था कही है- कुमारावस्था, राजा अवस्था, साधु अवस्था, केवली अवस्था । ये बीसों तीर्थंकर १२ गुण संयुक्त होते हैं । इन बीसों के सभी कार्य

एक सरीखे होते हैं । जिसमें- तीर्थंकर नाम गोत्र बंध से लेकर निर्वाण तक के कार्य समझ लेना । इसलिये हे गौतम ! ये नित्यनामी अरिहंत कहे गये हैं । इस प्रकार जैसे अरिहंतो का नाम कीर्तन वर्णन कहा उसी तरह सिद्ध आदि काभी वर्णन उक्त विधि से किया जा सकता है । यों यह पंच परमेष्ठी उत्कीर्तन प्रकरण पूर्ण होता है ।

विवेचन :- प्रस्तुत में विहरमान अरिहंत तीर्थंकरों की संख्या का खुलासा किया है । पाँच महाविदेह में ४-४ मिलकर जो २० की संख्या कही जाती है वह जघन्य की अपेक्षा है । इन बीस की पंक्ति में जो ८३-८३ होते हैं वे कुल- १६८० मध्यम की अपेक्षा है। ये केवल बीस विजय के है । उत्कृष्ट में ३२ ही विजय की अपेक्षा ३२-३२ कुल एक महाविदेह में होते है उन्हें केवली की अपेक्षा उत्कृष्ट रूप में दर्शाया है ।

२० नित्यनामी तीर्थंकरों के नाम, उम्र, अवगाहना, गणधर, आदि प्राय: सभी बातें समान होती है । इनके सिवाय उत्कृष्ट में जो ३२-३२ कहे हैं उनके लिये समानता असमानता का कोई नियम यहाँ सूचित नहीं किया गया है । अत: उनके विषय में अवगाहना, आयु, वर्ण, गणधर संख्या वगैरह का कोई एक निश्चित नियम, बिना कोई आधार मिले नहीं कहा जा सकता अर्थात् भिन्न हो सकते हैं ।

दूसरे तीन कीर्तन :-

[६१] से एवामेवं गोयमा ! अण्णे वि तिविहे उक्कित्तणे पण्णत्ते तं जहा- सव्वगुणी जीवणामकित्तणं, सव्वजीवणाम कित्तणं, सव्व अजीवणामकित्तणं ।

से किं तं भंते ! सव्वगुणी जीव णामकित्तणं ? गोयमा! ते अणेगविहा पण्णत्ता तंजहा- इंदाणं णामकित्तणं *जाव* सेणावइ मादियाणं। से तं सव्व गुणी जीव णामकित्तणं । से कि भंते ! सव्वजीव णामकित्तणं ? गोयमा ! अणेगविहा पण्णत्ता तंजहा- चेइयमाइयाणं णामकित्तणं। से तं सव्वजीव णामकित्तणं । से किं तं भंते ! सव्व अजीव णामकित्तणं ? गोयमा! ते वि अणेगविहा पण्णत्ता तंजहा- धम्मत्थिकायं, अवसेसं सव्वं वि समवायांग अणुयोगदारेण उक्कित्तणं जीवाणं वि अजीवाणं वि णायव्वं ।

भावार्थ :- इसी तरह हे गौतम ! अन्य भी तीन उत्कीर्तन कहे गये हैं । यथा- (१) सर्व गुणी जीव नाम कीर्तन (२) सर्व जीव नाम कीर्तन (३) सर्व अजीव नाम कीर्तन । हे भगवन् ! सर्व गुणी नाम कीर्तन क्या है ? हे गौतम ! वह अनेक प्रकार का है यथा- इन्द्रों का नाम कीर्तन ***यावत्*** सेनापति का नाम कीर्तन । हे भगवन् ! सर्व जीव नाम कीर्तन क्या है ? हे गौतम ! वह भी अनेक प्रकार का है यथा- साधु नाम कीर्तन वगैरह । हे भगवन् ! सर्व अजीव नाम कीर्तन क्या है ? हे गौतम ! यह भी अनेक प्रकार का है यथा- धर्मास्तिकाय आदि । यों समवायांग अनुयोग द्वार सूत्रानुसार जीवों का एवं अजीवों का कथन करना।

विवेचन :- यहाँ कीर्तन शब्द कथन मात्र के अर्थ में समझना । जो गुणी जीव, सामान्य जीव और अजीवों के नाम कथन रूप है ।

यहाँ मूल पाठ में कुछ लिपि दोष की शक्यता हो सकती है जिससे गुणी जीव के उदाहरण और सामान्य जीव के उदाहरण का पाठ आपस में अदल-बदल हो गया है ऐसा संभव लगता है अर्थात् गुणी जीव कीर्तन में साधु आदि कहना और सामान्य जीव में इन्द्र आदि कहना । ऐसा समझ में आता है ।

शेष पाँच आवश्यक :-

[६२]से किं तं भंते ! चउविसत्थवं करेज्जा ? गोयमा! से एवामेवं सयं सयं खेत्तंमि वट्टमाणाणं अरिहंताणं भगवंताणं चउवीसत्थवं करिज्जा। पढमे विहाणेण णायव्वं । से तं उक्कित्तणं वा चउवीसत्थवो वा ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! चतुर्विंशति स्तव क्या है ? हे गौतम ! अपने अपने क्षेत्र में वर्तमान अरिहंत तीर्थंकरों की स्तुति करना यह चतु र्विंशति स्तव-उत्कीर्तन है । जो पूर्ववत् जानना । यह उत्कीर्तन अथवा चतुर्विंशति स्तव है ।

[६३] से किं भंते ! वंदणा ? गोयमा ! वंदणा तिविहा पण्णत्ता तंजहा- अप्पगुणेणं वंदणं करेज्जा, बहूगुणेणं वंदणं करेज्जा, अप्पबहुगुणेणं वंदणं करेज्जा अहवा जहण्ण गुणेणं, मज्झिम गुणेणं, उक्कोस गुणेणं वंदणं करेज्जा । तिविहा वंदणा पण्णत्ता तंजहा- पदवंदणा, गुण वंदणा, णामवंदणा । से किं तं भते ! पदवंदणा ? गोयमा! से एवं

वंदणं करेह- वंदामि अरिहंताणं । से किं तं भंते ! गुणवंदणा ? गोयमा! से एवं वदेह- वंदामि अरि हंताणं अणंतणाणमाईयाणं गुणाणं अहवा पावयणाइं वंदामि । से किं तं भंते ! णामवंदणा ? गोयमा! तेसु एवं वएज्जा- वंदामि रिसभं एवं जाव साहूणं वंदामि । से तं णाम वंदणा । से किं तं भंते ! वंदणविही पाढो ? गोयमा! जहा पुव्वुत्तं ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! वंदना क्या है ? हे गौतम ! अल्प गुण वाले को, बहुत गुण वाले को और मध्यम गुण वाले को । अथवा थोडे गुणों के उच्चारण से, अधिक गुणों के उच्चारण से और मध्यम गुणों के उच्चारण से विनय भक्ति प्रगट करना ।

वंदना तीन प्रकार की है- पद वंदना, गुण वंदना, नाम वंदना। (१) मैं अरिहंत को वंदन करता हूँ आदि यह पद वंदना अर्थात् पद के उच्चारण युक्त वंदना है । (२) मैं अनंत ज्ञान आदि गुणों वाले अरिहंतों को, वंदन करता हूँ या अमुक गुण वालों को वंदन करता हूँ यह गुण वंदना । (३) मैं ऋषभ देव भगवान को वंदन करता हूँ। यह नाम युक्त वंदना है । वंदन विधि का पाठ इच्छामि खमासणो का पहले कह दिया और विधि भी वहाँ कह दी गई है ।

[६४] से किं तं भंते ! पडिकम्मणे ? गोयमा ! से वि तिविहे पण्णत्ते तंजहा- अतीतं, पडुपण्णं, अणागयं वि । तिविहा पडिक्कमणफला पण्णत्ता तंजहा- अतीतकालस्स आलोयणा, वट्टमाणकालस्स संवरधम्मे, अणागयकालस्स णिव्वत्तणा-विसोही मग्गफला । से तं पडिक्कमण फला ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! प्रतिक्रमण क्या है ? हे गौतम ! यह भी तीन प्रकार का है- अतीत, अनागत, वर्तमान । इनके तीन फल है- अतीत की आलोचना, वर्तमान का संवर धर्म और अनागत विशुद्धि मार्ग निवर्तन । यह प्रतिक्रमण का फल प्रत्यक्ष है ।

[६५] से किं तं भंते ! काउस्सगे ? गोयमा! तिविहे पण्णत्ते तंजहा- उक्कित्तणमाइयाणं चिंतणट्ठे काउसग्गं करेइ, णाणदंसण चरित्त तव अइयाराणं चिंतणट्ठे काउस्सगं करेइ, जावज्जीवाए काउसग्गं करेइ । तिविहा काउसग्गा पण्णत्ता तंजहा- सागारी अणागारी पडिमाए । से तं काउसग्गं ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! कायोत्सर्ग क्या है ? हे गौतम ! यह तीन प्रकार का है- (१) उत्कीर्तन चिंतन हेतु (२) ज्ञान दर्शन आदि के अतिचार चिंतनार्थ और (३) जीवन पर्यंत का कायोत्सर्ग । कायोत्सर्ग अन्य भी तीन प्रकार है- (१) सागारी (२) अणागारी (३) और पडिमा रूप । यह कायोत्सर्ग का स्वरूप है ।

[६६] से किं तं भंते ! पच्चक्खाणे ? सेवि तिविहे पच्चक्खाणे गोयमा ! अतीत पावाणं पच्चक्खाणे, पडुपण्ण पावाणं पच्चक्खाणे, अणागय पावाणं पच्चक्खाणे । से किं तं भंते ! अतीतए ? गोयमा! मिच्छत्ताइयाणं पच्चक्खाणं, वट्टमाण भोगोवभोगे ववगय राग दोसो, अणागये अणियाणं । से तं पच्चक्खाणं ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! प्रत्याख्यान क्या है ? हे गौतम ! प्रत्याख्यान तीन तरह का है- भूतकालीन पाप का प्रत्याख्यान, वर्तमान कालीन पाप का प्रत्याख्यान और अनागत पापों का त्याग । अतीत में सेवन किये मिथ्यात्व आदि पापों का त्याग करना। वर्तमान में उपभोग में राग द्वेष रहित बनना आसक्ति का त्याग करना। भविष्य काल के लिये नियाणा रहित बनना अर्थात् आकांक्षओं का त्याग करना।

विवेचन :- इस छठे उद्देशक में सूत्र ५४ तक प्रथम आवश्यक की मुख्यता से वर्णन है । सूत्र ५५ में दूसरे आवश्यक की मुख्यता से उत्कीर्तन संबंधी वर्णन है । ६२ वें सूत्र में दूसरे आवश्यक का और ५४ में सूत्र में प्रथम आवश्यक का उपसंहार रूप वर्णन है। ६३ वें सूत्र में तीसरे वंदना आवश्यक की मुख्यता से वर्णन है जो खमासमणा के पाठ से सूचित किया गया है उसके भी दो तरह से तीन प्रकार जघन्य गुण आदि के अवलंबन से कहे हैं । उभयकाल प्रतिक्रमण का यह वंदना आवश्यक खमासमणो के पाठ से ही होता है । अन्य समय दर्शन आदि के समय तिक्खुत्तो के पाठ से वंदन होता है । तथा कोई भी प्रकार की आज्ञा विशेष के समय भी तिक्खुत्तो के पाठ से वंदन होता है जो इस सूत्र से और अन्य अनेक आगमों से सिद्ध है । वह प्रत्यक्ष परोक्ष दोनों में तिक्खुत्तो से ही आगमोक्त है। फिर ६६ वें सूत्र तक पच्चक्खाण तक छ आवश्यक का संक्षिप्त यथायोग्य कथन है ।

पुनः तीन की संख्या के बोल :-

[६७] तिविहा साहू पण्णत्ता तंजहा- दव्व सलिंगी दव्वभाव सलिंगी भावसलिंगी । दव्वसलिंगी तिविहा पण्णत्ता तंजहा- सुद्ध दव्वसलिंगी असुद्ध दव्वसलिंगी मिस्सिय दव्वसलिंगी । से केणं भंते ! निच्छयणयेण ववहारेण वा वंदेज्जा णमंस्सेजा? गोयमा ! दुण्हं णिच्छयणयेण वा ववहारणयेण वा वंदेज्जा णमंस्सेज्जा । से कि भंते ! णिच्छयणयेण वा ववहार णयेणं वा ? गोयमा ! णिच्छयणयेणं भावसलिंगीणं, ववहारेणं सुद्धदव्व भाव सलिगीणं। तिविहा दव्व णया पण्णत्ता तं जहा- णेगमे ववहारे, संगहे । तिविहा णिच्छयणयस्स भेया णेगमाइ। अहवा सद्दादि णया ।

भावार्थ :- तीन प्रकार के साधु होते हैं- (१) द्रव्य स्वलिंगी-जैन साधु की वेशभूषा (२) द्रव्य भाव स्वलिंगी-वेश के साथ आचार शुद्धि (३) भाव स्वलिंगी-पूर्ण शुद्ध आचार-भाव संयमी । द्रव्य स्वलिंगी के तीन प्रकार- शुद्ध, अशुद्ध और मिश्र द्रव्य स्वलिंगी । इनमें से किन-किन को निश्चयनय और व्यवहारनय से वंदन नमस्कार किया जाय ? गौतम ! निश्चय नय व्यवहारनय दोनों से वंदन करना। (१) निश्चय नय से भाव स्वलिंगी को (२) व्यवहार नय से शुद्ध द्रव्य-भाव लिंगी को । अर्थात् अशुद्ध और मिश्र द्रव्य लिंगी को वंदन नहीं कहा है । द्रव्य नय तीन है- नैगम संग्रह व्यवहार । और निश्चयनय भी तीन है- नैगमादि अथवा शब्दादि तीन नय । नय निक्षेप आदि का स्वरूप परिशिष्ट पृष्ठ- २८५ में देखें।

विवेचन :- प्रस्तुत में द्रव्य-भाव स्वलिंग का कथन करते हुए वंदन की चर्चा की गई है । यहाँ भाव स्वलिंग में महाव्रत समिति आदि का शुद्ध पालन लिया गया है । वह निश्चयनय से वंदनीय होता है । उसका द्रव्यलिंग कारण विशेष से कोई भी हो वह संयम परिणामों के कारण निश्चयनय का वंदनीय ही कहा जायेगा । परंतु व्यवहारनय से जिसका व्यवहार वेश द्रव्यवेश शुद्ध द्रव्यलिंग होगा तो ही वह व्यवहार से वंदनीय होगा अन्यथा वह कितना भी ऊँचा संयमवान हो परंतु द्रव्यलिंग गलत है तो व्यवहार से वंदनीय नहीं कहा जा सकता यथा- भरतराजा को आरिसा भवन में केवलज्ञान

हो गया तो भी उस राज्य वेश में-गृहस्थ वेश में जो कि द्रव्य अशुद्ध है उसमे व्यवहार वंदनीय नहीं कहे जाते, निश्चयनय से भले वंदनीय कहे जायेंगे तात्पर्य यह है कि निश्चयनय में भाव शुद्ध मात्र अपेक्षित होता है । व्यवहारनय में भावशुद्धि के साथ द्रव्यवेश भी शुद्ध चाहिए। अशुद्ध और मिश्र नहीं चलेगा । किन्तु वर्तमान में हुंडावसर्पिणी के कारण मात्र द्रव्यलिंग शुद्ध हो तो अपवाद मार्ग से वे सभी व्यवहार वंदनीय है क्योंकि विशिष्ट ज्ञानियों के अभाव में और राग द्वेश से परिपूर्ण इस जमाने में व्यवहार वंदनीय अवंदनीय के झमेले में पडने से फूटफाट, रागद्वेश ही पल्ले ज्यादा पडता है । अतः व्याख्या ग्रंथ प्रमाण से जो निर्ग्रंथ प्रवचन का अपयश नहीं करते अपितु प्रभावना करते है वे व्यवहार वंदनीय अपवाद मार्ग से स्वीकार्य है । गाथा-

दंसण णाण चरित्ते, तव विणए णिच्च काल पासत्था।
एए अवंदणिज्जा, जे जसघाई पवयणस्स ।।११०९

अर्थ :- जो ज्ञान दर्शन चरित्र तप और विनय की अपेक्षा सदा पासत्था आदि भाव में रहता है, साथ ही जो जिन शासन की अपकीर्ति करने वाला हो तो वह भिक्षु अवंदनीय होता है । तात्पर्य यह है कि द्रव्यलिंग शुद्ध है और शासन की अपकीर्ति नहीं करता है तो वह पासत्थादि भी वर्तमानकाल में व्यवहार से अपवाद रूप वंदनीय होता है। यह इस गाथा का भाव है। यह गाथा आवश्यक निर्युक्ति की है । विशेष में वंदन संबंधी विचारणा जैनागम निबंध माला भाग १ के पृष्ठ ८७ पर देखें । निश्चयनय से वंदन का मतलब है- मात्र भावों से वंदन। और व्यवहारनय से वंदन का मतलब है- वंदना की प्रवृति क्रिया से, बाह्य वंदन से ।

सम्यग्दर्शन आदि तीन-तीन :-

[६८] तिविहा सम्मदंसणस्स णामा पण्णत्ता तंजहा- सम्म दिट्ठंति वा समत्तंति वा दीहदंसणंति वा । तिविहा जोगा पण्णत्ता तंजहा- मणजोगे, वयजोगे कायजोगे । तिविहा करणा पण्णत्ता तंजहा- करेइ, करावेइ, करंतंपि समणुजाणेइ । तिविहा दयावत्ता पण्णत्ता तं जहा- केवली, साहु, अभव्व साहु । तिविहा दया पण्णत्ता तंजहा- दव्वदया, भावदव्वदया, भावदया। तिविहा अण्णा वि दया पण्णत्ता

तंजहा- सदया, परदया, सपरदया । तिविहा दया पण्णत्ता तंजहा- णिच्छयणयेणं दया, णिच्छयववहारणयेणं दया, ववहारणयेणं वि दया ।

भावार्थ :- सम्यग् दृष्टि के तीन नाम कहे हैं- (१) सम्यग् दृष्टि (२) समकिती (३) दीर्घदृष्टि । यों योग तीन कहे हैं- मन योग, वचन योग, काय योग । तीन करण- करना, कराना, अनुमोदन । तीन दयावान- केवली, साधु और अभवी साधु । तीन दया के प्रकार- द्रव्य दया-दया की प्रवृत्ति, भावद्रव्य दया-भावयुक्त दया की प्रवृत्ति, भाव दया-अंतर मन में अनुकंपा । अन्य भी तीन दया- स्वदया, पर दया, उभय दया । अथवा दया तीन- निश्चय दया, निश्चय व्यवहार दया, व्यवहार दया ।

ब्राह्मी लिपि के प्रकार :-

(६९) तिविहा बंभी लिवियस्स णं भेया पण्णत्ता तंजहा- जहण्णे, मज्झिमे, उक्कोसे । से किं भंते ! जहण्ण बंभी लिविस्स भेया ? गोयमा ! जहण्ण बंभी लिविस्स अट्ठारस भेया पण्णत्ता तंजहा- बंभी लिवि जाव बोलंदी लिवि । से किं तं भंते ! मज्झिम बंभी लिविस्स भेया पण्णत्ता? गोयमा! मज्झिमा बंभीलिविस्स चउसट्ठी भेया पण्णत्ता तंजहा- बंभीलिवि अंगलिवि बंगलिवि मणवेज्झिमंग मागधी सक्कारी बंभवल्लि उग्गी दाहिणी दावडी संखा अणुलोमी दड्ढी अद्ध धनुक्खी खसी चीनी हूनी पुप्फी मज्झमक्खरवित्थारी भूई जक्खी नागी देवी सुहम्मी गंधवी असुरी महोरगी मिगचक्की चक्की गरूडी वाउभक्खेइ अंतलिक्खदेवलि भीमदेवीलि अवरगरूडादी खरोट्ठी पुक्खरसारी कण्णारी अंगुली मागली बुद्धि निक्खेवी पक्खेवी उद्खेवी विखेवी वज्जी लेहपडीलेही सागरी अणुदुय गणणावती उद्खेवावती सत्थावती विक्खेवावती पायलिहिए दोउत्तर पयसंद्धि दसण्हं उत्तर पयसंधि अज्झाहारणी सव्वभूए संगहणी विभिसिय- संगहणी इसितवस्सतवा मरहट्ठी धरणविक्खेवणी सव्व ओसीहिणिसिंदा सव्वसारसंगहणी सव्वभूए उउ गहणी ।

से किं तं भंते ! बंभी लिविस्स उक्कोसा भेया ? गोयमा! उक्कोसा बंभीलिविस्स अणेगा भेया पण्णत्ता तंजहा- बंभीलिवि, सुगुणीलिवि, सुलक्खणीलिवि, कहूलीलिवि, वीरलि,

कालंगी, विदेहीलिवि, वसुवरमा, सुवरमा, संगम, दहारण, गम्भीर, महासेन, भानू, सुक्कंत, पुप्फयुत्तलि, चित्तंग, अविसेसं गोयमा! एवा मेवं णायव्वं सव्वगामाणं नामाणं, सव्वाणं देसाणं णामाणं, सव्वाणं णगराणं णामाणं सव्वाणं देवलोगाणं णामाणं एवं भवणाणं समुद्दाणं वि *जाव* सव्व उत्तमणामेणं णायव्वं । एया बंभिलिवि कस्सठाणे वट्टइ? गोयमा ! अढाइज्जेसु दीवेसु परिवट्टइ तिलोएसु वा ।

भावार्थ :- ब्राह्मी लिपी के तीन प्रकार है- जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। जघन्य ब्राह्मी लिपी के १८ भेद है- ब्राह्मी ***यावत्*** बोलिंदी । हे भगवन् ! मध्यम ब्राह्मीलिपी के कितने भेद है ? हे गौतम! मध्यम ब्राह्मी लिपी के ६४ भेद हैं यथा- (१) ब्राह्मी लिपी (२) अंगलिपी (३) बंगलिपी (४) मंगलिपी (५) मागधी (६) संस्कारी (७) बं भवल्लि (८) उग्गी (९) दक्षिणी (१०) द्राविडी (११) संस्कृत (१२) अनुलोमी (१३) दृढी (१४) अर्धधनुक्षी (१५) रवची लिपि (१६) चिनाई (१७) हुनी (१८) पुष्पी (१९) मध्य अक्षर विस्तारी (२०) भूति (२१) जक्षी (२२) नागरिकी (२३) देवी (२४) सुधर्मी (२५) गांधवी (२६) असुरी (२७) महोरगी (२८) मृगचक्री (२९) चक्री (३०) गारूडी (३१) वायु भखेइ (३२) अंतरिक्ष देवलि (३३) भीम देवीलि (३४) अपर गरूडादी (३५) खरोठी (३६) पुष्कर सारी (३७) कन्यारी (३८) अंगुली (३९) मागली (४०) बुद्धि (४१) निक्षेपी (४२) प्रक्षेपी (४३) उद्क्षेपी (४४) विक्षेपी (४५) वज्जी (४६) लेख पडिलेखी (४७) सागरी (४८) अनुदुय (४९) गणनावती (५०) उद्क्षेपावती (५१) शस्त्रावती (५२) विक्षेपावती (५३) पाय लिखित (५४) दो उत्तर पद संधी (५५) दस उत्तर पद संधी (५६) अध्याहारणी (५७) सर्वभूत संग्रहणी (५८) विमिसित संग्रहणी (५९) ऋषि तवस्सतवा (६०) मराठीलिपि (६१) धरण विक्षेपिणी (६२) सर्व औषधि निसिंदी (६३) सर्वसार संग्रहणी (६४) सर्वभूत ऋतुग्रहणी ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! ब्राह्मी लिपि के उत्कृष्ट भेद कितने है? हे गौतम ! उसके अनेक भेद हैं- (१) ब्राह्मी लिपि (२) सुगुणी (३) सुलक्षणी (४) कहूली (५) वीरलि (६) कालंगी (७) विदेही (८) वसुवरमा (९) सुवरमा (१०) संगम (११) दहारण (१२) गंभीर (१३)

महासेन (१४) भानु (१५) सुकंत (१६) पुष्प युक्तलि (१७) चित्रांग और भी हे गौतम ! इस प्रकार सर्व गाम के नाम की, सर्व देश के नाम की, सर्व नगर, सर्व देवलोक, सर्व भवन, सर्व समुद्र ***यावत्*** सर्व उत्तम नामों वाली जानना । ये उत्कृष्ट लिपि भेद हैं । हे भगवन् ! ऐसी ब्राह्मी लिपि कहाँ प्रवर्तित होती है ? हे गौतम ! सर्व ढाई द्वीप में अथवा तीनों लोक में प्रवर्तित होती है ।

[७०] तिविहे ववसाये पण्णत्ते तंजहा- पच्चक्खे, पच्चइए, अणुगामिए, अवसेसं जहा ठाणे । तिविहा दव्वलिंगस्स भेया पण्णत्ता तं जहा- भंडमत्तंति वा उवगरणंति वा उवहिंति वा।

भावार्थ :- व्यवसाय-ज्ञान रूप प्रवृत्ति तीन प्रकार की है- (१) प्रत्यक्ष- अवधि, मनःपर्यव, केवल ज्ञान रूप । (२) प्रत्ययिक- इन्द्रिय ज्ञान रूप । (३) अनुमानिक- अनुमान से जानना । जहाँ धुंआँ है वहाँ अग्नि है इत्यादि । व्यवसाय का अन्य वर्णन ठाणांग सूत्र अनुसार जानना । द्रव्य लिंग तीन प्रकार के होते हैं- (१) पात्र (२) उपकरण-वस्त्रादि (३) उपधि- अन्य कल्पनीय संयम के साधन ।

तीन द्रव्यलिंग (उपकरण) :-

[७१] से किं तं भंते ! भंडमत्ताओ पण्णत्ताओ ? गोयमा! तिविहा पण्णत्ता तंजहा- लाउयपायं ति वा दारुपायं ति वा मट्टीयपायं ति वा। से किं तं भंते ! उवगरणं ? गोयमा ! उवगरणे तिविहे पण्णत्ते तं जहा- रयहरणं ति वा गुच्छगं ति वा दव्वलिंगस्स पहाणभेया सरीराए आवस्सयं चेइयोवगरणं सत्ति अणुसारेणं । से किं तं भंते ! उवही ! गोयमा ! उवहि णं अणेगा भेया पण्णत्ता तंजहा- वत्थं ति वा कंबलं ति वा चोलपट्टगं ति वा कडीबंधणं ति वा उरबंधणं ति वा पच्छायगं ति वा दीह पायबंधणं ति वा रहस्स पायबंधणं ति वा पायकेसरिं ति वा उडगं ति वा पीढगं ति वा फलगं ति वा सिज्जं ति वा संथारगं ति वा लट्ठीयं ति वा मत्तयं ति वा भिस्सियं ति वा चिलिमिलियं ति वा चम्मं ति वा चम्मकोसं ति वा चम्मपलिच्छेयं ति वा ।

दव्वलिंगस्सणं भंते ! के भेया ? कण्हं कण्हं कालंमि समणा वा समणी वा णिग्गंथा वा णिग्गंथी वा धारियव्वं सिया? गोयमा! तिविहा समणा णिग्गंथा पण्णत्ता तंजहा- जिणकप्पंति वा थेरभूमिपत्तयंति वा

सव्व थेवरकप्पयंति वा से तइए ठाणे णिग्गंथी वि णायव्वा । गोयमा! जिणकप्पी वि मुहे सया लिंगं धारेइ अहवा भंडमत्तोवगरणोवहियं सयं सयं परिण्णाणुसारेणं धारित्ता भवइ जहा आयारे, भगवईए । थेरभूमिपत्ता समणा वा समणी वा सलिंग भंडोवगरणं सव्वोवहियं धारित्ता य भवंति, अवसेसं साहू वि साहुणी वि सव्व थेरकप्पी सलिंग भंडमत्तोवगरणं सव्व दव्वलिंग जहा ठाणं आवस्सयं भवंति तहा तहा ठाणे सयसत्तिणुसारेणं धारित्ता भवंति, अहवा गोयमा सलिंगेसु, णिरवसेसं सव्व कालंमि संवट्टित्ता साहू भवंति ।

भावार्थ :- पात्र तीन प्रकार के- लकडी, मिट्टी, तुम्बे के पात्र साधु को कल्पते हैं । उपकरण तीन- रजोहरण, गोच्छग, और ज्ञान के साधन । उपधि में- शेष सभी कंबल, आसन, चोलपट्टक, चद्दर, गाती, पात्रों के झोली आदि सभी उपकरण, कपडे, लघुनीत-बडीनीत के भाजन, शय्या संथारा, पडिहारे उपकरण, लाठी, मच्छरदानी, चमडे के तीन उपकरण, पडदा । ये सब परिस्थिति वश संयमी के साधन उपधि में गिनाये है । (मूल पाठ में चोलपट्टक का पर्याय वाची शब्द कडीबंधन भी कहा है । प्रश्नव्याकरण सूत्र में कडिबंधन एक शब्द ही है चोलपट्टक की जगह । इस सूत्र में भी दीक्षा के पाठ में कडि-बंधन शब्द ही चोलपट्टे के लिये है ।)

हे भगवन् ! द्रव्यलिंगी के कितने प्रकार हैं और वे कब कब श्रमण श्रमणी निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी धारण कर सकते है ? हे गौतम ! द्रव्यलिंग की अपेक्षा तीन प्रकार के श्रमण निर्ग्रंथ होते हैं- (१) जिनकल्पी (२) स्थविरभूमि प्राप्त (३) सभी स्थविरकल्पी । तीसरे बोल में निर्ग्रंथी भी है वह स्थविरकल्पी ही होती है, जिनकल्पी नहीं होती है । **(दूसरे बोल में स्थविर भूमि प्राप्त में अवस्था आने पर श्रमण श्रमणी दोनों ही हो सकते हैं । साध्वी में उम्र से, श्रुत से, स्थविर भूमि प्राप्त को शास्त्र में स्थविरा कहा गया है ।)**

हे गौतम ! जिनकल्पी श्रमण भी मुख पर सदा मुँहपत्ति धारण करते हैं और रजोहरण भी अवश्य रखते है उनके ये दो स्वलिंग होते हैं। शेष भंड मत्तोवगरण जिनकल्पी अपनी अपनी शक्ति प्रतिज्ञा अनुसार रखते हैं । जैसा कि आचारांग के आठवें अध्ययन में तथा

भगवती में वर्णन है । स्थविर भूमि प्राप्त श्रमण श्रमणी (१) स्वलिंग (२) भंडोपकरण और (३) सभी प्रकार की उपधि आवश्यकता अनुसार रख सकते हैं । शेष स्थविर कल्पी साधु जितनी शास्त्र की आज्ञा और अपनी शक्ति जरूरियात अनुसार स्वलिंग और भंडोपकरण रखते हैं गुरु आज्ञानुसार, समाचारी अनुसार । अथवा हे गौतम ! स्वलिंग में (मुँहपत्ति रजोहरण में) सदा काल पूर्ण रूप से रहने वाले ही साधु होते हैं । अर्थात् साधु स्वलिंग के दो उपकरण तो रखे ही, बाकी उपकरण ऐच्छिक होते हैं ।

विवेचन :- इन सूत्रों में उपकरण संबंधी अनेक बातों का स्पष्टीकरण हुआ है जो भावार्थ से स्पष्ट है । आपवादिक परिस्थिति के भी अनेक उपकरणों का कथन मूल पाठ में हुआ है । जो अच्छी बडी लिस्ट है। ऐसे ही आपवादिक कुछ उपकरण आचारांग द्वितीय श्रुत स्कंध में तथा व्यवहार सूत्र उद्देशक आठ में भी सूचित किये है जो वृद्धावस्था से संबंधित है । प्रस्तुत सूत्रों में साधुओं के तीन भेद उपकरण की अपेक्षा किये है । वे भी अच्छे महत्वशील है जिसमें स्थविर अवस्था और **स्थविर कल्प ये दो विभाग भी कई समाधान वाले हैं** । साध्वी का समावेष खाश स्थविरकल्पी में किया है क्यों कि वह जिनकल्प धारण नहीं कर सकती ।

तीन काल :-

[७२] तिविहा काला पण्णत्ता तंजहा- उवमाकाले, पमाण काले, अंतरकाले । से किं तं भंते ! उवमाकाले ? गोयमा! उवमाकाले दुविहे पण्णत्ते तंजहा- पलिओवमकाले, अवसेसं जहा अणुओगदारे। से किं तं भंते ! पमाणकाले ? गोयमा पमाणकाले अणेगविहे पण्णत्ते तंजहा- एग समयमित्ते पमाण काले जाव सव्वद्धा पमाणकाले। अहवा गोयमा ! एवामेवं वि भवंतिति मक्खायं सव्वेसिं वि जिणं-दाणं आऊ पमाणकाले। जहाणामेणं पढम अरिहंतस्स चउरासीइं पुव्वसय सहस्साइं सव्वाउयं पमाणकाले *जाव* बावत्तरिं वासाइं सव्वाउयं कालपमाणं भवइ। एयाणि चेव सव्वेसिं वि अरिहंताणं भारहेवासेसु एरवय खेत्तेसु अणुपुव्वी पच्छाणुपुव्विस्स भंगाणुसारेणं णायव्वं । अवसेसं जहा समवाये वा जंबूदीवपण्णत्तीए ।

भावार्थ :- तीन तरह के काल कहे गये हैं- उपमाकाल, प्रमाण काल और अंतरकाल । उपमा काल दो प्रकार का है- पल्योपम और सागरोपम । उसका वर्णन अनुयोग द्वार सूत्र से जानना । हे भगवन् ! प्रमाण काल क्या है ? हे गौतम ! वह अनेक प्रकार का है यथा- एक समय ***यावत्*** सर्वद्धाकाल (तीनों काल युक्त संपूर्ण काल)। अथवा सर्व तीर्थंकरों का आयुष्य भी प्रमाण काल है । ऋषभदेव का आयु ८४ लाख पूर्व ***यावत्*** महावीर स्वामी का आयुष्य ७२ वर्ष प्रमाण । इस प्रकार सभी अरिहंतों का, भरत क्षेत्र का, एरवत क्षेत्र का, तीनों काल का आयुष्य, फिर महाविदेह क्षेत्र का इत्यादि समवायांग, जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र अनुसार जानना ।

पुनः तीन की संख्या वाले तत्त्व :-

[७३] तिण्णि वयणा पण्णत्ता तंजहा- अतीतवयणे, पडुपण्ण वयणे, अणगायवयणे । तिण्णि चक्के पण्णत्ते तंजहा- धम्म चक्के, रयणचक्के, सुदंसणचक्के। तिण्णि चक्कवट्टी- धम्म चक्कवट्टी, रयणचक्कवट्टी, सुदंसणचक्कवट्टी । तिण्णि पयत्थ झाणस्स णं भेया पण्णत्ता तंजहा- णामं वा पयं वा गुणं वा । एवं रूवत्थं वि, रूवातीतं वि । तिण्णि दव्वलिंगस्स पहाणं भेया पण्णत्ता तंजहा- सरीरं, सवत्थ सरीरं, सलिंगं । तिण्णि सोमलोगपालगस्स पसिद्ध णामा पण्णत्ता तं जहा- सोमेति वा सोमदिट्ठीति वा, संतेति वा, तिविहा वेसमणस्स लोगपालगस्स पसिद्ध णामा पण्णत्ता तंजहा, कुबेरेति वा धणवइति वा इंदधण्णरक्खियंति वा ।

तिण्णि थेर भूमियाओ पण्णत्ताओ तंजहा- जाई थेरे, सुय थेरे, परियाय थेरे । तिण्णि पडिक्कमणा पण्णत्ता तंजहा- णाण अइयारेण, किरिया अइयारेण, सलिंग भंडमत्तोवगरणोवहि अइयारेण । एवं अइकमं वइकमं अणायाराणं । तिविहे पायच्छित्ते- आलोयणारिहे, पडिक्कमणारिहे तदुभयारिहे । तिविहे पायच्छित्ते करेज्जा तंजहा- णाणस्सणं, किरियाणं, सलिंग दव्वलिंगस्सणं । तिविहे पायच्छित्ते पण्णत्ते तंजहा- जहण्णे, मज्झिमे, उक्कोसे । जहण्णे मिच्छायारो, मज्झिमे मासियमाइयाइं, अवसेसं जहा निसीहज्झयणे। एए चेव सडावस्सयस्स भावा साहूणं वा साहुणीणं वा खलु आवस्सगस्स सामग्गी ।

भावार्थ :- (१) तीन प्रकार के वचन कहे गये है- अतीत वचन, वर्तमान वचन, अनागत वचन (२) तीन चक्र कहे गये हैं- धर्मचक्र, रत्नचक्र, सुदर्शनचक्र (३) तीन चक्रवर्ती- धर्म चक्रवर्ती- तीर्थंकर, रत्न चक्रवर्ती- छ खंड के स्वामी चक्रवर्ती, सुदर्शन चक्रवर्ती-वासुदेव (४) पदस्थ ध्यान के तीन भेद- नाम, पद, गुण । इसी तरह रूपस्थ और रूपातीत के भी तीन तीन भेद (५) द्रव्य लिंग के तीन मुख्य भेद-शरीर (मनुष्यों का), वस्त्र सहित शरीर (सफेद वस्त्र)और निर्ग्रंथों का स्वलिंग (मुख वस्त्रिका, रजोहरण) वेश सहित शरीर (६) सोमलोकपाल के तीन प्रसिद्ध नाम- सोम, सोमदृष्टि और संत । वेश्रमण लोकपाल के तीन प्रसिद्ध नाम- कुबेर, धनपति, इन्द्रधनरक्षक (७) तीन पुरुष- युवान, वृद्ध, रोगी (८) स्थविरभूमि तीन- उम्र से स्थविर, श्रुत से स्थविर, दीक्षापर्याय से स्थविर (९) तीन प्रतिक्रमण- ज्ञान के अतिचारों का, क्रिया के अतिचारों का और स्वलिंग तथा भंडोपकरण संबंधी अतिचारों का (१०) तीन प्रकार का प्रायश्चित्त- आलोचनारूप, प्रतिक्रमणरूप, उभयरूप (११) तीन प्रकार का प्रायश्चित्त- ज्ञानसंबंधी, क्रिया संबंधी और स्वलिंग द्रव्य लिंग संबंधी (१२) तीन प्रकार का प्रायश्चित्त, जघन्य- मिच्छामि दुक्कडं, मध्यम- मासिक आदि निशीथ सूत्रानुसार और उत्कृष्ट भी निशीथानुसार चौमासी। इस प्रकार यह छ आवश्यक के भाव नामक उद्देशक में साधु-साध्वी की आवश्यक संयम सामग्री कही गई है। अब आगे श्रमणोपासक का अधिकार है।

श्रमणोपासक अधिकार :-

[७४] से किं तं भंते ! समणोवासगाणं वा समणोवासियाणं वा आवस्सय सामग्गी पण्णत्ता ? गोयमा ! से वि छव्विहा पण्णत्ता तं जहा- सामाइयं जाव पच्चक्खाणं । से किं तं भंते ! सामाइयं? गोयमा! तिविहा सामाइया पण्णत्ता तंजहा- सावज जोग विरइ, वयधारण, णाणदंसण, बारस वयाणं, तवस्स णं अइयाराणं चिंतणं। से किं तं भंते! णाणस्स अइयारा ? (सुयणाणस्स अइयारा) गोयमा! जं वाइद्धं जाव न सज्झायं । से किं तं भंते! सम्मदंसणस्स अइयारा पण्णत्ता? गोयमा ! सम्म दंसणे संका जाव परपासंडसंथवो । से किं तं भंते! सलिंगस्स धम्मोवगरण उवहीणं अइयारा पण्णत्ता तंजहा- दसण्हं चेव

सलिंगस्स धम्मोवगरण उवहीणं अप्पडिलेहियं *जाव* सलिंगे मुहे णो बंधेइ वा, जहाठाणे णो ठावेइ ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! श्रमणोपासक और श्रमणोपासिका की आवश्यक सामग्री क्या है ? हे गौतम ! इनके भी ६ आवश्यक कहे गये है- सामायिक ***यावत्*** प्रत्याख्यान । हे भगवन् ! सामायिक कितने प्रकार की है ? हे गौतम ! सामायिक के तीन प्रकार है- (१) सावद्ययोग विरति रूप (साधु की सामायिक) (२) व्रत रूप(श्रावक के नवमे व्रत रूप) (३) ज्ञान दर्शन चारित्र तप के अतिचार चिंतन रूप(प्रतिक्रमण के प्रथम आवश्यक रूप) ।

हे भगवन् ! ज्ञान के कितने अतिचार है ? हे गौतम ! ज्ञान के १४ अतिचार है- विगत पहले इसी उद्देशक के सूत्र-१ में आ गई है। हे भगवन् ! दर्शन के कितने अतिचार है ? हे गौतम ! दर्शन के पाँच अतिचार है । विगत पहले इसी उद्देशक के सूत्र-२ में आ गई है । हे भगवन् ! स्वलिंग और धर्मोपकरण उपधि के कितने अतिचार है ? हे गौतम ! दस अतिचार है । स्वलिंग में मुखवस्त्रिका संबंधी ५ है जिसमें ४ प्रतिलेखना के और पाँचवाँ मुँह पर मुँहपत्ति नहीं बांधे तो अतिचार । और पाँच भंडोपकरण के अतिचार है । जिसमें ४ प्रतिलेखन संबंधी और पाँचवाँ उपकरणों को यथास्थान व्यवस्थित न रखे इधर-उधर इखरा-बिखरा रखे तो अतिचार ।

(७५) से किं तं भंते ! बारसण्हं वयाणं धारणाविही, अइयारा य पण्णत्ता? गोयमा ! से एवामेवं पण्णत्ता तंजहा- पढमे अणुवयम्मि थूलं पाणाइ-वायं पच्चक्खेज्जा थूलं पाणाइवायं पच्चक्खेत्ता एवं मुसावायं वि, अदिण्णादाणं वि, अबंभं वि, परिग्गहं वि, जावजीवाए पच्चक्खेज्जा पच्चक्खेत्ता तओपच्छा दिसापमाणं करेइ जावजीवाए दुविहं तिविहेणं *जाव* अप्पाणं वोसिरेइ वोसिरेत्ता, भोगपरिभोगपमाणं करेइ, अणट्ठादंडस्स पच्चक्खाणं करेइ, सारूवंमि सामाइयं करेइ, दिसावकासियं अवरनामे संवरं णिच्चमेव करेइ अहवा माहणरूवेणं दिसावगासियं वयं एग अहोरायं काले पुणो पुणो आराहित्ता भवइ, इक्कारसमे वये पडिपुण्णं पोसहोववासं करेइ, चउतिही मज्झे एगं वि णो हायइ णवरं साहुरूवेणं अहोरायम्मि, बारसमे वये अतिहिसंविभागं करेइ। एएसु

वयेसु जं पच्चक्खाणं करेइ तस्स णाणदंसणतवसहिओ अइयाराइं चिंतिज्जा वा पडिकम्मेज्जा । ते सव्वेसिं वि णं वयाणं अइयाराइं णायव्वाइं।

भावार्थ :- हे भगवन् ! श्रावक के बारह व्रत धारण विधि और अतिचार क्या है ? हे गौतम ! वे इस प्रकार है- पहले व्रत में स्थूल प्राणातिपात-हिंसा (त्रस जीव की संकल्पजा हिंसा) का त्याग करे। इसी तरह दूसरे व्रत में स्थूल मृषावाद-झूठ का त्याग करे । तीसरे में अदत्तादान, चौथे में अब्रह्म और पाँचवें में स्थूल परिग्रह का त्याग (मर्यादा) करे, जीवन पर्यंत का । छट्ठे व्रत में दिशाओं का परिमाण कर के दो करण तीन योग से जीवन पर्यंत का प्रत्याख्यान करे । सातवें व्रत में उपभोग परिभोग के पदार्थों की मर्यादा करे । आठवें व्रत में अनर्थ दंड का त्याग करे । नवमे व्रत में साधु की वेशभूषा से सामायिक करे उसका नियम परिमाण में करे एवं वेशभूषा युक्त अथवा पूर्ण शुद्ध (दोष रहित)सामायिक करे । दशवें व्रत में दिशाओं की और द्रव्य आदि १४ बोल की मर्यादा करे । यहाँ मूल पाठ में इस व्रत में संवर का तथा एक अहोरात्रि के संवर करने का भी कथन किया है । ग्यारहवें व्रत में प्रतिपूर्ण पौषध चार तिथी (अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा) का करे और साधु जैसे अहोरात्रि में रहें । एक भी कम नहीं करे । बारहवें व्रत में श्रमणों को अतिथि रूप सुपात्र दान देने की भावना करे और प्रसंग आने पर स्वयं बहोरावे। दिन में एक बार भोजन करते समय सुपात्र दान भावना विधि का चिंतन करे । इन व्रतों में जो जो मर्यादा त्याग किये है उन ज्ञान, दर्शन, व्रत, तप सहित अतिचारों का चिंतन प्रतिक्रमण में करने के लिये उनके अतिचारों को जाने ।

[७६] तयाणंतरं च णं पढमे अणुव्वये थूलए पाणाइवाय वेरमणस्स समणोवासगाणं पंच अइयारा पेयाला जाणियव्वा ण समायरियव्वा तंजहा- बंधे, वहे, छविच्छेए, अइभारे, भत्तपाणवोच्छेए । तयाणंतरं च णं दुच्चे अणुव्वये थूलगस्स मुसावाय वेरमणस्स समणोवासगाणं पंच अइयारा जाणियव्वा ण सामायरिव्वा तंजहा- सहस्सभक्खाणे, रहस्सभक्खाणे, सदारमंत्तभेए अणत्थ एसठाणे इत्थी

एवं भणेज्जा सपुरिसमंत्तभेए वा सभत्तारमंतभेए एवं वि भणेज्जा, मोसोवएसे, कूडलेहकरणे। तयाणंतरं च णं तच्चे अणुव्वये थूलगस्स अदिण्णादाणाओ वेरमणस्स समणोवासगाणं पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा तंजहा- तेणाहडे, तक्करपओगे, विरूद्धरज्जाइ कम्मे, कूडतोले कूडमाणे, तप्पडिरूवगववहारे ।

तयाणंतरं च णं चउत्थे अणुव्वये थूलगस्स मेहुणाओ वेरमणस्स(सदारसंतोसिए) समणोवासगाणं पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा तंजहा- इत्तरिया सत्थी परिगहियागमणे, सत्थी अपरिगहियागमणे, अणंगकीडा, परविवाहकरणे, कामभोगतिव्वा-भिलासे से तं पंच अइयारा पुरिसाणं । एवं गोयमा! समणोवासियाणं सभत्तारसंतोसिय चउत्थे अणुव्वए थूलाओ मेहुणाओ वेरमणस्स पंच अइयारा जाणियव्वा ण समावरियव्वा तंजहा- इत्तरिय सपुरिस गहियगमणे, सपुरिस अपरिगहियगमणे, अणंगकीडा, परविवाहकरणे, कामभोगतिव्वाभिलासे ।

चउत्थे अणुव्वए मेहुणाओ वेरमणस्स सव्वओ बंभयारीणं पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा तंजहा- संकाठाणं सेवियं, इत्थीणं कामवड्ढणं कहं कहित्ताणं, पुव्वकीडा पुव्वरयं अणुसरित्ताणं, (कुमारभूयं एवं भणेज्जा- अण्णेहिं पुव्वकीडा पुव्वरयं अणुसरित्ताणं) णिच्चमेव अइमत्तं पणिताहारं आहारित्ताणं, कामरागेण इत्थीरूवं पासित्ताणं । एवं गोयमा ! मूलओ बंभयारिणीणं वि चउत्थे अणुव्वए मेहुणाओ वेरमणस्स पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा तं जहा- संकाठाणं सेवियं, पुरिस कामरागवड्ढणं कहं कहित्ताणं *जाव* पुरिसरूवं कामरागेणं णिज्झाइत्ताणं ।

तयाणंतरं च णं पंचमे अणुव्वये थूलग परिग्गहाओ वेरमणस्स (इच्छा परिमाणस्स) समणोवासयाणं पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा तंजहा- खित्तवत्थु पमाणाइकम्मे, हिरण्णसुवण्णपमाणाइ कम्मे, दुप्पयचउप्पय पमाणाइकम्मे, धणघण्ण पमाणाइकम्मे, कुवियधातु पमाणाइकम्मे । से तं पंचमं अणुवए । तयाणंतर च णं दिसिपमाणस्स पढम गुण वयस्स समणोवासगाणं पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा तंजहा- उड्ढदिसि पमाणाइकम्मे, अहोदिसि पमाणाइ-

कम्मे, तिरियदिसि पमाणाइकम्मे, खित्तवुड्ढि, सइअंतरद्धा । तयाणंतरं च णं दुच्चे भोगोपभोगगुणवए तिविहे पण्णत्ते तंजहा- भोयणाओ, परिभोयणाओ, कम्मओ, तत्थणं भोयणपरिभोयणाओ ते छव्वीसविहा पण्णत्ता तंजहा- उल्लणिया विही *जाव* दव्वविही । तस्स पमाणस्स समणोवासगाणं पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा तं जहा- सचित्तोसही आहारे, सचित्तपडिबद्ध आहारे, अपक्कोसही भक्खणया, दुपक्कोसहि भक्खणया, तुच्छोसहि भक्खणया । सव्वं पमाणाइकम्मणया, से तं भोगोपभोगं । कम्मओ णं समणोवासगाणं पण्णरस कम्मादाणाइं जाणियव्वाइं ण समायरिव्वाइं तंजहा- इंगालकम्मे, वणकम्मे *जाव* असईजण पोसणियाकम्मे ।

तयाणंतरं च णं तच्चे गुणव्वए अणट्ठादंडे वेरमणस्स समणोवासगाणं पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा तं जहा- कंदप्पे, कुक्कुइए, मोहरिए, संजुत्ताहिगरणे, अणट्ठ संजुत्तं भोगपरिभोगं । तयाणंतरं च णं पढमसिक्खावय सामाइय वयस्स (सावज्जजोगस्स वेरमणस्स) समणोवासयाणं पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा तंजहा- मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइ अकरणयाए (सामाइयस्स सइ कालविहूणे), सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणयाए । तयाणंतरं च णं दुच्चे सिक्खावए दिसावगासिए (आसव्वं वेरमणस्स) समणोवासगाणं पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा तंजहा- आणवणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सद्दाणुवाए, रूवाणुवाए, बहिया पुग्गल पक्खेवे । तयाणंतरं च णं तच्चे सिक्खावए पडिपुण्ण पोसहोववासस्स (सावज्जजोगोवगरणाइयसहिओ चउविह आहार वेरमणस्स) समणोवासगाणं पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा तंजहा- अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय सिज्जा-संथारे धम्मोवगरणाइं सेयं वत्थ मुहणंतगं णो मुहे बंधेइ वा जहाठाणे णो ठावेइ, अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय सिज्जा-संथारे धम्मोवगरणाइं सेयं वत्थं मुहणंतगं णो मुहे बंधेइ वा जहाठाणे णो ठावेइ, अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय उच्चारपासवणभूमी, अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय उच्चारपासवणभूमी, पोसहोववासस्स सम्मं अणणुपालणियाए। तयाणंतरे

चउत्थे सिक्खावये अहासंविभागस्स (अदाण भावाइ वेरमणस्स) समणोवासयाणं पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरिव्वा तंजहा- सचित्तणिक्खेवणया, सचित्त पिहणया, कालाइक्कमे, परववएसे, मच्छरियाए । कइविहा णं भंते ! एसट्ठाणे तवस्स अइयारा पण्णत्ता? गोयमा ! तवस्स णं चउद्दसविहा अइयारा पण्णत्ता तंजहा- सभावणा तवं अचिंतितए *जाव* अणुवओग सहिओ पारित्तए वा णियाण कडे । जहा पुव्वुत्त विहिणा ।

भावार्थ :- प्रथम अणुव्रत स्थूल हिंसा त्याग के मुख्य पाँच अतिचार श्रावक को जानने योग्य है और उनका सेवन नहीं करने का ध्यान रखना होता है फिर भी कभी भूल से, परिस्थिति से या आदत से सेवन हो जाय तो अतिचार लगता है । यथा- (१) गुस्से में आकर त्रस जीव को गाढे बंधन से बांधे (२) लकडी आदि से मार पीट करे (३) नाक, कान आदि अवयव का छेदन करे (४) स्वार्थ या अविवेक से अधिक भार डाले । (५) आहार पानी की अंतराय डाले। ये मुख्य (पेयाला) अतिचार कहे हैं अर्थात् अन्य भी कई सामान्य अतिचार हो सकते हैं उन्हें स्वबुद्धि से अपनी भूल रूप में अतिचार समझ लेना अर्थात् विस्तार से कोई भी व्रत के अनेकों अतिचार दोष हो सकते हैं । मुख्य को गिना दिया उसके आधार से सभी व्रतों में अन्य छोटे मोटे अतिचार स्वयं समझने के होते हैं । इस तरह पेयाला शब्द का प्रधान-मुख्य ऐसा अर्थ भावार्थ समझ लेना ।

दूसरे अणुव्रत स्थूल झूठ बोलने का त्याग रूप श्रमणोपासक के व्रत के ५ मुख्य अतिचार इस प्रकार है- (१) सोचे बिना किसी पर आक्षेप लगावे (२) किसी की गुप्त बात प्रगट करे (३) अपनी स्त्री की (या पति की) कोई भी रहस्यमय बात प्रगट करे (४) खोटी सलाह या पापकारी सलाह देवे (५) खोटा लेखन करे । श्रमणोपासक के **तीसरे अणुव्रत** में बिना दी वस्तु मोटी चोरी रूप का त्याग होता है उसके मुख्य पाँच अतिचार है- (१) मोटी चोरी की वस्तु जानबूझ कर खरीदे (२) चोर को मदद करे (३) राज नियमों की चोरी रूप में उलंघन करे, टेक्स की चोरी भी इस अतिचार में है (४) तोला मापा खोटा करे (५) वस्तु में मिलावट करे, व्यापार में धोखा बाजी

करे। **चौथा अणुव्रत** श्रमणोपासक का स्थूल मैथुन वेरमण व्रत का है अर्थात् स्वस्त्री मर्यादा और परस्त्री त्याग होता है । इस व्रत के मुख्य ५ अतिचार इस प्रकार है- (१) छोटी उम्र की अपनी स्त्री का सहवास किया हो (२) सगाई करी अपनी स्त्री का सहवास किया हो (३) अनंग क्रीडा की हो (४) दूसरे की शादी कराई हो (५) कामभोग की अति अभिलाषा की हो । श्रमणोपासिका के ५ अतिचार में से पहले दूसरे अतिचार में स्वपति शब्द लगाकर समझना । शेष समान है ।

श्रावक श्राविका संपूर्ण कुशील का त्याग जीवन भर का करे तो उसके ५ अतिचार इस प्रकार है- (१) शंका स्थानों का सेवन करे अर्थात् किसी के साथ एकांत में बैठे रहे आदि । (२) विकार वृद्धि होवे वैसी बातें करे (३) पहले की रति क्रीडा की बातें याद करे (४) गरिष्ट आहार करे (५) एक दूसरे के अंगोपांग को राग भाव से देखते रहे । ऐसा करने से अतिचार लगते हैं जिसका प्रतिक्रमण में मिच्छामि दुक्कडं देना होता है । यथाशक्य जितना संभव हो अतिचारों का वर्जन करना होता है ।

श्रमणोपासक के **पाँचवें परिग्रह परिमाण** अणुव्रत में परिग्रह की मर्यादा होती है उसका भूल से उल्लंघन होवे तो अतिचार लगता है और जानकर उल्लंघन करे तो अनाचार लगता है । अतिचार का प्रतिक्रमण में मिच्छामि दुक्कडं होता है । अनाचार का अलग से प्रायश्चित्त लेना होता है । इसी तरह **छट्ठे व्रत में** दिशाओं की मर्यादा में और सातवें व्रत में उपभोग परिभोग वस्तुओं की मर्यादा में अतिचार समझ लेना । छट्ठे व्रत में एक दिशा की मर्यादा घटा कर दूसरी दिशा में बढावे यों पलटा-पलटी करे तो भी अतिचार होता है । **सातवें व्रत में** श्रावक को सचित्त कोई भी वस्तु खावे तो अतिचार लगता है तथा १५ कर्मादान के कोई भी व्यापार करे तो अतिचार लगता है। अतःखासकर श्रावक को १५ कर्मादान का व्यापार नहीं करना चाहिये एवं सचित्त वस्तु भी खाना-पीना नहीं, अपक्व(अधूरी पकी) दुष्पक्व(अग्नि पर सीधी सेकी चीजें) भी नहीं खानी चाहिये खावे तो अतिचार लगता है । तुच्छ वस्तु भी नहीं खानी चाहिये, जैसे- बीडी, तम्बाकू, सिगरेट, शराब, मांसाहार ये सभी तुच्छ वस्तुएँ हैं

कंदमूल को भी तुच्छ वस्तु में गिनते है क्यों कि अनंतजीव का संहार होता है । इनको खाने पीने पर भी सातवें व्रत में अतिचार लगता है।

आठवें व्रत में श्रमणोपासक के अनर्थदंड का त्याग होता है। उसके पाँच अतिचार-(१) विषय विकार की विकथा करे (२) काया की कुचेष्टाएँ करे (३) फिजूल की बातें करे अतिवाचालता हंसी ठठा करे (४) हिंसाकारी साधन विवेक बिना रखे (५) फिजुल सामान इकट्ठा करके रखे । ये तीसरे गुणव्रत के अतिचार है ।

नवमे सामायिक व्रत में अर्थात् प्रथम शिक्षा व्रत में श्रमणोपासक रोजाना सामायिक करे या महिने की कुछ सामायिक करने का नियम रखे । उसमें सामायिक के विधि नियमों का और वेशभूषा का ध्यान रखे अर्थात् ३२ दोष टालकर और सफेद वस्त्र पहिन कर सामायिक करे और सामायिक के समय में आलस विकथा न करके धर्म ध्यान, ज्ञान ध्यान आदि में समय का सदुपयोग करे । ऐसे सामायिक व्रत के ५ मुख्य अतिचार है- (१-३) सामायिक के ३२ दोष टालकर सामयिक करनी होती है । १० मन के १० वचन के और १२ काया के दोष लगे तो अतिचार होते हैं । [इन ३२ दोषों को अर्थ सहित याद कर सामायिक में ध्यान रखना होता है।] (४) सामायिक में विस्मृति हो जावे, बोलने आदि में सामायिक का भान नहीं रहे । (५) सामायिक में धर्म ध्यान, ज्ञान ध्यान, आत्म-जागरण कुछ करे नहीं, ज्यों त्यों समय बितावे ।

दसवाँ देशावकासिक व्रत- श्रमणोपासक के दूसरे शिक्षाव्रत के ५ अतिचार हैं इसमें दिशाओं का अवकाश-मर्यादा, द्रव्यादि की मर्यादा, एवं संवर, अहो रात्रि का संवर व्रत का समावेश किया है। इनमें दिशा और द्रव्यादि की मर्यादा का भूल से उल्लंघन हो जाय तो अतिचार होता है । शेष संवर व्रत की अपेक्षा ५ अतिचार कहे है-(१) मर्यादा के बाहर की वस्तु मंगाई हो (२) मर्यादा के बाहर किसी को भेजा हो (३) शब्द संकेत से सूचन किया हो (४) कुछ दिखाकर संकेत किया हो (५) कुछ वस्तु फेंक कर संकेत किया हो। ये संवर व्रत जो दो करण तीन योग से किया हो उसकी अपेक्षा अतिचार कहे हैं ।

श्रमणोपासक के **ग्यारहवें व्रत** और तीसरे शिक्षा व्रत रूप पौषध में आहार त्याग, सावद्यत्याग, आभूषण त्याग होते है अहोरात्रि का पौषध-साधु जीवन जैसा होता है । उसके ५ अतिचार- (१) सोने बैठने के स्थान की और धर्मोपकरणों की प्रतिलेखना नहीं की हो या अच्छी तरह नहीं करी हो । श्वेत मुखवस्त्रिका मुख पर नहीं बांधी हो और उपकरणों को व्यवस्थित नहीं रखा हो (२) उपरोक्त स्थान आदि का यथा आवश्यक प्रमार्जन नहीं किया हो (३) परठने की भूमि का प्रतिलेखन न किया हो या अच्छी तरह नहीं किया हो (४) उसका आवश्यक प्रमार्जन नहीं किया हो (५) आगम आज्ञा अनुसार पौषध का सम्यक पालन नहीं किया हो ।

उसके बाद **बारहवाँ व्रत** चौथा शिक्षा व्रत सुपात्र दान देने का और दान की भावना करने का है इसका दूसरा नाम **अदान भावना का विरमण ऐसा भी कहा है अर्थात् अदान भावना से उपर उठकर सदा दान भावना से युक्त होना श्रावक का कर्तव्य होता है। यह विधान इस सूत्र में प्रयुक्त शब्दों से झलकता है। अन्य आगमों से इस आगम की यह विशेषता है**। उसके पाँच अतिचार है जो घर में विवेक विधि नहीं रखने से और स्वयं के अशुद्ध आचरण से लगते हैं, यथा- (१) घर में अचित्त पदार्थ सचित्त पर रखे हों (२) अचित्त पदार्थ सचित्त से ढाँके हों (३) भिक्षा के समय का ध्यान न रखा हो अर्थात् भिक्षा समय और अपने खाने का समय और घर के दरवाजे खुले रखने का समय बरोबर ध्यान नहीं रखा हो । (४) संयोग प्राप्त होने पर अर्थात् साधु-साध्वी गोचरी पधारे तब सब कार्य छोडकर खुद बहराने का याद न रखे । दूसरे को बहोराने का बोल दे खुद नहीं बहोरावे । (५) दान देकर अहंभाव करें या दान में भावों को शुद्ध नहीं रखे । झूठ, कपट, होंशियारी, अविवेक, जबरदस्ती करे ।

हे भगवन् ! तप के कितने अतिचार है ? हे गौतम ! १४ अतिचार हैं- (१) भावना सहित तप करने का चिंतन नहीं किया हो ***यावत्*** (१४) निदान किया हो अर्थात् आगामी फल की आकांक्षा की हो। पहले विस्तार से आ गया है, अतः यहाँ संक्षिप्त किया है ।

[७७] से किं तं भंते ! सावगाणं सअट्ठे सहेउ अप्पच्छिमाए मारणंतियाए संलेहणाए झूसणाए आराहणाए विहि पण्णत्ता? गोयमा ! सा एवामेवं सअट्ठा सहेउ *जाव* आराहणाए विहि पण्णत्ता तंजहा- गामंसि वा णयरंसि वा *जाव* रायहाणिंसि वा सब्भिंतरंसि वा बाहिरंसि वा उवस्सयं पडिलेहिज्जा, उवस्सयं पडिलेहित्ता उवस्सयं(पोसहसालाए) पमज्जिज्जा, उवस्सयं पमज्जित्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहिज्जा, उच्चारपासवण भूमिं पडिलेहित्ता उच्चारपासवणभूमिं पमज्जिज्जा, उच्चार पासवणभूमिं पमज्जित्ता, दब्भाइयं संथारं पडिलेहिज्जा, दब्भाइयं संथारं पडिलेहित्ता दब्भाइयं संथारं पमज्जिज्जा, पमज्जित्ता, संथारं संथरिज्जा, दंभाइयं संथारं दुरूहिज्जा, दुरूहित्ता, पुव्वदिसिं तहा उत्तरदिसाभिमुहे पलियंकाइ आसणंसि आसेज्जा आसित्ता, मुहपत्तिं मुहे बंधेज्जा, बंधेत्ता गमणागमणं पडिकम्मेज्जा, पडिकम्मेत्ता सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वएज्जा, णमुत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं *जाव* ठाणं संपत्ताणं(ठाणं संपाविउकामाणं) णमो जिणाणं जियभयाणं, एवं वइत्ता, तयाणंतरं च णं पुणो वि एवं वएज्जा, णमुत्थुणं सव्वसिद्धाणं भगवंताणं *जाव* जियभयाणं एवं वइत्ता, जे भवइ धम्मायरिए तस्स णं वि णमोत्थुणं भणिज्जा सयं मइ अणुसारेणं भणित्ता चउण्हं तित्थाणं खामणं करिज्जा, चउण्हं तित्थाणं खामणं करित्ता एवं सव्व जीवाजोणीओ खामेज्जा खामेत्ता सयं धम्मायरियस्स णामं भणमाणे पुव्व गहिय णाण दंसण वय तवस्सणं सव्वस्सणं अइयाराइं आलोइज्जा, पडिकम्मेज्जा, णिंदेज्जा, आलोइत्ता, पडिकम्मेत्ता, णिंदित्ता तयाणंतरं च णं अइयारेणं अत्ताणं णिसल्लं करेज्जा, अत्ताणं अइयारेणं णिसल्लं करित्ता एवं वएज्जा तस्स णं भगवओ सक्खाओ सव्वं पाणाइ वायं पच्चक्खामि *जाव* मिच्छादंसणसल्लं अकरणिज्जं जोगं पच्चक्खामि जावजीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं ण करेमि *जाव* अप्पाणं वोसिरामि एवं वएज्जा, एवं वइत्ता तओ पच्छा चउविहं वि आहारं पच्चक्खेज्जा जावजीवाए चउविहं वि आहारं पच्चक्खित्ता तओ पच्छा एवं वएज्जा- जं पि य इमं सरीरं इट्ठं कंतं, पियं, मणुणं मणामं धिज्जं विसासियं समयं, अणुमयं, बहुमयं भण्डकरण्डगसमाणं रयणकरण्डगभूयं माणं सियं, माणं उण्हं,

माणं खुहा, माणं पिवासा, माणं वाला, माणं चोरा, माणं दंसमसगा, एवं माणं वाहियं पित्तियं कप्फियं संभियं सण्णिवाइयं विविहा रोगायंका परिसहोवसग्गा फासा फुसंतु एवं पि य णं सरीरं चरमेहिं उस्सासणिस्सासेहिं अप्पाणं वोसिरिज्जा, अप्पाणं सरीरं वोसिरावित्ता कालं अणवकंखमाणे विहरमाणस्स तस्स णं पंच अइयारा जाणियव्वा ण समायरियव्वा तंजहा- इहलोगा संसप्पओगे, परलोगा संसप्पओगे, जीवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्पओगे, कामभोगा संसप्पओगे । से तं संलेहणा विही ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! श्रावक को अंतिम समय मृत्यु के अवसर पर, की जाने वाली शारीरिक मानसिक तप द्वारा कषायों की उपशांति रूप संलेखना-अनशन आराधना विधि क्या है ? हे गौतम ! वह आराधना विधि इस प्रकार है- ग्राम ***यावत्*** राजधानी में जहाँ भी श्रावक रहता है वहाँ अपने संथारा करने के लिये योग्य जो भी पौषधशाला है उसकी प्रतिलेखना प्रमार्जना करे, वहाँ परठने की भूमि की भी प्रतिलेखना प्रमार्जना करे । फिर घास का संथारा ग्रहण करे, उसकी प्रतिलेखना एवं आवश्यक हो तो प्रमार्जन करे और बिछावे। (यहाँ घास का संथारा की जगह यथावसर पाट पुठा आसन भी समझ लेना चाहिये।) फिर उस आसन पर बैठने से पहले अपने शरीर की प्रमार्जना करे । फिर पूर्व या उत्तर दिशा की तरफ मुख करके पल्यंकासन से बैठे । मुँहपत्ति की प्रतिलेखना कर आवश्यक हो तो प्रमार्जन कर मुख पर मुँहपत्ति बाँधकर इरियावहि करे । फिर मस्तक के पास दोनों हाथों की अंजली करके यों बोले- नमस्कार हो अनंता सिद्ध भगवंतों को, नमस्कार हो अरिहंत भगवान को, धर्माचार्य को नमस्कार हो। इस प्रकार नमोत्थुणं के पाठ से यथायोग्य वंदन करके, चारों तीर्थ को खमाकर, सर्व जीव राशि को खमाकर, पहले जिनके पास व्रत धारण किये हैं उनका नाम बोलकर ग्रहण किये व्रतों के अतिचारों की आलोचना प्रतिक्रमण करे । दोषों की निंदा, गर्हा करके निःशल्य होकर फिर इस प्रकार बोले- १८ पापों का तीन करण तीन योग से जीवन भर का प्रत्याख्यान करता हूँ और चारों प्रकार के आहार का जीवनपर्यंत त्याग करता हूँ । उसके बाद इस प्रकार बोले- मैं

इस शरीर का भी त्याग करता हूँ । यह शरीर जो मुझे इष्टकारी, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, अतिप्रिय, ध्याने योग्य, चाहने योग्य, विश्वासपात्र, सम्मत, अनुमत, बहुमत था, आभूषणों की पेटी समान, करंडिये के समान मैं इसे संभाल कर रखता था; इस शरीर को ठंड, गर्मी, भूख, प्यास न लगे, सर्प आदि नहीं काटे, चोर डांस मच्छर इसे पीडा नहीं पहुँचावे और इस शरीर में वात पित्त कफ से उत्पन्न कोई रोग नहीं आवे ऐसा ध्यान रखता था, परीषह उपसर्ग नहीं आवे ऐसा सोचता था, ऐसे आत्मीय इस शरीर को अब मैं अंतिम साँस तक के लिये त्याग करता हूँ, वोसिराता हूँ । इस प्रकार शरीर को वोसिराकर मृत्यु की आकांक्षा या जीने की इच्छा न करते हुए समभाव से, परम शांति से रहे । ऐसी इस अंतिम संलेखना के पाँच अतिचार हैं- (१) इस लौकिक सुख की चाहना (२) परलौकिक सुख की चाहना (३) जीने की आकांक्षा (४) मरने की आकांक्षा (५) सुख भोग की आकांक्षा; ये अतिचार छोडने योग्य है, ऐसी श्रद्धा रखे । यह श्रमणोपासक के संलेखना-संथारा की विधि हुई ।

विवेचन :- प्रस्तुत सूत्रों में श्रावक के भी ६ आवश्यकों का कथन है। समकित सहित १२ व्रतों के अतिचार सहित कथन है और पाँच अतिचार सहित संलेखना विधि विस्तृत बताई है तथा तप के १४ अतिचार अलग कहे हैं । प्रचलन में श्रावक के ९९ अतिचार कहे जाते है प्रस्तुत में उपकरणों के १० तथा तपस्या के १४ कुल २४ ज्यादा कहने से १२३ अतिचार श्रावक के दर्शाये हैं । जिसका ९९ अतिचारों से कोई विरोध नहीं है ।

मुँहपत्ति, ब्रह्मचारी आदि छ संख्या के बोल :-

[७८] छण्हं ठाणा कप्पंति समणोवासगाणं वा समणोवासियाणं वा सलिंगाणं मुहे मुहपत्तिं धारित्तए तंजहा- वंदणाए, धम्म-पडिमाआराहणाए, संवरे, पोसहवयं अणुपालणियाए, सामाइय आराहणाए, अपच्छिममारणंतिय संलेहणाए । छण्हं गिहत्थासमे बंभयारी पण्णत्ता तंजहा- पुमकुमार भूयेति वा, इत्थीकुमारीभूयाति वा, सत्थीसंतोसीपुरिसेति वा, सभत्तारसंतोसिणीइत्थीति वा, बंभयारीति वा, बंभयारिणीति वा, एवं छण्हं माहण माहणी वि णायव्वा । छण्हं

सावग साविगाणं वि धम्मायारा पण्णत्ता तंजहा- विणये णाणं दंसणं वयं तवं वीरियं ।छण्हं गणेसा उसभेणं पण्णत्ता तंजहा- सिद्धा अरिहा आयरिया उवज्झाया साहू गणहरा य ।छण्हं कम्मा गिहमज्झे उसभेणं पण्णत्ता तंजहा- असि मसि कसि सिप्पे सेवा वाणिज्जे ।

भावार्थ :- (१) छ समयों पर श्रमणोपासक श्रमणोपासिका को मुँह पर मुँहपत्ति बाँधना धारण करना कल्पता है- (१) वंदना करते समय (२) धर्म प्रवृत्ति माला जाप आदि करते समय, श्रमणों की सेवा में बैठते समय (३) संवर करते समय (४) पौषध करते समय (५) सामायिक करते समय (६) संथारा करते समय । **(२) गृहस्थाश्रम में ६ प्रकार के ब्रह्मचारी कहे गये हैं-** (१) अविवाहित कुमार (२) अविवाहित कुमारी (३) स्वदार संतोषी (४) स्वपति संतोषी (५) पूर्ण ब्रह्मचारी (६) पूर्ण ब्रह्मचारिणी । ये ब्रह्मचर्य से माहन अर्थात् ब्राह्मण ब्राह्मणी भी कहे जाते हैं । (३) श्रावक श्राविका के ६ धर्माचार कहे गये हैं- विनय, ज्ञान, दर्शन, व्रत, तप, वीर्य । (४) ऋषभ देव स्वामी ने ६ गणेश-गण(समूह) के ईश-धारक कहे हैं- अरिहंत, सिद्ध(आत्म रिद्धि की अपेक्षा) आचार्य, उपाध्याय, साधु (गुणों के भंडारी होने से) और सिंघाडा प्रमुख । (५) गृहस्थावस्था के ६ कर्म ऋषभ देव भगवान ने कहे हैं- असिकर्म, लेखनकर्म, खेतीकर्म, शिल्पकला, नौकरी और व्यापार ।

विवेचन :- प्रस्तुत सूत्रों में मुखवस्त्रिका मुख पर बांधने के भी ६ स्थानों का अच्छा खुलाशा किया है । अतः श्रावक को प्रत्येक धर्माचरण के समय मुँहपत्ति मुख पर बांधना ध्रुवाचार है ऐसा स्पष्ट समझना चाहिए, इसमें नित नियम, माला जाप, गुरु दर्शन, सामायिक, पौषध आदि का समावेश हो गया है । अपेक्षा या स्यादवाद का आश्रय लेकर गृहस्थ जीवन के ६ प्रकार के ब्रह्मचारी में भी अनेकों का समावेश कर उन्हें ब्रह्मचारी शब्द से सन्मानित किया है । श्रावक के चौथे व्रत में सामान्य श्रावक श्राविका के पांच-पांच और संपूर्ण व्रत लेने के बाद उनके दोनों के ५-५ अतिचार यों कुल २० अतिचार भी यहाँ मूल पाठ में सूचित किये गये हैं ।

नमस्कार मंत्र की विशालता एवं विद्या :-

[७९] पंचण्हं णमोकार मंतस्स भेया पण्णत्ता तंजहा- गोयमा! पंच परमेट्ठी मूल णमोकारे, ओं संभूयणमोकारे, आइ अक्खर णिप्फण्ण ओं संभूए णमोकारे, पंचईसरीणमोकारे, सिद्ध चक्कणमोकारे । से किं तं भंते ! पंचपरमेट्ठी मूल णमोकार मंते ? गोयमा! एवं भणेज्जा- णमो अरिहंताणं *जाव* णमो लोए सव्वसाहुणं । से किं तं भंते ! ओं संभूय णमोकार मंते ? गोयमा ! एवं भणेज्जा- णमो अरिहंताणं णमो असरीरीणं णमो आयरियाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहुणं(णमो लोए सव्व मुणियाणं) । से किं तं भंते ! ओम् संभूए आई अक्खर णिप्फण्णे णमोकार मंते ! गोयमा ! एवं वएज्जा- णमो अ अ आ उ सा णं । से केणट्ठेणं भंते ! ओं सभूए णमोक्कार मंते पण्णत्ते ? गोयमा ! एगाक्खरी वा अणेगाक्खरी वा विज्जा भवइ । तेणट्ठेणं अहवा लोगववहारं उवदंसणट्ठाए से ओं संभूए णमोकारे । से किं तं भंते ! पंचीस्सरी णमोकार मंते गोयमा! एवं वएज्जा- णमो ईस्सराणं, णमो ईस्सराणं, णमो ईस्सराणं, णमो ईस्सराणं णमो लोए सव्व ईस्सराणं । से कि तं भंते ! सिद्धचक्के णमोकार मंते ? गोयमा ! एवं वएज्जा- णमो अ सि आ उ सा णं ।

एए चेव सव्वे वि एगट्ठा णाणा घोसा णाणा सद्दा *जाव* अणाईया अपज्जवसिया साइया सपज्जवसिया वि । एएसिं सव्वेसिं वि णं एगट्ठसयं मज्झिमा गुणा पण्णत्ता । एगट्ठसय मज्जिम गुणाणं समरणट्ठाए मालाए अट्ठोत्तरसयं मणियाइं पण्णत्ता ।एवं णमोकार मंतस्स अणेगाइं सहस्साइं गुणणिप्फण्णाइं णामाइं पण्णत्ता । एवं णमोकार मंतस्स णामाइं पडुच्च, भेयाइं पडुच्च, पयाइं पडुच्च, पयगुणणामाइं पडुच्च । आइम मज्झिमाइं अक्खराइं गिण्हइत्ता अणेगाइं सहस्साइं मंत जंत तंताइं पण्णत्ता। एवं णमोकार मंतस्स अणेगा सहस्सा विज्जा वि पण्णत्ता ।

भावार्थ :- नमस्कार मंत्र के पाँच प्रकार कहे हैं- (१) पंच परमेष्ठी मूल नमस्कार (२) ओं संभूत नमस्कार (३) आदि अक्षर निष्पन्न ओं संभूत नमस्कार (४) पंच ईश्वरी नमस्कार (५) सिद्ध चक्र नमस्कार । हे भगवन् ! पंच परमेष्ठी मूल नमस्कार क्या है ? हे गौतम ! इसमें

मूल नमस्कार मंत्र पूरा वही है । यथा- णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं ।

हे भगवन् ! ओं संभूत नमस्कार क्या है ? हे गौतम ! वह इस प्रकार है- णमो अरिहंताणं, णमो असरीरीणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं-मुणीणं । हे भगवन् ! ओम् संभूत आदि अक्षर निष्पन्न नमस्कार मंत्र क्या है ? हे गौतम! वह इस प्रकार है- नमस्कार हो 'अअआउसाणं' । हे भगवन् ! ऐसा किस लिये कहा- हे गौतम ! इससे एकाक्षरी, अनेकाक्षरी विद्या समुत्पन्न होती है अथवा लोक में ओम शब्द बहु प्रचलित है और वह मंत्राक्षरो में प्रधान है । अतः उसके प्रति लोक व्यवहार होता है।

हे भगवन् ! पंच ईश्वरी नमस्कार मंत्र क्या है ? हे गौतम! (१) ईश्वरों को नमस्कार हो (२) ईश्वरों को नमस्कार हो (३) ईश्वरों को नमस्कार हो (४) ईश्वरों को नमस्कार हो (५) लोक के समस्त ईश्वरों को नमस्कार हो । हे भगवन् ! सिद्धचक्र नमस्कार क्या है ? हे गौतम ! वह इस प्रकार है- णमो असिआउसाणं । ये सभी एक अर्थ वाले, अनेक उच्चारण वाले अनेक शब्दरूप अनादि अपर्यवसित (प्रवाह रूप से) तथा सादि सांत भी(व्यक्ति की अपेक्षा) है । ये सभी १०८ मध्यम गुण वाले हैं । १०८ मध्यम गुण स्मरणार्थ माला में एक सो आठ मणके कहे गये हैं । इस प्रकार नमस्कार के अनेक हजारों गुण निष्पन्न नाम है । यों नमस्कार के नाम, भेद, पद, गुण नाम की अपेक्षा आदि, मध्य अक्षर ग्रहण करके अनेक हजारों मंत्र जंत्र तंत्र कहे जाते हैं । इसी प्रकार नमस्कार मंत्र से अनेक हजार विद्याएँ भी कही गई है ।

[८०] से कि तं भंते ! विज्जा पण्णत्ता ? गोयमा ! सा विज्जा दुविहा पण्णत्ता तंजहा- एगअक्खरिया वा अणेगाक्खरिया वा । से किं तं भंते ! एग अक्खरिया विज्जा ? गोयमा ! से जहाणामेणं "ई", विज्जा एग अक्खरीया, पंचईस्सरी णमोक्कार मंत णामेणं ओं संभूय णामस्स एगाक्खरीया "ओं" विज्जा वा एगाक्खरी । एवं भवंति एग अक्खरीया विज्जा अणेगाइं सहस्साइं । से किं तं भंते! अणेगाक्खरिया विज्जा? गोयमा ! अणेगाक्खरी विज्जा एवामेवं

पण्णत्ता तंजहा- "आ, उं" विज्जा वा; "अ, अ, आ, उ, सा" वा; "अ, ई, आ, उ, ऋ" वा; "णमो अरिहसिद्धायरियोवज्झायसाहूणं" वा; "णमो अ, इ, आ, उ, मा" वा; "णमो सुत्तदेवयाए भगवईए" वा; णमो "इ, अ, आ, उ, मु" वा; "णमो ई, ई, ई, ई, ई" वा; मणोकाल ठिति पमाणणामं विज्जा अहवा दुच्चेणं णामेणं इसि विज्जा- "अ, इ, उ, ऋ, लृ" वा "मुक्खमग्गं विणयमूलधम्मं इसीगुण पयासणी" विज्जा । "णमो विणयमूलं धम्मं णाण किरिया मुक्खमग्गं विज्जा च इसीगुणं विज्जा वा सव्व पावभक्खणी" णामा विज्जा पण्णत्ता तंजहा- "णाण दंसण चरित्त तवं जं खडियं जं विराहियं तस्स मिच्छामि दुक्कडं" वा । गणहरणामं विज्जा- "णेयं हेयं उपादेयं वा", "उप्पण्णेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा"। एवं साहुणामा विज्जा वि भाणियव्वा तंजहा- "णमो लोए सव्व समणाणं", एवं माहेण्णं वि णिग्गंथाणं वि साहूणं वि चेइयाणि वा खंतेति वा दंतेति वा तवस्सीति वा गुत्तेति वा मुत्तेति वा लूहेति वा इसीति वा कित्तीति वा विऊति वा मुणिति वा भिक्खुति वा तीरट्ठीति वा संजयेति वा णाणिति वा दंसणिति वा चरित्तिति वा पंडियेति वा । एवं हवंति अणेगक्खरिया विज्जा अणेग सहस्सा ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! विद्या के कितने प्रकार है ? हे गौतम! विद्या के दो प्रकार है- एक अक्षर वाली तथा अनेक अक्षर वाली। हे भगवन् ! एक अक्षर वाली विद्या क्या है ? हे गौतम ! वह इस प्रकार है- 'ई' विद्या एकाक्षरी है वह पंच ईश्वरी नवकार मंत्र नाम की है । 'ओं' यह भी एकाक्षरी विद्या है जो नवकार मंत्र से संभूत है । ऐसे विद्याएँ कई एकाक्षरी होती है । इस प्रकार हजारों एकाक्षरी विद्या है । हे भगवन् ! अनेकाक्षरी विद्या क्या है ? हे गौतम ! वह अनेकाक्षरी विद्या इस प्रकार है- (१) आ, ऊ, विद्या । अ, अ, आ, उ, सा । अ, इ, आ, उ, ऋ; अर्थात् नमस्कार हो अरिहंत सिद्ध आचार्य, उपाध्याय, साधु को । अ ई, आ, उ, मा (माहण) । नमस्कार हो श्रुत देवता भगवती विद्या को । नमस्कार हो ई, अ, आ, उ, मु, को। नमस्कार हो ई ई ई ई ई को । मन कालस्थिति प्रमाण नाम की विद्या, दूसरे नाम की ऋषि विद्या- अ ई उ ऋ लृ । मोक्ष प्रधान मार्ग

विनय मूल धर्म ऋषि गुण प्रकाशिनी विद्या । नमो विनय मूल धर्म ज्ञान क्रिया मोक्ष मार्ग विद्या । ऋषि गुण विद्या । सर्व पापभक्षिणी नामकी विद्या । ज्ञानदर्शन चारित्र तप में दोष, खंडना, विराधना की हो उसका मिच्छामि दुक्कडं । गणधर नाम की विद्या यथा- ज्ञेय, हेय, उपादेय; उत्पन्न विनाश ध्रौव्य । साधु नाम की विद्या यथा- नमस्कार हो सब श्रमणों को । नमस्कार हो सब माहन(अहिंसक) को । इसी प्रकार निग्रंथों को, साधुओं को, ज्ञानियों को, **[यहाँ चैत्य शब्द ज्ञानी श्रमणों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । मंदिरमार्गी लोगों को ये ध्यान रखना है कि हम चैत्य शब्द के ज्ञान और संयम अर्थ की खिल्ली उडाते हैं वह हमारा गलत और आगम अनुभव हीन व्यर्थ की होशियारी का कर्तव्य है ।]** क्षमावान को, दान्त को, तपस्वी को, गुप्त को, कषाय मुक्त को, रूक्ष को, ऋषि को, कीर्तिवान को, विद्वान को, मुनि को, भिक्षु को, तीरार्थी को, संयत को, ज्ञानी को, दर्शनी को, चारित्री को, पंडित को इस प्रकार अनेक अक्षर वाली विद्याएँ अनेक हजारों होती है ।

विवेचन :- इन सूत्रों में नमस्कार मंत्र के मूल नमस्कार मंत्र सहित पांच प्रकार दर्शाये हैं । जिसमें विद्या मंत्रों के अस्तित्व को भी स्वीकारने की उदारता दिखाई गई है । यों भी अपना जिनशासन अनेकांत सिद्धांत पूर्ण है । यहाँ एकांत का आग्रह कोषों दूर रहता है । अतः देवी देवताओं का, उनके मंत्र जंत्र तंत्र का, विद्याओं का यों प्रत्येक सत्य चीज का अपने अपने स्थान के योग्य महत्त्व ज्यादा कम होता है । ये महत्त्व व्यक्ति की दृष्टि चाहना लगन की अपेक्षा भी रखता है अर्थात् मोक्षार्थी आत्मार्थी साधकों के लिये ज्ञान दर्शन चारित्र तप का महत्त्व ही मुख्य होता है उनके लिये विद्या मंत्र तंत्र का कोई लक्ष महत्त्व नहीं होता है। परंतु संसार में प्राणी विधविध रुचि लक्ष्य वाले होते हैं उनके लिये मोक्ष साधना के सिवाय कई चीजों का महत्त्व जीवन में अलग-अलग होता है । अतः एकांत रूप से सब के लिये अस्वीकार्य कहना यह स्यादवाद अनेकांतवाद सिद्धांत से सही नहीं होता है । इस सिद्धांत में सभी प्रकार के लोगों के लिये उदारता होती है । तथापि मोक्ष मार्ग की आराधना में लगे आत्मार्थी

मुनियों को इन लौकिक मंत्र तंत्र विद्या में फुसलने की या मान संज्ञा में, कुतुहल में पडने की किंचित् भी आवश्यकता नहीं होती है । उनकी साधना में ये सब चीजें भले विघ्न रूप हैं, उनके लिये धन परिग्रह भी पूर्ण त्याज्य ही है तथापि संसार के समस्त लोगों के लिये वे चीजें पूर्ण त्याज्य और विघ्नरूप होना जरूरी नहीं है । अतः इस अनेकांत धर्म को मानस में रखते हुए अपने अपने स्टेज के अनुसार निर्णय उपयुक्त होते हैं । इसलिये आगमों में अस्तित्व स्वीकारने के लिये अनेक प्रकार के वर्णन उपलब्ध होते रहते हैं । यह तो श्रुत का भंडार है, चारों अनुयोग इसमें वर्णित होते हैं । अतः जैन आगम ज्ञेय तत्व सभी को स्वीकारता है किंतु उसे उपादेय रूप में मोक्ष साधना में मानना जरूरी नहीं होता ।प्रस्तुत में जो विद्याओं का अनुवाद दिया है वह भाव समझने के लिये हैं । परंतु विद्या के लिये तो मूल पाठ के मौलिक शब्द ही उच्चारण भूत समझने चाहिये ।

नमस्कार मंत्र स्मरण का फल :-

[८१] **एवं णमोक्कार मंतस्स अणेगाइं गुण णिप्फणाइं उवमाइं पण्णत्ता। महामंत णमोक्कारस्स सरमाणेणं भंते ! जीवे किं फलं लब्भइ? गोयमा! महियं महियं णिज्जराफलं लहइ वा जणेइ । अहवा णाण दंसण चरित्त तवं वा उक्किट्ठ भावेणं तित्थयरपयं लब्भइ लब्भित्ता संतेगइया भवसिद्धिया जीवा एगेणं, दुच्चेण, तच्चेणं, भवगहणेणं सिज्झिसंति बुज्झिसंति मुच्चिस्संति परिणिव्वाइस्संति सव्व दुक्खाणमंतं करिस्संति।**

भावार्थ :- इस प्रकार ये नमस्कार मंत्र के गुण निष्पन्न अनेक उपमाएँ हैं । हे भगवन् ! इस महामंत्र नमस्कार का स्मरण करने से जीव को क्या फल प्राप्त होता है ? हे गौतम ! महान निर्जरा फल की प्राप्ति होती है अथवा ज्ञान दर्शन चारित्र तप की उत्कृष्ट भावना से तीर्थंकर पद की प्राप्ति भी हो सकती है । इस तरह नमस्कार मंत्र स्मरण से कई जीव एक भव दो भव आदि करके सिद्ध बुद्ध मुक्त होते हैं, परम निर्वाण को प्राप्त करते, सब दुखों का अंत करते हैं ।

[८२] **इच्चेयं समुट्ठाण सुयस्स 'छ आवस्सय भाव उवदंसणं णामं' छट्ठो उद्देसो हियं सुहं खमं णिस्सेयसं अणुगामियं से सव्व जीवाणं भविस्सइ।**

भावार्थ :- इस प्रकार यह समुत्थान सूत्र का 'छ आवश्यक भाव' नामक छट्ठा उद्देशा हितकारी सुखकारी क्षेमकारी कल्याणकारी एवं परभवगामी सर्व जीवों के लिये है ।

विवेचन :- पूर्व सूत्रों में अपेक्षा से पाँच प्रकार के नमस्कार मंत्र कहे हैं फिर भी इस सूत्र में नमस्कार मंत्र का शुद्ध फल-कर्म निर्जरा, ज्ञान दर्शन चारित्र की प्राप्ति, आराधना और तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन तथा शीघ्र मोक्षगामी होना बताया है । इसमें पंच परमेष्ठी के प्रति अगाढ श्रद्धा भक्ति और उनके गुणों के प्रति महान अहोभाव एवं धर्म के प्रति प्रेम दर्शाया है । वही आत्मा की उन्नति कराने वाला है । इसलिये नमस्कार मंत्र शुद्ध भाव से आराधना करने योग्य है । इसमें भी लोकेषणा का त्याग वह और भी अधिक श्रेयस्कर है । क्योंकि आचारांग सूत्र में साधक के लिये लोकेषणा से पूर्ण मुक्त बनने की प्रबल प्रेरणा दी गई है ।

साधकों में सभी आदर्श साधक नहीं होते, फिर भी प्रत्येक को आदर्श साधक बनने की प्रेरणा शास्त्रकार की होती है तथापि आगम में सामान्य साधकों का तिरस्कार भी नहीं होता है । आगम में तो आदर्श की जगह आदर्श की प्रेरणा भी होती है । साथ ही अनुकंपा सौजन्यता को भी स्थान मिलता है । सही दृष्टि से देखने वाले को ऐसा अनेक आगम में मिल जाता है ।

आगम में कच्चे पानी में नाव तिराने वाले एवंतामुनि को भगवान ने एक शब्द भी उपालंभ रूप नहीं कहा । एक श्रावक के घर रोज मांसाहार होता था उसे भी अपने आगम में स्थान दिया, उसका भी तिरस्कार नहीं किया । एक श्रमण गौतम और आनंद के विवाद में गौतम गणधर प्रथम शिष्य का कोई पक्ष नहीं है । शिथिलाचारिणी, गुरुणी की आज्ञा नहीं मानने वाली साध्वियों को सत्यता छिपाकर नरक नहीं बताई किंतु एक भव करके मोक्ष जाने की फरसना स्पष्ट शब्दों में बता दी गई है । वहाँ भी धन्ना अणगार का तप, गजसुकमाल की क्षमा, जंबू और प्रभव का त्याग, श्रेणिक राणियों की विकट तपस्या, यों आगमों में अनेक आदर्श एवं बहुमुखी अनेकांत दृष्टि यत्र तत्र भरी है । देवाराधना कृष्ण की, अभय

कुमार की, सुलसा की देवभक्ति अंतगडसूत्र में है । लोकेषणा से साधकों को दूर रहना है ही तो भी लोक में होने वाली चीजों की अस्तित्वता को नकारना भी नहीं है । अस्ति तत्त्व को अस्ति कहना, नास्ति तत्त्व को नास्ति कहना और तटस्थता में सौम्यभाव से रहना तथा आचरण तो आदर्श मार्ग में बढने के रूप में रखना और आदर्श मार्ग में नहीं बढने वालों की अवहेलना भी नहीं करना, सबका अपने अपने स्थान स्टेज से महत्त्व होता है उसे रहने देना । उसमें अपने आग्रह को नहीं डालना चाहिए ।

इसी कारण आचारांग में जगह जगह और इस सूत्र के इस अध्याय में सूचित किया गया कि- उत्कृष्ट मध्यम कोई भी साधना करने वाला अपना अहं और दूसरों की अवहेलना न करे, शुद्ध भाव रखे और ऐसा बोले कि ये साधक अपने लक्ष्य शक्ति अनुसार करते हैं मैं अपनी शक्ति अनुसार करता हूँ दोनों साधक भगवान की आज्ञा पालना चाहते हैं । इस प्रकार साधकों को उसमें भी आदर्श साधक को अपनी उत्कृष्टता का गर्व नहीं आना चाहिये । अपने गर्व का अभाव रखने हेतु दूसरों के प्रति बहुत उदार सोच रखनी होती है । तिरस्कार भाव तो साधक में जन्मना ही नहीं चाहिये । प्रत्येक साधक के प्रति अनुकंपा और उदारभाव तो रहना ही चाहिये । यही जिन शासन के समभावों की सच्ची आराधना है ।

मूर्तिपूजक जैन समाज ३२ आगम के सिवाय ४५ एवं ८४ आगम भी मान्य करते हैं । जिसमें कितने ही शास्त्र नंदी सूत्र की लिस्ट में नहीं है, उन्हें भी आगम मानते है और कोई आगम का नाम नंदीसूत्र में है ऐसे उपलब्ध आगम को भी नहीं मानते है तथा पूर्वों के ज्ञान के संपूर्ण विच्छेद होने के बाद के आचार्यों द्वारा रचित ग्रन्थों को भी आगम मानते है । इसकी विशेष जानकारी के लिये इस पुस्तक में पढें- परिशिष्ट- ८ पृष्ठ- २६७

उद्देशक- ७ : काल भाव दर्शन

पाँचवें आरे में जिनशासन :-

[१] कइविहे णं भंते काले पण्णत्ते ? गोयमा ! दुविहे काले पण्णत्ते तंजहा- उस्सप्पिणी काले य अवसप्पिणी काले य । सेसं जहा जंबूदीवपण्णत्तीए। कई वाससहस्सेहिं भंते ! दूसम काले? गोयमा! एगवीसं वाससहस्साइं दुसमकाले पण्णत्ते । तुब्भे णं भंते ! सासणे कया हायमाणे भविस्सइ, कया उदए भविस्सइ, कया काले सासणे ठिओ भविस्सइ ? गोयमा ! एगवीसं वाससहस्सेहिं मम सासणे ठिओ भविस्सइ, दो वाससहस्सेहिं मम सासणे हायमाणे भविस्सइ ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! काल के कितने प्रकार है ? हे गौतम! काल दो प्रकार का है- उत्सर्पिणी काल और अवसर्पिणी काल । शेष वर्णन जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र अनुसार जानना । हे भगवन्! यह दुषम काल कितने वर्षों का है ? हे गौतम ! यह दुषमकाल-पाँचवाँ आरा २१००० वर्ष का है ।

हे भगवन् ! दुसमकाल-पाँचवें आरे में आपका शासन कब हायमान, कब उदयमान और कब अवस्थित होगा ? हे गौतम ! इस पाँचवें आरे के २१००० वर्ष तक शासन स्थित रहेगा, चलेगा । उसमें २००० वर्ष तक हायमान चलेगा ।

[२] से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ? गोयमा ! मम जम्म णक्खत्ते भासरासी णामे महग्गहे संकंते, तस्स पहावेहिं दोवाससहसेहिं साहुणं वा साहुणीणं वा जाव णो उदए पूया भाविस्सइ । गोयमा ! बहवे मुणी सच्छंदयारी भविस्संति, सयमेव संजमिया भविस्सइ । बहवे मुणी मम सलिंगं मुहे मुहपत्तिबंधणं वज्जइत्ता दव्वलिंगधारी समइएणं भविस्संति, णो णं से दव्व सलिंगधारी भविस्संति ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! ऐसा हायमान कहने का क्या कारण है ? हे गौतम ! मेरे निर्वाण के समय मेरे जन्म नक्षत्र पर भस्म ग्रह नामक महाग्रह आता है उसके प्रभाव से २००० वर्ष तक साधु-साध्वी का पूजा विकास नहीं होगा । हे गौतम ! ऐसे समय में बहुत से मुनि स्वच्छंदाचारी होंगे । फिर भी अपने आप को साधु मानेंगे, कहेंगे।

बहुत से मुनि मेरे स्वलिंग रूप मुँहपत्ति मुख पर बांधना छोडकर समय प्रभाव से द्रव्य लिंग धारी होंगे स्वलिंग में नहीं रहेंगे ।

[३] से केणट्ठेणं भंते ? गोयमा ! ते बहवे मुणि णामधारी, सेयं वत्थं रयहरणमादियं उवहिं सलिंगे मण्णिस्संति से तेणट्ठेणं। गोयमा! णो णं ते दव्वसलिंगधारी वि भविस्संति, गोयमा! केई मुणिणो मुहपत्ति बंधणं कालपमाणे करिस्संति, ते सव्वे मुणी अविहिमग्गेणं उवएसं करिस्संति, बहवे मुणिणो जिणपडिमं करावेस्संति, बहवे मुणिणो जिणमुत्तिणं पइट्ठं करावेस्संति, बहवे मुणी जिणपडिमाणं ठावया भविस्संति जाव सव्वेवि अविहिपंथे पडिस्संति, ते सव्वे पुव्ववुत्ताइं कज्जाइं सछंदेणं करिस्संति । गोयमा ! जया भासग्गहे णिवट्टिए समाणे तया पुणो पुणो मम सासणेणं उदए पूया भविस्संति, साहुणं वि साहुणीणं वि सावयाणं वि सावियाणं वि गोयमा ! उदए पूया भविस्संति ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! ऐसा क्यों कैसे होगा ? हे गौतम ! वे बहुत से मुनि नामधारी मात्र होंगे । वे स्वच्छ उज्जवल सफेद कपडे रजोहरण आदि को ही स्वलिंग मानेंगे । इसलिये वे द्रव्यलिंग धारी होंगे । अत: वे स्वलिंग में नही रहेंगे । हे गौतम ! कई मुनि समय-समय पर मुँहपत्ति बांधेंगे और वे सब अविधि मार्ग का उपदेश करेंगे और कई मुनि जिन पडिमा करायेंगे, कई जिनेश्वरों की मूर्ति की प्रतिष्ठा भी करावेंगे । बहुत से मुनि प्रतिमा की स्थापना करावेंगे। यों सब अविधि पंथ में पडेंगे । वे, ये सब कार्य अपनी इच्छा अनुसार करेंगे। हे गौतम ! जब भस्मग्रह (२००० वर्ष बाद) निवृत्त हो जायेगा तब मेरे शासन का पुन: उत्थान चालू होगा, शुद्ध साधुओं का पूजा सन्मान बढेगा और साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका भी शुद्ध बनेंगे, उनका भी उत्थान होगा ।

[४] से णं भंते ! अमुगे जीवे पगइभद्दे उज्जुभावे देवाणुप्पियाणं पडिमं करावेइ, पडिमाणं वा पइट्ठं करावेइ तेणं ते जीवे किं जणयइ? गोयमा ! से जीवे पावाइं कम्माइं जणयइ । से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ ? गोयमा ! से जीवे मिच्छाभाव पडिवन्ने अजीवं जीवभावं मण्णिस्सइ, छण्हं जीव णिकायाणं वहं करिस्सइ, मम मग्गस्स णं

हीलणं करावसिइ मम सासणेणं उदयं णो करिस्सइ, मए अत्थित्तं अत्थि वुत्तं, नत्थित्तं नत्थिं वुत्तं, से पगइभद्दे वि जीवे अत्थित्तं नत्थि वइस्सइ नत्थित्तं अत्थि वइस्सइ, से तेणट्ठेणं गोयमा! से जीवे पावाइं कम्माइं जणयइ वा मिच्छा मोहणिज्जं कम्मं निबंधइ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! अमुक जीव प्रकृति भद्र, सरल भावों से आप देवानुप्रिय की भक्ति से पडिमा करावेंगे, उसकी प्रतिष्ठा करावेंगे, तो उन जीवों को क्या लाभ प्राप्त होगा ? हे गौतम ! वे जीव पाप कर्मों का उपार्जन करेंगे ।

हे भगवन् ! ऐसा क्यों कहते हैं ? हे गौतम ! वे जीव मिथ्या भाव को प्राप्त कर अजीव को जीव मानेंगे । ६ काया के जीवों का वध करेंगे । मेरे शासन की हिलना करावेंगे, मेरे शासन का विकास नहीं होने देंगे । क्योंकि मैने अस्तिभाव को अस्ति रूप कहा है नास्तिभाव को नास्ति रूप कहा है किन्तु वे भद्रिक जीव अस्ति को नास्ति और नास्ति को अस्ति रूप कहेंगे अर्थात् हिंसा में अहिंसा कहेंगे, अधर्म को धर्म कहेंगे, इसलिये हे गौतम ! वे जीव पाप कर्मों का उपार्जन करेंगे और मिथ्या मोहनीय कर्म का बंध करेंगे ।

[५] दुसमे कालेणं भंते ! केवामेवं आयारभावे वट्टिस्सइ ? गोयमा! पुणो पुणो दुभिक्खा पडिस्संति, रायाणो बहवे भविस्संति, पयाणं अहियकारगा उस्सुक्का अइराया भविस्संति, वाहि रोगे मारी पुणो पुणो भविस्संति, *जाव* चउदिसिं पायकाले हाहाभूया भविस्संति, बहवे जणा मतपक्ख गहिया भासिणो भविस्संति । से णं भंते ! इदाणिं संजमे सुलभे ? हंता गोयमा ! इयाणिं संजमे सुलभे ।

भावार्थ :- दुषमाकाल(पाँचवें आरे) का कैसा आचार भाव वर्तन होगा ? हे गौतम ! बारंबार दुर्भिक्ष होंगे । राजा अनेक हो जायेंगे और वे अपने स्वार्थ में प्रजा का अहित करने वाले होंगे । अधिक कर(टेक्स) कई तरह के लेंगे । बारंबार मरी मारी रोग-आतंक बढेंगे । ***यावत्*** सब तरफ पाँचवें आरे के शुरु में या सुबह होते ही हाहाकार वर्तेगा और अनेक मनुष्य पक्षपाती असत्यभाषी होंगे ।

हे भगवन् ! तो अभी के समय में चौथे आरे में संयम-धर्म सुलभ है ? हाँ गौतम ! अभी तो संयम बहुत सहज और सुलभ है।

विवेचन :- प्रस्तुत सूत्रों में सूचित विषय कुछ भगवती सूत्र में कुछ कल्पसूत्र में कुछ महानिशीथ में वर्णित है ।

भगवती सूत्र में- भगवान का शासन २१००० वर्ष चलेगा । **कल्प सूत्र में-** भगवान के जन्म नक्षत्र पर भस्मग्रह का संयोग होने से उसके प्रभाव से भगवान का शासन अवनतोवनत चलेगा । २००० वर्ष बीतने के बाद पुनः शासन उन्नतोन्नत चलेगा । धर्म के सदनुष्ठान और संयमाचार का पुनः उत्थान होगा ।

महानिशीथ में- गौतम स्वामी के प्रश्न के उत्तर में भगवान फरमाते हैं कि कितने ही नामधारी मुनि हम तीर्थंकरों की मूर्ति और ऊँचे ऊँचे मंदिर बनाकर प्रतिष्ठा स्थापना करवाकर उन्मार्ग में पडेंगे। हे गौतम! उनके काम को भला भी नहीं जानना । **अन्य ग्रंथों में-** पाँचवें आरे में बारंबार दुर्भिक्ष पडेंगे । राजा लोग प्रजा के लिए अहितकारी होंगे। व्याधि रोग, मरी-मारी, रोग चाला बारंबार होंगे । **इस सूत्र में-** कितने ही नामधारी मुनि मेरे शासन में स्वलिंग रूप मुँहपत्ति बांधना छोडेंगे और समय समय पर बांधेंगे अर्थात् दिनभर में अमुक अमुक समय बांधेंगे । हे भगवन् ! प्रकृति भद्र सरल भाव के जीव आपकी भक्ति से मूर्ति बनवा कर स्थापना, प्रतिष्ठा करावेंगे उन्हें क्या फल होगा ? हे गौतम ! वे लोग अजीव को जीव मान कर और छकाय जीवों का वध करके, करवा के, असत् प्ररूपणा करके पाप कर्म बांधेंगे और मिथ्यात्व मोह का बंध करेंगे ।

इस प्रकार इन सूत्रों मे अनेक प्रकार के शास्त्रांशों का संकलन देकर निरूपण किया है । जिसका उद्देश्य जिनशासन में अहिंसा सिद्धांत की पुष्टि करके शुद्ध आराधना के भावों का दिग्दर्शन कराना है । अंत में यह कह दिया कि धर्म आराधन जितना चौथे आरे में सुलभ है उतना पाँचवें आरे में सुलभ नहीं रहेगा क्योंकि विशिष्ट ज्ञानी के अभाव में अनेक सच्चे झूठे मतमतांतरों में ही लोग फंसे रहेंगे उससे बाहर नहीं आयेंगे जिससे विराधना ही हाथ लगेगी । इस तरह भाव संयम दुर्लभ रहेगा ।

वास्तव में अशुद्ध क्रिया आचार का एवं शिथिलाचार का तथा शिथिल मानस का वर्तमान में बहुत प्रवाह है । कुछ उन्नताचार

पालने वाले देरावासी-स्थानकवासी आदि हैं भी तो वे अपने ही अहं में भरे रहते हैं, दूसरों का तिरस्कार खंडन-मंडन में, राग-द्वेष में, वैर-झेर में, तेरे-मेरे में पडे रहते हैं । वे स्वदोष दर्शन, सरलता, नम्रता आदि गुणों से दूर ही भागते हैं । इस तरह इस पाँचवें आरे के प्रवाह में सचमुच साधना आराधना बहुत दुष्कर हो रही है । फिर भी एकांत नास्ति कभी समझना नहीं, हताश होना नहीं, "भूमि पडी तलवार उठावे जिसके बाप की" इस कहावत से जो किसी भी पचडे में नहीं पडकर अपनी साधना में, गुण वृद्धि में, सरलता, नम्रता, निरहंकारता से ओतप्रोत रहेंगे, तपस्या में उत्साही रहेंगे, संयम के लक्ष्य में जागरूक रहेंगे, उन हलुकर्मी भवी प्राणियों के लिये, साधकों के लिये पाँचवा आरा तो वरदान रूप भी सिद्ध हो जायेगा । क्यों कि चौथे आरे में जहाँ हजारों लाखों वर्ष संयम तप की आराधना करना होता, वहाँ इस आरे में ५-२५-३०-३५ वर्ष की छोटी जिंदगी की सच्ची साधना आराधना भी मोक्ष का शार्टिफिकेट दे सकती है । कहा भी है- **"कुंडा माही रतन कहीजे भलो पाँचमो आरो "**। समझने वाले थोडे में समझेंगे और पांचवें आरे से भी ईमानदार साधक एक भवावशेषी बनेंगे, इसमें कोई संदेह नहीं है । परंतु जो सम्यग समझ पायेंगे और पुरूषार्थ करेंगे, ऐसा पुण्य जिनका सीधा होगा वे भव पार उतरेंगे । अपनी पकड का अहं, दुराग्रह रखकर जो सामान्य सी बात को भी समझना नहीं चाहेंगे, मेरा सो सच्चा पकड कर बैठे रहेंगे, भगवद् आज्ञा में, आगम आज्ञा में कुतर्क लगाकर अपनी खोटी सोच में डूबते रहेंगे, उनके कल्याण का कुछ नहीं कहा जा सकता । उनके लिये पाँचवाँ आरा दुष्कर आराधना वाला ही रहेगा ।

आज के मूर्तिपूजक इस प्रकार सफाई लगाते हैं कि मंदिर धर्म तो जिनशासन में प्रारंभ से ही था भस्मग्रह के प्रभाव से कुछ संत चैत्यवासी बन गये अर्थात् मंदिर में रहना और मंदिर का वहीवट रखना और अपने अधिकार के मंदिरों की प्रेरणा करना आदि प्रवृत्तियों में पड गये थे । २००० वर्ष के भस्मग्रह समाप्त होने पर उनका अस्तित्व समाप्त होने लगा । परंतु उनकी यह सफाई लगाना मात्र अपने अधःपतन की लीपापोती करना हैं क्योंकि मंदिरमूर्ति बनाने की

प्रेरणा और उसकी पूजा प्रवृत्तियें पृथ्वी, पानी, अग्नि, वनस्पति-फूल आदि की हिंसात्मक और सावद्य होने से साध्वोचित हो नहीं सकती। अतः इस मूलपाठ से सीधा स्पष्ट है कि भस्मग्रह के प्रभाव से यह सावद्य प्रेरक धर्म उन्मार्गगामी साधुओं ने चलाया और उन्ही में से कुछ साधु निरंकुश होकर चैत्यवासी बने ।२००० वर्ष के भस्मग्रह समाप्त होने पर एक छत्र राज्यवाले उन मूर्तिपूजक संतो में से कुछ संतों ने क्रियोद्धार करके अमूर्ति धर्म की और आरंभ समारंभ तथा आडंबर रहित धर्म की उन्नति करी एवं आगम अनुसारी शुद्ध संयम प्रवृत्तियों और मर्यादाओं का पुनरुत्थान किया । यही उपरोक्त सूत्रों का प्रासंगिक भावार्थ है ।

निर्ग्रंथों के कल्पाकल्प :-

[६] णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा अविहि मग्गे पविट्ठित्तए। कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा विहि मग्गे पविट्ठित्तए । कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा विहि मग्गेणं पुणो पुणो उवदंसित्तए । णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा सिज्जासंथारए पडिबद्धेणं विहरित्तए । कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा गामाणुगामं दूइज्जित्तए । कप्पइ णिग्गंथाणं णवकप्पविहारं करित्तए । णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा गिहत्थवयणं उच्चारित्तए । कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा सव्वपियवयणे उच्चारित्तए, से जहानामए- सावगेति वा पुण्णमंतेति वा भद्देति वा देवाणुपियेति वा उज्जूति वा पुरिसे पगइति वा मउएति वा ।

भावार्थ :- (१) निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी को अविधि मार्ग में प्रवेश करना नहीं कल्पता है (२) निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी को विधि मार्ग में चलना कल्पता है (३) निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी को विधि मार्ग का उपदेश बारंबार देना कल्पता है (४) निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी को किसी मकान में प्रतिबद्ध होकर रहना नहीं कल्पता है अथवा शय्या संथारा बांधकर विहार में रखना नहीं कल्पता है क्योंकि वह पडिहारा-वापिस लौटाने योग्य होता है(५) निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी को ग्रामोग्राम विहार करना कल्पता है । निर्ग्रंथों को नवकल्पी विहार कल्पता है (६) निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी को गृहस्थ जैसे सावद्य वचन बोलना नहीं कल्पता है अथवा गृहस्थों जैसी भाषा बोलना,

सांसारिक संबोधन तथा तुच्छ भाषा बोलना नहीं कल्पता है (७) निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी को सभी को प्रिय लगने वाले वचन बोलना कल्पता है यथा- हे श्रावक-श्रमणोपासक, पुण्यवान जीव, भाग्यशाली, देवानुप्रिय, सरल पुरुष, सरल प्रकृति वाले, मृदु-नम्र आदि गुणों से बोलना कल्पता है ।

[७] णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा मुहे मुहपत्तिं अबंधित्ता एयाइं कज्जाइं करित्तए तंजहा- चिट्ठित्तए वा णिसीइत्तए वा तुयट्टित्तए वा णिद्दाइत्तए वा पयलाइत्तए वा उच्चारं वा पासवणं वा खेलं वा सिंघाणं वा परिट्ठवित्तए वा धम्मकहा कहित्तए वा भंडोवगरणाइं पडिलेहइत्तए वा वत्थं वा पडिलेहइत्तए वा गामाणुगामं दूइज्जइत्तए वा सज्झायं वा करित्तए झाणं झाइत्तए वा काउसग्गं वा ठाणं ठाइत्तए वा । कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा मुहे मुहपतिं बंधइत्ता एयाइं कज्जाइं करेत्तए तंजहा- चिट्ठितए वा जाव काउसग्गं ठाणं ठावइत्तए । णो कप्पइ णिग्गंथीणं अचेलिया होइत्तए । कप्पइ णिग्गंथाणं अचेले होइत्तए । णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा अण्णलिंगे वा गिहीलिंगे वा कुलिंगे वा होइत्तए । कप्पइ णिग्गंथाणं वा णिग्गंथीणं वा सलिंगे सया वट्टित्तए । साहुवेसेणं चरमाणे णं भंते! जीवे किं जणयइ ? गोयमा! लाघवियं जणयइ, अहवा भावेणं णाणं *जाव* तवं जणयइ। एवामेवं भंते ! जे अतीता जे पडुपण्णा जे आगमिस्सा अरिहंता भगवंतो किं ते सया सलिंगे पवट्टिस्संति ? हंता गोयमा! सव्वे वि अरिहंता एवं सलिंगे पवट्टिस्संति ।

भावार्थ :- (१) निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी को मुँह पर मुँहपत्ति बांधे बिना निम्न कार्य करना नहीं कल्पता है- खडे रहना, बैठना, सोना, निद्रा लेना (क्यों कि यह साधु का मुख्य और स्वलिंग है वह कहीं भी कैसी भी अवस्था में हो तो मुँहपत्ति से उसकी पहिचान होती है कि गृहस्थ नहीं है, साधु है।) प्रचला लेना, मल-मूत्रादि परठना, परठने जाना, धर्मकथा करना, प्रतिलेखना करना, विहार करना, स्वाध्याय ध्यान कायोत्सर्ग करना । कुछ शब्द घोष पाठ रूप में होते हैं उनको यथायोग्य प्रसंगानुकूल समझ लेना चाहिये । (२) निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी को ये उक्त कार्य मुँहपत्ति बांधकर करने कल्पते हैं । (३) साध्वी

को अचेल होना नहीं कल्पता है । साधु को गुरु आज्ञा से विशेष साधना के लिये अचेल होना कल्पता है । (४) निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी को अन्य लिंग, गृहस्थ लिंग और कुलिंग वाला होना नहीं कल्पता है। (५) निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी को सदा स्वलिंग में रहना कल्पता है । (६) हे भगवन् ! साधुवेश के स्वलिंग में रहने से जीव को क्या लाभ होता है ? हे गौतम ! लघुता की प्राप्ति होती है, निरभिमानी भावों की उपलब्धि होती है (क्योंकि साधु की वेशभूषा सादगी की होती है । गृहस्थों जैसी विभूषा वृत्ति की नहीं होती है ।) भाव से ज्ञान ***यावत्*** तप की प्राप्ति होती है ।

हे भगवन् ! क्या इस तरह सभी तीर्थंकर अरिहंत भगवंत सदा तीनों काल में स्वलिंग में रहते हैं प्रवर्तन करते है ? हाँ गौतम! सभी अरिहंत भगवंत इस तरह स्वलिंग में रहते है और स्वलिंग का प्रवर्तन करते हैं ।

[८] णो कप्पई णिग्गंथाणं वा णिग्गंथीणं वा अप्पणो असज्झाए सज्झायं करित्तए । कप्पइ णिग्गंथीणं, णिग्गंथाणं णिस्साए असज्झाए सज्झायं करित्तए । कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गथीण वा बारस्संगं गणिपिडगं पुणो पुणो सुणित्तए वा अहिज्झित्तए वा । कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा संकिलेसं णं वोछिण्णं करित्तए ।

णो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा परोप्परं उवस्सए सह णिसीइत्तए वा चिट्ठित्तए वा *जाव* सज्झायं करित्तए वा णणत्थ गाढागाढेसु कारणेसु । कप्पइ णिग्गंथाण वा निग्गंथीण वा पाडि-एक्कए उवस्सए अंतो णिसीइत्तए वा चिट्ठित्तए वा तुयट्टित्तए वा *जाव* सझायं करित्तए वा । कप्पइ निगंथाण वा णिग्गंणीण वा भुज्जो भुज्जो विहीमग्गे पवट्टित्तए वा ।

भावार्थ :- (१) निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी को अपनी अस्वाध्याय में स्वाध्याय करना नहीं कल्पता है । निर्ग्रंथी को निर्ग्रंथ की नेश्राय में कालिकसूत्र की अस्वाध्याय में स्वाध्याय करना कल्पता है (२) निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी को १२ अंग सूत्र बारंबार स्वाध्याय करना, सुनना, अध्ययन करना कल्पता है (३) निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी को उत्पन्न क्लेश को खतम करना कल्पता है, रखना नहीं कल्पता है (४) निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी को परस्पर के उपाश्रय

में खडे रहना, बैठना आदि कोई भी क्रियाएँ करना नहीं कल्पता है, विशेष अनिवार्य कारण स्थिति में कल्पता है (५) उसी तरह परस्पर उपाश्रय में साथ में(पास-पास) बैठना आदि नहीं कल्पता है (६) निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी को अपने-अपने उपाश्रय में ये उपरोक्त सभी कार्य करने कल्पते हैं (७) निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी को उन्नति मार्ग में (विधिमार्ग में) बारंबार प्रवेश करना आगे बढ़ना कल्पता है अर्थात् अवनति मार्ग में, शिथिल आचार में जाना नहीं कल्पता है ।

विवेचन :- इन सूत्रों में साधु-साध्वी के कल्प्याकल्प्य विधानों का निरूपण किया गया है जो छेद सूत्रों में एवं आचारांगादि में भी कहे गये हैं । खास कारण बिना साधु साध्वी को परस्पर के उपाश्रय में आवागमन कम रखने का होता है । भाषा संबंधी विवेक भी इन सूत्रों में दर्शाया है । मुखवस्त्रिका स्वलिंग रूप है उसे अप्रमत्तपने बांधने की विशेष प्रेरणा की गई है । **अंत में यह भी कहा गया है कि अरिहंत भगवंत भी तीनों काल में सदा स्वलिंग अर्थात् मुँह पर मुखवस्त्रिका धारण करते हैं । यह विधान इस सूत्र में स्पष्ट मिलता है अन्यत्र इस तत्व का लोप सा हो गया है ।** इसलिये साधारण धारणा बन गई है कि तीर्थंकर मुँहपत्ति नहीं रखते । फिर भी सभी के मन में एक प्रश्न असमाधित रहता है कि वे खुले मुँह कैसे बोलेंगे ? और दिनभर हाथ ऊँचा नीचा मुँह के आगे कैसे करेंगे? क्योंकि भगवान ने अंतिम समय १६ प्रहर देशना दी थी । ऐसी उलझन का सहज समाधान इस सूत्र में मिलता है जो मूल पाठ से स्पष्ट है । इसके विरूद्ध में कहीं भी ऐसा विधान स्पष्ट नहीं है कि तीर्थंकर मुँहपत्ति रजोहरण नहीं रखते और यहाँ रखने का विधान मूलपाठ में स्पष्ट है जिसका किसी भी शास्त्र से विरोध नहीं आता है एवं सीधी सम्मति भी नहीं मिलती है किंतु अर्थापत्ति से रखना उपयुक्त है । यह सूत्र यों भी महत्व का है जो १३ वर्ष की दीक्षा के क्रम में अध्ययन करने का भद्रबाहु स्वामी कृत व्यवहार सूत्र में कहा है और इस सूत्र के विषय में पाक्षिक सूत्र की टीका में बताया है कि इस सूत्र का एक साथ दो तीन बार स्वाध्याय अमुक उद्देश्य विधि से करने पर किसी गाँव आदि में अस्थिरता, भागा दौड, हो

हल्ला, अशांति मच गई हो तो शांति हो जाती है । वह टीका भी बहुत प्राचीन है करीब एक हजार वर्ष प्राचीन है । जो कि वि.सं. ११७६ में यशोदेवसूरि कृत है। यह परम्परा प्राप्त के आधार वाला कथन है अर्थात् भाष्यगाथा- ४६६३-४६६४ से भी उक्त चमत्कृत कथन की सिद्धि होती है ।

पाँच ईश्वर पंचपरमेष्ठी :-

[९] परमट्ठेण पंचविहा ईस्सरा पण्णत्ता । से किं तं भंते ! पंचविहा ईस्सरा ? गोयमा ! पढमे इस्सरे *जाव* पंचमे इस्सरे । कई गुणिड्ढिए एसठाणे ईसरा पण्णत्ता ? गोयमा ! अत्तगुणिड्ढिए एसठाणे ईसरा पण्णत्ता ।

से किं तं भंते ! पढमस्स णं ईसरस्स आयगुणिड्ढि ? गोयमा! पढमस्सणं ईसरस्स णं तिविहा य गुणिड्ढि पण्णत्ता तंजहा- जहण्णं मज्झिमं उक्कोसं । से किं तं भंते ! पढमस्स णं ईसरस्स अत्तगुणिड्ढि जहण्णपये ? गोयमा ! दुविहा गुणा पण्णत्ता तंजहा- णाणे चेव किरिया चेव । एवं मज्झिमपये सत्तावीसा । उक्कोसा तिविहा पण्णत्ता तं जहा- संक्खिज्जा, असंक्खिज्जा अणंता । से तं आयगुणिड्ढी ।

से किं तं भंते ! दुच्चस्स णं ईसरस्स आयगुणिड्ढी पण्णत्ता? गोयमा ! दुच्चस्सणं ईसरस्स तिविहा आयगुणिड्ढी पण्णत्ता- जहण्णं मज्झिमं उक्कोसं । से किं तं भंते! दुच्चस्स णं ईसरस्स जहण्णा आय-गुणिड्ढी ? गोयमा ! दुच्च्वस्स पंच विहा जहण्णा आयगुणिड्ढी पण्णत्ता तंजहा- णाण-दंसण-चरित्त-तव-वीरियवुड्ढी। से तं जहण्णा अत्तगुणिड्ढी। से किं तं भंते! मज्झिमा आयगुणिड्ढी ? गोयमा ! मज्झिमा पणवीसा, अवसेसं जहा पुव्वुत्तं । से तं अत्तगुणिड्ढी ।

से किं तं भंते ! तच्चस्स णं ईसरस्स आयगुणिड्ढी पण्णत्ता? गोयमा ! तिविहा अत्तगुणिड्ढी पण्णत्ता तंजहा- जहण्णं मज्झिमं उक्कोसं । से किं तं भंते ! तच्चस्स णं जहण्णं आयगुणिड्ढी ? गोयमा! तच्चस्स णं पंचविहा जहण्णा आयगुणिड्ढी पण्णत्ता तंजहा- णाणं दंसणं चरित्तं तवं संपया, एवं एसठाणे मज्झिमा छत्तीसा, उक्कोसा पुव्ववुत्तं। से किं तं भंते ! चउत्थस्स णं ईसरस्स जहण्णा आय गुणिड्ढी पण्णत्ता? गोयमा ! अणेगविहा पण्णत्ता तंजहा- अणंत णाणं *जाव* अइसेसा ।

से तं जहण्णा आयगुणिड्ढी । से किं तं भंते! चउत्थस्स णं ईसरस्स मज्झिमा आयगुणिड्ढी? गोयमा! चउत्थस्स णं मज्झिमा आयगुणिड्ढी दुवालसविहा पण्णत्ता तंजहा- अणंत णाणं जाव सेसाइं। से किं तं भंते! चउत्थस्स णं ईसरस्स उक्कोसा आयगुणिड्ढी? गोयमा ! चउत्थस्स णं उक्कोसा आयगुणिड्ढी तिविहा पण्णत्ता तंजहा- संखिज्जा, असंखिज्जा, अणंता । अहवा एसठाणे गोयमा ! एवं निच्छयणयेणं चत्तारि अत्तगुणिड्ढी पण्णत्ता तंजहा- अणंत णाणं, अणंत दंसणं, वीयरागत्तं, अणंत वीरियं वा सत्ती वा ।

से किं तं भंते ! पंचमस्स णं ईसरस्स आयगुणिड्ढी पण्णत्ता? गोयमा ! तिविहा आयगुणिड्ढी पण्णत्ता तंजहा- जहण्णं मज्झिमं उक्कोसं । से किं तं भंते ! पंचमस्स ईसरस्सणं जहण्णपये ? गोयमा! पंचमस्स जहण्णपये अणंत णाणं अणंत दंसणं, लक्खणं सत्ती । से किं तं भंते ! मज्झिमपये ? गोयमा ! मज्झिमपये अट्ठगुणा- अणंत णाणं *जाव* अणंत सत्ती अवसेसं जहा पुव्वुत्तं। से तं पंचमे ।

एयाणं ईसराणं कहं णामाइं जाणेमि ? गोयमा ! एयाइं णामाइं अणुकम्मेणं- साहु उवज्झाया आयरिया अरिहंता सिद्धा पंचमा। से तं अत्तगुणिड्ढी ।

भावार्थ :- परमार्थ से पाँच प्रकार के ईश्वर कहे गये है । हे भगवन् ! वे पाँच ईश्वर कौन से है ? हे गौतम ! प्रथम ईश्वर (साधु) ***यावत्*** पाँचवें ईश्वर सिद्ध । हे भगवन् ! यहाँ ये ईश्वर किस रिद्धि से कहे गये हैं ? हे गौतम ! आत्मगुण रिद्धि की अपेक्षा से पाँचों ईश्वर कहे गये हैं ? हे भगवन् ! प्रथम ईश्वर(साधु भगवंत) की आत्मगुण रिद्धि क्या है ? हे गौतम ! वह तीन प्रकार की है- जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट । हे भगवन् ! प्रथम ईश्वर की जघन्य आत्मगुण रिद्धि क्या है ? हे गौतम ! वह दो प्रकार की है- ज्ञान और क्रिया। इस तरह मध्यम पद में २७ गुण है और उत्कृष्ट में सख्याता, असंख्याता, अनंता । ये पूर्ववत् समझना । संख्याता में हजारों का समावेश होने से १८००० शीलांग गुण समझना, शेष दो अकथनीय है ।

हे भगवन ! दूसरे ईश्वर(उपाध्याय) की आत्मगुण रिद्धि क्या है ? हे गौतम वह तीन प्रकार की है- जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट । हे

भगवन् ! **दूसरे** ईश्वर की जघन्य गुण रिद्धि क्या है ? हे गौतम! वह पाँच प्रकार की है- ज्ञान दर्शन, चारित्र तप, वीर्य वृद्धि । हे भगवन्! दूसरे ईश्वर की मध्यम आत्मगुण रिद्धि क्या है ? हे गौतम! मध्यम पच्चीस गुण वाली ***यावत्*** पूर्ववत् अनंत तक कहना । हे भगवन् ! **तीसरे** ईश्वर की आत्मगुण रिद्धि क्या है ? हे गौतम! वह तीन प्रकार की है- जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट । हे भगवन्! तीसरे ईश्वर की जघन्य आत्मगुण रिद्धि क्या है ? हे गौतम ! जघन्य में पाँच- ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और आठ संपदा । मध्यम पदे ३६ गुण और उत्कृष्ट पदे तीन पूर्ववत् । हे भगवन् ! **चौथे** ईश्वर अरिहंत भगवान की आत्मरिद्धि क्या है ? हे गौतम ! वह तीन प्रकार की है- जघन्य में- ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और अतिशय । मध्यम में १२ और उत्कृष्ट पूर्ववत् तीन प्रकार । विशेष में यहाँ निश्चयनय से ४ आत्मगुण रिद्धि है- अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, वीतरागता और अनंत वीर्य शक्ति । हे भगवन् ! **पाँचवें** ईश्वर सिद्ध भगवान की आत्मगुण रिद्धि क्या है ? हे गौतम! वह तीन प्रकार की है- जघन्य में- अनंत ज्ञान और अनंत दर्शन रूप लक्षण शक्ति है । मध्यम में आठ गुण है और उत्कृट पूर्ववत् ।

विवेचन :- प्रस्तुत सूत्रों में पाँच परमेष्ठी को ईश्वर परमेश्वर संज्ञा से सूचित किया गया है और उनके कुछ गुणों का अपेक्षा से जघन्य मध्यम, उत्कृष्ट रूप में कथन किया गया है तथा उसे उनकी आत्मगुण रिद्धि रूप में दर्शाया है । वास्तव में ज्ञानियों की, साधकों की रिद्धि उनके आत्मगुण ही होते हैं और रिद्धिवान को ही ईश्वर-ऐश्वर्य संपन्न कहा जाता है । पाँच ईश्वर कथन का क्रम यहाँ विलक्षण है, वह है- छोटे से बडे तक का क्रम । सबसे छोटे साधु और सबसे बडे आत्मगुणों में सिद्ध भगवान । इस सूत्र का यहाँ का यह क्रम अपनी विशेषता युक्त और अन्यत्र अनुक्त नवीनतम है, जो समझ में भी आने लायक है । आचार्य के ३६ गुण और उपाध्याय के २५ गुण भी छट्ठे उद्देशक में कहे गये हैं वे समझना ।

विविध विषय :-

[१०] पंचविहे णाणे अत्थि । पंचविहे दंसणे अत्थि । पंचविहे चरित्ते अत्थि । दुवालसविहे तवे अत्थि । सव्वे दव्वा सिय सासया सिय

असासया, दव्वेण सासया पज्जवेण असासया। मुत्ताणमपुणरावित्ती। मुत्तजीवा णो कम्माण बंधणं करेंति । णो भावो अभावो भवइ, णो अभावो भावो भवइ ।

भावार्थ :- पाँच प्रकार के ज्ञान है । पाँच प्रकार के दर्शन है। पाँच प्रकार के चारित्र और १२ प्रकार के तप है । सभी द्रव्य कदाचित् शास्वत है कदाचित् अशास्वत है । द्रव्य आश्री शास्वत है पर्याय आश्री अशास्वत है । मुक्त जीवों का संसार में पुनरागमन नहीं होता है, उनके कर्म बंध भी नहीं है । आत्मा अनात्मा नहीं होता है और अनात्मा आत्मा बनते नहीं है ।

[११] णो ईसरेण लोए णिम्मिए । दव्वट्ठयाए लोए सासए, वण्णपज्जवेहिं, गंधपज्जवेहिं, रसपज्जवेहिं, फासपज्जवेहिं लोए असासए। सुयणाणे चउद्दसविहे अत्थि । दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ सव्व कज्जाइं भवंति । कारणओ कज्जं भवंति- से जहानामए पडस्स कारणं तंतु णो तंतुणो कारणं पडं। मिउपिंडो कारणं घडस्स णो घडो मिउ पिंडस्स कारणं।

भावार्थ :- लोक का निर्माण कर्ता ईश्वर नहीं है । द्रव्य से लोक शास्वत है पर्याय से अर्थात् वर्ण गंध रस स्पर्श से लोक अशास्वत है। श्रुत ज्ञान के १४ प्रकार है जो नंदीसूत्र में कहे हैं। द्रव्य क्षेत्र काल भाव से सब कार्य होते हैं । कारण से कार्य होता है जैसे-कपडे में कारण है तंतु-तार । किंतु तंतु का कारण कपडा नहीं है । घडे का कारण मिट्टी है परंतु मिट्टी के पिंड का कारण घडा नहीं है ।

[१२] कइ विहाणं भंते ! णिक्खेवा पण्णत्ता ? गोयमा ! अणेगविहा पण्णत्ता तंजहा- नामनिक्खेवा जाव भाव निक्खेवा, णाम निक्खेवस्स णं भंते ! किं भावे ? गोयमा ! णामं जीवस्स वा अजीवस्स वा, जीवाणं वा, अजीवाणं वा तदुभयस्स वा तदुभयाणं वा णामं कज्जेति, सयं सयं ठाणे सच्चं भवति । से तं णाम णिक्खेवो । से किं तं भंते! ठवणा णिक्खेवा ? गोयमा! जहा णाम णिक्खेवा तहामेव सव्वेवि णिक्खेवा णायव्वा । णणत्थ गोयमा ! जीवाणं जीवठवणा सच्चा भवंति, अजीवाणं अजीवठवणा सच्चा भवति । से तं ठवणाणिक्खेवा।

भावार्थ :- हे भगवन् ! निक्षेप के कितने प्रकार है ? हे गौतम ! अनेक

प्रकार है- नाम निक्षेप **यावत्** भावनिक्षेप । हे भगवन् ! नाम निक्षेप का क्या स्वरूप है ? हे गौतम ! जीव के अजीव के और तदुभय के नाम अपने अपने स्थान में सत्य है । हे भगवन् ! स्थापना निक्षेप क्या है ? हे गौतम ! नाम के समान ही स्थापना निक्षेप है । यों सभी निक्षेप और उनका तात्पर्य तथा रहस्यार्थ अनुयोगद्वार सूत्र के अनुसार है । विशेष में जीवों की जीव स्थापना सत्य होती है अजीवों की अजीव स्थापना सत्य होती है ।विस्तार के लिये परिशिष्ट १४में देखें ।

[१३] चउविहे पमाणे पण्णत्ते तंजहा-पच्चक्खे, अणुमाणे, उवमा, आगमे । सेसं जहा अणुओगदारे ।

भावार्थ :- प्रमाण चार कहे गये है- प्रत्यक्ष प्रमाण, अनुमान प्रमाण, उपमा प्रमाण और आगम प्रमाण । विस्तार अनुयोग द्वार से जानना।

[१४] चउविहे हेऊ पण्णत्ता तंजहा- अत्थित्तं अत्थि सो हेऊ, अत्थित्तं णत्थि सो हेऊ, णत्थित्तं अत्थि सो हेऊ, णत्थित्तं णत्थि सो हेऊ ।

भावार्थ :- चार प्रकार के हेतु कहे गये है- (१) अस्तित्वास्तित्व हेतु यथा- धुँआ है वहाँ अग्नि है (२) अस्तित्व में नास्तित्व हेतु यथा - अग्नि है वहाँ ठंडी नहीं (३) नास्तित्व में अस्ति हेतु- अग्नि शीत नहीं किंतु शीतकाल में ठंडी होती है (४) नास्तित्व में नास्ति, यथा- अग्नि मे धुँवा नहीं है और धुँवा नहीं होने से काष्ठ आदि भी नहीं है ।

[१५] जे आया से विण्णाया जे विण्णाया से आया । अभावाणं अभावो- से जहा णामए ससविसाणे तहा खर विसाणे । भावाणं भावो- से जहाणामए एगे अरिहंते एवामेवं सव्वे वि अरिहंता ।

भावार्थ :- जो आत्मा है वही विज्ञाता है, जो विज्ञाता है वही आत्मा है, यह सद्भाव में सद्भाव है । असद्भाव में अभाव, यथा- जैसे शियाल के सिंग, वैसे गधे के सिंग । भाव में भाव जैसे एक अरिहंत वैसे सभी अरिहंत ।

[१६] से किं तं भंते ! मुत्तिणं मग्गे ? गोयमा ! इह खलु मुत्तिमग्गे पढमं जीवा णाणं जणयइ तओ पच्छा जीवा आसवदाराइं पिहेइ पिहित्ता झाणं झियायइ, से णं मुत्तिमग्गे पण्णत्ते । से किं तं भंते ! णाणिणो पवुच्चइ ? गोयमा ! जे जीवा णाणे भावे वट्टंति ते जीवा

णाणिणो वुच्चंति । सेसं जहा भगवईए । से किं तं भंते ! आसवे ? गोयमा! एस जहा पण्हावागरणे वुत्तं । से किं तं भंते ! णेरइए पवुच्चइ ? गोयमा ! गइं पडुच्च, पावकम्माइं पडुच्च णामकम्मे पडुच्च ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! मुक्ति मार्ग क्या है ? हे गौतम ! इस जिनशासन में पहले जीव, ज्ञान प्राप्त करता हैं, बाद में जीव आश्रवद्वारों को रोकता है, फिर ध्यान ध्याता है, यही मुक्तिमार्ग कहा गया है अर्थात् मोक्ष प्राप्ति का क्रम है । हे भगवन् ! ज्ञानी कौन है ? हे गौतम ! जो जीव ज्ञान भाव में वर्तते हैं वे जीव ज्ञानी कहे जाते हैं । शेष जैसा विस्तार भगवती सूत्र के शतक-८, उद्देशक-२ अनुसार जानना ।

हे भगवन् ! आश्रव क्या है ? हे गौतम ! आश्रव का वर्णन प्रश्न व्याकरण सूत्र से जानना । हे भगवन् ! नैरयिक किसे कहते है? जो नरकगति में वर्तते हैं वे जीव गति अपेक्षा नैरयिक हैं । पापकर्म आश्रयी भी नैरयिक हैं और नाम कर्म की अपेक्षा भी नैरयिक है ।

विवेचन :- प्रस्तुत सूत्रों में अनेक सिद्धांतों का कथन है । अस्तिभाव आदि का अच्छा स्पष्टीकरण है । इन सूत्रों में मुक्ति मार्ग और ज्ञानी का कथन भी संक्षिप्त में अच्छा दिया है कि मोक्षाराधना के लिये जीवों को पहले ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, फिर आश्रवद्वारों को रोकना चाहिये और फिर तप-ध्यान से कर्म क्षय कर मुक्ति प्राप्त की जा सकती है । जो ज्ञान भाव में वर्ते, रमण करे वही वास्तव में ज्ञानी है । इस तरह इन दोनों तत्वों में सच्चे ज्ञानी और सच्ची मोक्ष आराधना का स्वरूप दर्शाया है जो महत्वशील है ।

आत्मार्थी अनात्मार्थी के लाभ-हानि :-

[१७] गोयमा ! छट्ठाणाइं अणत्तवओ अहियाए, असुभाए, अखेमाए, अणिस्सेसाए, अणाणुगामियत्ताए भवंति तंजहा- परियाए परियाले सुये तवे लाभे पूयासक्कारे । छट्ठाणाइं अत्तवओ हियाए जाव अणुगामियत्ताए भवंति तंजहा- परियाए *जाव* पूयासक्कारे ।

भावार्थ :- हे गौतम ! छ स्थान अनात्मवान के लिये अहितकर,

अशुभ अक्षेमकर अकल्याणकर और अननुगामी होते है, यथा- दीक्षा पर्याय, परिवार, श्रुत ज्ञान, तप, लाभ, और पूजा सत्कार । ये ही छ स्थान आत्मार्थी के लिये हितकर, शुभ, क्षेम, कल्याणकर और परभव में सुखरूप होते है । यथा- दीक्षापर्याय *यावत्* पूजा सत्कार ।

[१८] गोयमा ! छट्ठाणाइं आया उम्मायं पाउणेज्जा तंजहा- अरिहंताणं अवण्णवायं वदमाणे, अरिहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स अवण्णवायं वदमाणे, आयरिय उवज्झायाणं अवण्णवायं वदमाणे, चाउवण्णस्स संघस्स णं अवण्णवायं वदमाणे, जक्खावेसेण चेव मोहणिजस्स चेव कम्मस्स उदएणं ।

भावार्थ :- छ कारणों से आत्मा उन्माद को प्राप्त करती है यथा- (१) अरिहंतों का अवर्णवाद करने से (२) अरिहंत प्रज्ञप्त धर्म का अवर्णवाद करने से (३) आचार्य उपाध्याय का अवर्णवाद करने से (४) चतुर्विध संघ का अवर्णवाद करने से (५) यक्ष आदि के प्रवेश से (६) मोहनीय कर्म के उदय से ।

[१९] छव्विहे पमाए पण्णत्ते तंजहा- मज्जपमाए निद्दपमाए विसयपमाए कसायपमाए जूयपमाए पडिलेहणापमाए ।

भावार्थ :- छ प्रकार के प्रमाद कहे हैं- (१) मद्य प्रमाद, निद्रा, विषय, कषाय, द्यूत और प्रतिलेखना सबंधी प्रमाद ।

[२०] लोगस्स हिआए सुहाए उसभारिहेणं सयं सयं कम्मुणा चउवण्णा पण्णत्ता तंजहा- बंभणो खत्तिओ वइसो सुद्दो । एवामेवं चउ आस्समा पण्णत्ता तंजहा- बंभचेरवासे आसमे गिहित्थासमे वाणपत्थासमे संण्णासासमे ।

भावार्थ :- लोक में हित के लिये, सुख के लिये, ऋषभ देव भगवान ने अपने कर्म अनुसार चार वर्ण कहे हैं- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र । इसी तरह चार आश्रम कहे है- ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और सन्यासाश्रम ।

[२१] तहारूवाणं समणाणं माहणाणं णिच्चमेव करणिज्जे छ कम्मा पण्णत्ता तंजहा- विज्जं दाणं जण्णं, एए तिण्णी सयं करेइ अण्णं वा करावेइ । एवामेवं भंते ! वुड्ढसावगाणं वि छ कम्मा भवंति ? हंता गोयमा ! णणत्थ सावज्जसकिरिये *जाव* भूयोवघाइए एवं विण्णाए-

यव्वा । उसभारिहेणं उवणयण सक्कारम्मि वट्टमाणस्स पुरुसस्स एवं पहाण चिण्हं वुत्तं ।

भावार्थ :- तथारूप के साधु-माहन को नित्य करणीय ६ कार्य कहे गये हैं- विद्या अध्ययन, ज्ञानदान और भावयज्ञ अर्थात् कर्मो को क्षय करना नष्ट करना । ये तीन कार्य खुद करना और दूसरे से करवाना दूसरों को सिखाना, प्रेरणा देना । हे भगवन् ! इसी तरह आदर्श श्रावकों के भी यही ६ कार्य कहे गये है ? हाँ गौतम ! यही ६ कार्य आदर्श श्रावकों के कहे गये है विशेष यह कि वो संसार में होने वाली सावद्य प्रवृति को पापकारी जानते हैं और एक दिन उसे छोडने का भाव रखते हैं । उपनयन संस्कार में रहते हुए अर्थात् गृहस्थ धर्म में रहते हुए धार्मिक पुरुष का यह प्रधान चिन्ह ऋषभ देव भगवान ने बताया है कि श्रावक पाप को पाप जाने और एक दिन छोडने का संकल्प रखे, यही उसके श्रावकपन की सच्ची पहिचान है ।

[२२] से किं तं भंते ! जीवस्स लक्खणं ? गोयमा ! णाण-दंसण-सुह-दुहे जहा पुव्वुत्तं जीवस्स लक्खणं । से किं तं भंते ! जीवदव्वा अणंता ? हंता गोयमा ! जीवदव्वा अणंता पण्णत्ता । सेवं भंते ! सेवं भंते ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! जीव का क्या लक्षण है ? हे गौतम! ज्ञान दर्शन, सुख, दुख जैसे पूर्व में कहे वे जानना । हे भगवन् ! जीव द्रव्य क्या अनंत है ? हाँ गौतम ! जीव अनंत है । हे भगवन् ! आपके वचन सत्य एवं प्रमाणभूत है और मेरे समझ में आ गये हैं ।

[२३] इच्चेयं समुट्ठाणसुयस्स "कालभावदंसणणामओ" सत्तमो उद्देसो हियं सुहं खमं णिस्सेयसं आणुगामियं से सव्व जीवाणं भविस्सइ।

भावार्थ :- इस प्रकार समुत्थान सूत्र का "यह काल भाव दर्शन" नाम का सातवाँ उद्देशक हितकारी सुखकारी क्षेमकारी कल्याणकारी एवं सभी जीवों के लिये पर भव में सुख रूप अनुगामी होता हैं ।

विवेचन :- प्रस्तुत सूत्रों में अनेक विषय कह दिये गये है । आत्मार्थी- जिसका आत्म लक्ष्य पूर्ण जागृत है, संयम लक्ष्य, मोक्ष लक्ष्य, कर्म क्षय लक्ष्य सुसुप्त नहीं है । आत्मा के हितकारी आचरणों का प्रमुख लक्ष्य होता है, मन के पीछे या इच्छाओं के पीछे अपनी शान के पीछे वह आत्मगुणों की उपेक्षा नहीं करता है; कषाय विजय,

इन्द्रिय निग्रह में ही अपना शुभ समझता है । अहं भाव के पोषण के प्रवाह में नहीं बहता है; उसे यहाँ आत्मार्थी सूचित किया है । संक्षेप में आत्मा के प्रयोजन से प्रवृत्त होने वाला आत्मार्थी और अन्यान्य लक्ष्यों को प्रमुख कर चलने वाला अनात्मार्थी होता है । आत्मार्थी सूत्रोक्त ६ चीजों- संयम पर्याय, शिष्य परिवार आदि की प्राप्ति से निर्जरा के कार्य ही करेगा । इसलिये उसके लिये छहों लाभकारी हितकारी कर्मक्षयार्थ मददकारी बनेंगे और अनात्मार्थी को ये छ चीजों का योग मिल भी जाय तो वह अपने हित की जगह अहित ही ज्यादा करेगा । अहं भाव, मान, खुद का उत्कर्ष, अन्य का अपकर्ष आदि से आत्मा का अधःपतन करने में प्रवृत्त होगा । इसलिये शास्त्रकार ने ठाणांग सूत्र में भी यही बात कही है उसी का यहाँ पुनर्कथन हुआ है । जिन धर्म, जिन धर्म के प्रणेता एवं चतुर्विध संघ साधु-साध्वी आदि की किसी भी ईर्ष्यादि दोषों के कारण निंदा अवहेलना करने वाला अशुभ कर्मों से भारी बना जीव पागलपन को प्राप्त करता है । देव प्रवेश से भी व्यक्ति उन्मत्त होते देखें जाते हैं और रोगाक्रांत होकर कोई कर्म के नशे में भी पागलपन को प्राप्त होते हैं । इस प्रकार सातवाँ अध्ययन छोटा होते हुए भी कई महत्व की बातों को और विविध विचित्र बातों को अपने में समाविष्ट किये काल भाव दर्शन कराने वाला सच्चे अर्थ में साबित होता है ।

संज्वलन कषाय की मर्यादा

संज्वलन का कषाय (क्रोध) पानी की लकीर के समान अर्थात् यह कषाय उदय में आ जाय तो भी व्यक्ति का मानस तत्काल-शीघ्र या उसी दिन शांत साफ पवित्र हो जाता है। किसी व्यक्ति के प्रति अनबन अबोला नाराजी तिरस्कार भाव चिड नहीं रहती है । जैन संतो के छट्ठे गुणस्थान में मात्र संज्वलन कषाय ही हो सकता है या रह सकता है अन्य अनंतानुबंधी आदि कषाय नहीं होते । अतः जो संत या श्रावक अन्य किसी के प्रति वैर विरोध अबोला अव्यवहार नाराजी तिरस्कार भाव लंबे समय तक रखे तो भगवदाज्ञानुसार उनमें सच्चा साधुपना या श्रावकपना नहीं रहता है । वे वेश मात्र के साधु या श्रावक रहते हैं ।

उद्देशक- ८ : अनशन विधि

[१] कइ विहेणं भंते ! अणसणे पण्णत्ते ? गोयमा ! दुविहे अणसणे पण्णत्ते तंजहा- इत्तरिए, आवकहिए । इत्तरिए अणेगविहे पण्णत्ते तं जहा- णमुक्कारसीए जाव छम्मासिए, आवकहिए दुविहे पण्णत्ते तं जहा- पाओवगमणे य भत्त पच्चक्खाणे य । पाओवगमणे णिच्चेट्ठे नियमा अपडिकम्मे, भत्त पच्चक्खाणे सप्पडिकम्मे ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! अनशन कितने प्रकार के हैं ? हे गौतम ! दो प्रकार के अनशन कहे है- इत्वरिक और यावत्कथित । इत्वरिक- अल्पकालीन के अनेक भेद हैं- नवकारसी से छ मास तक। यावत्कथित के दो प्रकार है- पादपोपगमन और भक्त प्रत्याख्यान। पादपोपगमन निश्चेष्ट और शरीर अप्रतिकर्म वाला होता है और भक्त प्रत्याख्यान में शरीर परिकर्म की छूट रहती है ।

[२] कई विहाणं भंते ! साहू संलेहणा करेइ ? गोयमा ! साहु वा साहुणी वा संलेहणं करेइ- वाघाइआ य णिव्वाघाइआ य । कहिं ठाणे भंते ! णिग्गंथा वा णिग्गंथी वा संलेहणं करेइ? गोयमा ! गामंसि वा गामबाहिरंसि वा जाव सण्णिवेसे वा बाहिरं वा अब्भिंतरे वा । जया अप्पणो आउं अप्पं वियाणेज्जा तया पढमं कसायं पयणुं कुज्जा तओ पच्छा संलेहणा करेज्जा जहा आवस्सगोद्देसए वा संलेहणा सुत्ते वा, तओ पच्छा आहारं वोच्छिंदेज्जा, जहा आयारे भगवए वा ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! साधु की संलेखना कितने प्रकार की होती है। हे गौतम ! दो प्रकार की होती है- व्याघात सहित और व्याघात रहित अर्थात् कोई आपत्ति आने पर अथवा सहज शरीर की क्षीणता देखकर । हे भगवन् ! निर्ग्रंथ निर्ग्रंथी संलेखना कहाँ करे । हे गौतम! गाँव में या गाँव के बाहर कहीं भी कर सकते है । जब अपना आयुष्य कम जाने तब पहले कषाय क्षीण करे, पूर्व के कषायों को समाप्त कर नये कषायों से दूर रहे । फिर जिस तरह आवश्यक सूत्र मे बडी संलेखना का पाठ है उस विधि से आजीवन अनशन ग्रहण करे, आहार त्याग करे । जैसा कि आचारांग में भी आठवें अध्ययन में संपूर्ण अनशन विधि दी है वैसा करे ।

[३] जइ णं भंते ! भिक्खु कालगए समाणे, तया अण्णे भिक्खू किं करेइ ? गोयमा ! जइ भिक्खु कालगयभूए, तया अण्णे भिक्खू समाहि चित्तेणं तस्स कालगयस्स भिक्खुस्स सरीरे णवं कडिबंधणं करेज्जा, णवं मुहणंतगं तस्स णं मुहे बंधेज्जा नवं संघाडियं दलेज्जा *जाव* तओ पच्छा तिविहं तिविहेणं तस्स सरीरं वोसिरावेज्जा ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! यदि साधु काल कर जाय तो अन्य भिक्षु क्या करे ? हे गौतम ! तब अन्य साधु स्वस्थ चित्त से मृत साधु को नया चोलपट्टक पहिनावे । नई मुँहपत्ति उसके मुँह पर बाँधे । नई चद्दर पहनावे । फिर तीन करण तीन योग से उस शरीर को वोसिरावे, छोड देवे ।

[४] जयाणं भंते ! अण्णे केइ गिहत्थी णो इच्छंति तस्स सरीरं, तओ णं समणा निग्गंथा किं करेज्जा ? गोयमा ! जइ केई गिहत्थी णो इच्छंति तस्स सरीरं, तओ णं सयमेव गिण्हइ गिण्हित्ता तस्स सरीरं अडवीए परिठवेइ, परिठवेत्ता तस्स निव्वाणवत्तियं काउसग्गं करेज्जा ।

कसाए पयणुकिच्चा, तओपच्छा संलेहणं करे ।
आलोइए समाहिपत्ते, आणुपुव्विं कालं गओ ॥

भावार्थ :- हे भगवन् ! यदि वहाँ कोई गृहस्थ उस शरीर को संभालने वाले न होवे तो साधु क्या करे ? जब कोई गृहस्थ लेने वाला न हो तो साधु स्वयं अटवी में जाकर परठ देवे और परठ कर परिनिर्वाण का कायोत्सर्ग करे ।

गाथार्थ :- सर्व प्रथम कषायों को क्षीण करे उसके बाद संलेखना पच्चक्खाण करे । आलोचना पूर्वक समाधि सहित अनुक्रम से काल धर्म प्राप्त करे ।

[५] आलोयणाए णं भंते ! जीवे किं जणयइ ? गोयमा! आलोयणाए णं उज्जुभावं जणयइ, जणइत्ता उज्जुभावेणं णाणदंसणचरित्ततवस्स सुद्धिं जणयइ, सुद्धिं गए य जीवे इत्थिवेयं नपुंसगवेयं ण बंधइ, पुव्वबंधं च णिज्जरेइ, संसार मग्गं वोच्छिण्णं करेइ *जाव* आराहियभावं जणयइ, तओ पच्छा सिज्झइ बुज्झइ जाव सव्व दुक्खाणमंतं करेइ ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! आलोचना से जीव क्या फल प्राप्त करता

है ? हे गौतम ! आलोचना करने से जीव ऋजुभाव पैदा करता है। ऋजुभाव संपन्न साधक ज्ञान दर्शन चारित्र तप की विशुद्धि करता है । विशुद्धि प्राप्त जीव स्त्रीवेद पुरुष वेद का बंध नहीं करता है, पूर्वबद्ध हो तो निर्जरा करता है । संसार भ्रमण मार्ग का व्यवछेद करता है ***यावत्*** आराधक होता है । फिर सिद्ध बुद्ध मुक्त ***यावत्*** सर्व दुखों का अंत करता है ।

विवेचन :- प्रस्तुत सूत्रों में संलेखना आराधना और मृत शरीर को परठने संबंधी खुलासा है जो भावार्थ से स्पष्ट है और अन्य छेद सूत्रों में विवेचित भी है ।

उपसंहार :-

[६] गोयमा ! एयस्स णं समुट्ठाणसुयस्स णं दुविहा नामधिज्जा- पव्वावणसुत्तंति वा समुट्ठाणसुत्तंति वा । सडावस्सग किरिया वज्जित्ता अवसेसं पडिपुण्णं तं पव्वज्जा सुत्तं ।

तेरसवास परियागस्स णं, कप्पइ समणस्स णं निग्गंथस्स पणवीसं आयंबिलं करित्तए भणित्तए वा उद्देसित्तए वा । सेवं भंते ! सेवं भंते । इच्चेयं समुट्ठाणसुयस्स "अणसणविहि" णामो अट्ठमो उद्देसो हियं सुहं खमं णिस्सेयसं आणुगामियं से सव्वं जीवाणं भविस्सइ ।

भावार्थ :- हे गौतम ! समुत्थान सूत्र के दो नाम है- प्रव्राजना सूत्र और समुत्थान सूत्र । आवश्यक सूत्र के सिवाय प्रारंभिक वर्णन प्रव्रज्या का मुख्य है ।

तेरह वर्ष की दीक्षा पर्याय वाले को यह सूत्र पढा दिया जाता है । व्यवहार सूत्र में भी साधु के अध्ययन कोर्ष में ऐसा ही विधान है । इस शास्त्र के फलश्रुति हेतु इसको पढने वाला २५ आयंबिल से तपाराधना करे । इस प्रकार समुत्थान सूत्र का 'अनसन विधि' नामक यह आठवाँ उद्देशक हितकारी ***यावत्*** परभव गामी सुख दायी सभी जीव को होता है ।

विवेचन :- किसी भी सूत्र के अपेक्षा से १-२ नाम हो सकते हैं । वैसे ही इस शास्त्र के आद्यविषय से कोई इसे प्रव्रज्या सूत्र कह सकते है फिर भी इसका मौलिक नाम समुत्थान सूत्र यही आगम में प्रसिद्ध

है । नंदी सूत्र, व्यवहार सूत्र आदि में । नंदी सूत्र में इसे कालिक सूत्रों मे गिना है अतः इसके मौलिक रचनाकार गणधर भगवंत हैं । कालांतर से लेखन के समय भी शास्त्रों का पुनः संपादन होता है और मध्यकाल में भी शास्त्र क्षीण-त्रुटित होने पर बहुश्रुत भगवंत सुधारा वधारा भी करते हैं । यों अनेक परंपरा से शास्त्र हमारे पास पहुँचते हैं उसमें यदि शुद्ध मानस से संशोधन संपादन हो तो उनकी मौलिकता नष्ट नहीं होती है । गेहूँ आदि अनाज में कोई चीज मिश्रित भी हो जाय तो गेहूँ की मौलिक पौष्टिकता नष्ट नहीं होती है ।

परिशिष्ट- १

समुत्थान सूत्र के महत्वशील विषय

(१) मुखवस्त्रिका आठ पड वाली मुख पर डोरे से बांधना, उदे. ३।

(२) नमो चोवीसाए के पाठ को **सम्यकत्व गुण धारणा** पाठ कहा है उसमें- **अढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पण्णरस्ससु कम्मभूमिसु जावंति केई आयरियोवज्झाय साहू मुहे मुहपत्ति रयहरण गोच्छग वत्थ पडिग्गह धरा** ऐसा पाठ है ।

(३) अरिहंत तीर्थंकर को ऋषिध्वज-रजोहरण रखने वाले एवं स्वलिंगी साधु चिन्हों को रखने वाला कहा है ।

(४) दीक्षार्थी की उपधि (बृहत्कल्प जैसा पाठ) में- **कप्पइ मुहपत्ति रयहरणं, सुत्तं, गोच्छग-पडिग्गहमायाए तिहिं कसिणेहिं वत्थेहिं ।** ऐसा पाठ है ।

(५) बारह प्रकार की भाषा अर्धमागधी- ६ गद्यरूप, ६ पद्यरूप- प्राकृत, संस्कृत, सोरसेनी, पिशाचिनी, अपभ्रंश, मागधी ।

(६) श्रावक धर्म धारणा विधि का बहुत सुंदर खुलाशा है ।

(७) उद्देशक- ४ गोचरी जाते समय मुँह पर मुहपत्ति बांधना कहा ।

(८) द्रव्य-भाव आवश्यक का खुलासा अनुयोगद्वार सूत्र जैसा है ।

(९) मुँहपत्ति आदि आवश्यक उपकरण सहित सामायिक आदि करने वाले को **'प्रिय कारक'** अर्थात् धर्मप्रिय कहा है ।

(१०) प्रतिक्रमण में बारंबार तिक्खुत्तो के पाठ से वंदन करना कहा है । प्रत्येक आवश्यक की आज्ञा लेना कहा है ।

(११) पाँचवें आवश्यक में रात्रि प्रतिक्रमण में ४ लोगस्स एवं तप चिंतन काउसग्ग में करना कहा है ।

(१२) देवसिक आदि ५ प्रतिक्रमण कहे है जिसमें पर्व दिन में दो बार प्रतिक्रमण करने का भी कहा है ।

(१३) तीर्थों में भ्रमण करने से मुक्ति का निषेध करके प्रतिक्रमण करने को श्रेष्ठ कहा । तीर्थ ६८ नहीं परन्तु ४ तीर्थ है उनकी भक्ति करना कहा ।

(१४) सिद्धों के ८ गुण स्पष्ट अच्छे कहे हैं ।

(१५) दो तीर्थंकरों के वस्त्र श्वेत ही होते हैं । अन्यों के वस्त्र में रंगीन धारी, पट्टी हो सकती है ।

(१६) स्वलिंग को विकृत रूप से धारण करने वालों को अर्थात् मुँहपत्ति मुँह पर नहीं बांधने वालों को और डंडा वगेरेह आगमातिरिक्त उपधि रखने वालों को कुलिंग में गिना है ।

(१७) चार भावना- मैत्री, प्रमोद, करुणा, माध्यस्थ भावना ।

(१८) जंबूद्वीप मे ४ विहरमान तीर्थंकर के नाम ।

(१९) स्वलिंग के ५ अतिचार- मुखवस्त्रिका अप्रतिलेखन आदि चार, पाँचवाँ मुँहपत्ति मुख पर न बांधी हो ।

(२०) द्रव्य लिंग के पाँच अतिचार- द्रव्यलिंग अर्थात् भंडोपकरण । उसके अप्रतिलेखन आदि चार और पाँचवाँ यथास्थान नहीं रखे हो, इखरे-बिखरे रखे हो ।

(२१) पाँच महाव्रत की २५ भावना तथा २५ अतिचार स्पष्ट दिये है। साध्वी के लिये चौथे महाव्रत में अलग खुलाशा किया है ।

(२२) अरिहंतों-तीर्थंकरों को स्वलिंगी कहा है ।

(२३) रात्रि भोजन के ६ अतिचार कहे हैं । ग्रहण के तीन, खाने के तीन भूल से । करना, कराना, अनुमोदन रूप तीन ।

(२४) धातकीखंड, पुष्कर द्वीप के ८-८ विहरमान । ८×२ = १६

(२५) **आठ कर्म दहनार्थ आठ पडवाली मुँहपत्ति कही है ।**

(२६) **स्वलिंगी के आठ अविनय स्थान नूतन दिये हैं ।**

(२७) सिद्धों के जघन्य दो, मध्यम आठ, उत्कृष्ट- ३१ गुण कहे हैं ।

(२८) पुरुष शरीर के ९ श्रोत । स्त्री के बारह श्रोत स्थान शरीर में ।

(२९) नव पुण्य, नव पद भी कहे है । अरिहंतादि-५, ज्ञानादि-४ ।

(३०) प्रश्नव्याकरण सूत्र के १० अध्ययन । पहले **उपमा** अध्ययन के दस उद्देशक बताये, उसमें वर्तमान के १० अध्ययन के नाम दिये हैं ।

(३१) **आहार ग्रहण के ११ दोष स्थान नये कहे हैं ।**

(३२) **अरिहंतों के १२ गुण नये कहे हैं ।**

(३३) बारह भावना-अनित्यादि स्पष्ट कही है ।

(३४) १४ नियमों के नाम का खुलासा युक्त मूल पाठ है ।

(३५) **तप के १४ अतिचार नये कहे हैं ।**

(३६) **उपाध्याय के २५ गुण नये कहे हैं ।**

(३७) **आचार्य के ३६ गुण नये कहे हैं ।**

(३८) २८ लब्धि के नाम स्पष्ट कहे हैं ।

(३९) २० विहरमान के नाम एक साथ में भी कहे हैं ।

(४०) **नवकार मंत्र के १९ नाम दिये हैं ।**

(४१) अरिहंतों के २१ गुण, ४ घाती कर्म क्षय संबंधी । १८ दोष ।

(४२) **पंच परमेष्ठी के जघन्य- २० गुण है,** मध्यम- १०८ गुण है ।

(४३) आचार प्रकल्प-२८ प्रायश्चित्त भेद ।

(४४) तप के १४ अतिचार दूसरे प्रकार से ।

(४५) श्रमण के कुल अतिचार १५५ है ।

(४६) **तत्त्वार्थ सूत्र में- इन्द्रादि १० भेद है ।** अध्याय-४ सूत्र-४

(४७) आशातना-अविनय के २० प्रकार ।

(४८) **श्रुत ज्ञान संबंधी साधु के मनोरथ २१ कहे हैं ।**

(४९) ज्ञानी और मुक्ति मार्ग क्या है ? थोडे में अच्छा कहा है ।

(५०) **श्रुतज्ञान के २९ नाम ।**

(५१) साधु के २७ गुण तीन प्रकार से ।

(५२) **पाँच ईश्वरों के ५-५ गुण । पाँचों का क्रम नया दिया है यथा- साधु, उपाध्याय, आचार्य, अरिहंत, सिद्ध ।**

परिशिष्ट- २

तपाराधना एवं अतिचार का पाठ

से किं तं भंते ! तवस्स णं अइयारा पण्णत्ता ? गोयमा ! तवस्स णं चउद्दस्सविहा अइयारा पण्णत्ता तंजहा- अहासुत्तं, अहाकप्पं, अहामग्गं, अहातच्चं, दव्वं, खित्तं, कालं, भावं, सद्धासत्तियं, अरोयंव, रोगातंके अणुसारेणं- सब्भावणा तवं अचिंतित्तए, अप्पतित्तए, अरोइत्तए, असद्धित्तए, अकडित्तए, उवसमकायेण अफासित्तए अपालित्तए, असोहित्तए अविसोहित्तए, णो इरियत्तए, अकित्तित्तए, णो आणा आराहित्तए अकाले पारित्तए, अणुवओगेण पारित्तए, णियाण कडे । से तं तवस्स अइयारा।

भावार्थ :- हे भगवन् ! तप के कितने अतिचार कहे है ? हे गौतम ! तप के स्वरूप सहित १४ अतिचार कहे हैं । **स्वरूप-** तप सूत्रानुसार, कल्पानुसार, मोक्षमार्गानुसार, यथातथ्य रूप से आराधना करना, द्रव्य क्षेत्र काल भाव श्रद्धा-शक्ति अनुसार तप करना, रोग तथा निरोग अवस्था में संयोगों में समभावपूर्वक तप का अनुसरण करना । ऐसे तपाराधना के १४ अतिचार इस प्रकार हैं- (१) भावना सहित तप का चिंतन न किया हो (२) प्रतीति न करी हो (३) रुचि न करी हो (४) श्रद्धा न करी हो (५) तप का आचरण न किया हो (६) शरीर की समाधि युक्त काया से स्पर्शना पालना न की हो। (७) शोधन-शुद्धि न की हो (८) विशुद्धि न करी हो (९) तप के समय उपयोग पूर्वक गमन न किया हो (१०) तप का कीर्तन-गुणगान बहु मान न किया हो, अहोभाव न रखा हो । (११) आज्ञानुसार तप का पालन न किया हो (१२) समय के पहले तप पाल लिया हो। (१३) तपस्या विधि सहित उपयोग सहित पूर्ण न करी हो (१४) नियाणा किया हो अर्थात् तप से आगामी फलाकांक्षा की हो । ये तप के अतिचार हैं ।

परिशिष्ट- ३

श्रावक - साधु के कुल अतिचार

(१) श्रावक के ९९ अतिचार प्रचलित + १० उपकरणों के + १४ तप के यों २४ बढने से इस सूत्रानुसार १२३ अतिचार श्रावक के होते हैं ।

(२) साधु के १२५ अतिचार प्रसिद्ध है । उसमें रात्रि भोजन के-६, चौथी समिति के उपकरणों के-१० और तप के १४ यों ३० बढने से १२५ + ३० = १५५ अतिचार होते हैं । तप के अतिचार परिशिष्ट- २ में देखें ।

रात्रि भोजन के ६ अतिचार :- रात्रि में भूल से ग्रहण और आसेवन । करना कराना अनुमोदन ।

उपकरणों के १० अतिचार :- मुँहपत्ति प्रतिलेखन के चार और पाँचवाँ मुख पर मुखवस्त्रिका नहीं बांधने का, पाँच उपकरण के जिसमें चार उपर वत् और पाँचवाँ व्यवस्थित न रखे ।

श्रावक के ९९ अतिचार :- १४ ज्ञान के, ५ समकित के, ६० बारह व्रतों के, १५ कर्मादान के, ५ संलेखना के, ये प्रसिद्ध है।

साधु के १२५ अतिचार :- १४ ज्ञान के, ५ समकित के, ५ महाव्रत के पच्चीस, रात्रि भोजन के दो, इर्या समिति के चार, भाषा समिति के दो, एसणा समिति के ४७, चौथी समिति के दो, पाँचवी समिति के दस, तीन गुप्ति के ९, संलेखना के पाँच ।

परिशिष्ट- ४

विद्वानों से ऐतिहासिक प्रश्न

(१) पज्जोसवणा कल्प सूत्र नामक सूत्र का अलग अस्तित्व कब हुआ? किस आगम में या निर्युक्ति में, भाष्य में, चूर्णी में, टीका में इसका (कल्पसूत्र का) स्वतंत्र रूप में अस्तित्त्व होने का निर्देश मिलता है ? नंदी सूत्र रचनाकार ने श्रुतज्ञान में इस स्वतंत्र सूत्र को किसी नाम से कहा है ?

(२) निर्युक्तियों में नंदिसूत्र का निर्देश मिलता है तो क्या नंदी सूत्र की रचना के बाद निर्युक्तियाँ बनी ?

(३) उपलब्ध स्वतंत्र अस्तित्त्व के पर्युषणाकल्पसूत्र के आदि पाठ नमस्कार मंत्र का अस्तित्व स्वीकार करने में भी मतभेद है क्या? क्योंकि व्याख्याकारों ने इस विषय में विभिन्नताएँ दिखाई है, अतः प्रक्षिप्त होना स्पष्ट है या नहीं?

(४) दशाश्रुतस्कंध के आठवें अध्ययन के नाम से उपलब्ध स्वतंत्र पर्युषणा कल्प सूत्र में उस सूत्र व उस अध्ययन के नाम का मुख्य विषय सबसे अंत में है, प्रारंभ में करीब १००० श्लोक प्रमाण वर्णन अन्य है । जबकि निर्युक्ति में प्रारंभ से ही मुख्य विषय की व्याख्या है और १००० श्लोक जितने मूल पाठ के लिये केवल एक ६२ वीं गाथा में संकेत मात्र है । ऐसा क्यों ? इसमें भी कुछ रहस्य हो सकता है क्या ?

(५) भगवान ने सभा में कथन किया, १४ पूर्वी भद्रबाहू स्वामी ने गुंथन-निर्युहण किया, उतना ही आठवाँ अध्ययन रूप यह स्वतंत्र कल्प सूत्र है? या कुछ प्रक्षिप्त होकर बढा हुआ रूप है?

(६) दशाश्रुतस्कंध के रचयिता भद्रबाहू स्वामी वीर निर्वाण दूसरी शताब्दि में हुए है । उस सूत्र का आठवाँ अध्ययन कहे जाने वाले स्वतंत्र अस्तित्वधारी पर्युषणाकल्प सूत्र में वीर निर्वाण ९८० व ९९३ का विवाद किसने और कब प्रक्षेप किया और क्यों आवश्यक हुआ प्रमाणिक पुरुषकृत सूत्र को विकृत बनाने का ? उसे आज तक भद्रबाहू के सूत्र और उनके शब्दों के नाम से स्वीकार करना क्या उचित है ? या शास्त्रीय है?

(७) भद्रबाहू के बाद के आचार्यों आदि की स्तुति और वंदन नमस्कार भी भद्रबाहू कृत कहे जाने वाले सूत्र में मानने में क्या असत्य का पाप नहीं लगेगा? उसे १२०० श्लोक से अलग क्यों नहीं रखा जाता है ? प्रक्षेपों को जानते मानते हुए भी १२०० श्लोक प्रमाण भद्रबाहु का बनाया कहना उचित है ? और इसे भगवान ने सभा में कहा, यह पाठ भी साथ में जोडे रखना उचित है ?

(८) क्या भगवान ने ऐसा यह १२०० श्लोक का उपलब्ध आठवाँ अध्ययन परिषद् में फरमाया, यह गले उतर सकता है ? भगवान ने बारंबार परिषद् में यह फरमाया था तो क्या एक ही दिन में या अनेक दिनों में ?

(९) दशाश्रुत स्कंध के आठवें अध्ययन का गृहस्थ के सामने वांचन करना भी निशीथ सूत्र एवं उसकी निर्युक्ति, चूर्णी आदि से गुरुचौमासी प्रायश्चित्त का कार्य है ऐसा सिद्ध होता है । यदि उस आठवें अध्ययन में तीर्थकरों का वर्णन हो तो उसे गृहस्थ को सुनाने में सूत्रकार व व्याख्याकार प्रायश्चित्त कथन और विवेचन करे यह कैसे संभव हो सकता है ?

(१०) जिस सूत्र व अध्ययन के लिये आगमकार व्याख्याकार गृहस्थों को सुनाने का प्रायश्चित्त कहे, और जिसे कालिक सूत्र कहे, उसी अध्ययन को स्वतंत्र सूत्र का अस्तित्त्व देकर कोई उत्कालिक कर दे, फिर भी भद्रबाहु का कहते रहे, तीसरे प्रहर में गृहस्थ परिषद में वांचन करे ऐसा दुस्साहस भी अपने पूर्वाचार्यों से कराना । यह सब कैसे स्वीकार किया जा सकता है ? यह सब करना मानो जीवित मक्खी जानकर निगल जाना नहीं है ?

(११) चौदह पूर्वी भदूबाहू स्वामी, निशीथ सूत्र के १०वें उद्देशे में अपर्युषणा में पर्युषणा करने का तथा पर्युषणा के दिन पर्युषण न करने का गुरुचौमासी प्रायश्चित्त कहे, वे इस आठवीं दशा में ऐसा क्यों कहे कि पहले पर्युषणा करने में कोई दोष नहीं है ?

(१२) क्या भद्रबाहू स्वामी की रचना में और भगवान के मुख से कहलाये जाने वाले इस अध्ययन में ऐसा कथन उपयुक्त है कि 'श्रमण भगवान महावीर ने पर्युषणा किया वैसे ही (एक महिना

बीस दिन बाद) गणधर करते, वैसे ही गणधर शिष्य करते, वैसे ही स्थविर करते, वैसे ही आज के साधु करते, वैसे ही हमारे आचार्य उपाध्याय करते, वैसे हम भी करते'' इत्यादि भाव पर्युषणा कल्प सूत्र के समाचारी वर्णन के आदि सूत्र में है । निर्युक्तिकार ने ऐसी परंपरा युक्त मूल पाठ की व्याख्या नहीं की है । तो भी इस पाठ को भगवान व भद्रबाहु के नाम से माना जाना कैसे उचित कहा जा सकता है ? हमारे आचार्य उपाध्याय करते वैसे हम करते, यहाँ हम कहने वाले कौन है । स्वयं तीर्थकर के कथन में भी आगम में **अहं पुण गोयमा, तयाणं अहं गोयमा** ऐसे प्रयोग है तो इस पाठ में वयं कहने वाले कौन है? ऐसी कल्पित श्रृंखला युक्त रचना भद्रबाहू की हो सकती है या प्रक्षिप्त है?

(१३) नंदी सूत्र में ७२ आगमों के नाम है तो ४५ मानने का क्या कारण है । करीब २० प्रकीर्णक आज भी उपलब्ध है तो १० ही को आगम क्यों माना जाता है १० को क्यों नहीं ? नंदी सूत्र में नाम होते हुए भी कई प्रकीर्णकों को आगम नहीं माना जाता, इसका कारण क्या है ?

(१४) हरिभद्रसूरि, मलयगिरी, आचार्य हेमचन्द्र आदि युगप्रधान धुरंधर विद्वानों की उपलब्ध रचनाओं को आगम में क्यों नहीं गिना जाता है? पंचांगी के अतिरिक्त भी अनेक ग्रन्थ है ।

(१५) सूर्य प्रज्ञप्ति में मांस भोजन विषयक पाठ के प्रक्षिप्त होते हुए भी उसको क्यों मानते ?

(१६) आचारांग सूत्र का आठवाँ अध्ययन कम होते हुए भी अर्थात् इस सूत्र के खंडित होने पर भी इसे आगम में क्यों मानते ?

(१७) प्रश्न व्याकरण में नंदी व समवायांग कथित विषय न होते हुए भी उसे आगम में क्यों माना जा रहा है ?

(१८) ४५ आगम में कितने ही आगमों के रचनाकार का, उसके रचना समय का इतिहास अनुपलब्ध होते हुए भी आगम में क्यों और किस आधार से गिना जाता ?

(१९) बृहत्सग्रहणी गाथा १५४ में सूत्र-आगम की परिभाषा दी है उसके अनुसार आगम का निर्णय किया जाता है क्या ? यदि किया

जाय तो ५-१० आगम ही मानने पडेंगे ? तब ४५ कैसे होंगे । अथवा बृहत्संग्रही की परिभाषा को खोटी मानेंगे ?

(२०) गणधर या १४ पूर्वी आदि के रचित आगम का पूर्ण विषय बदल कर नाम वही रह जाय तो वह आगम में गिना जा सकता?

(२१) गणधर या १४ पूर्वी के रचित आगम का कुछ अंश घट जाय विच्छेद हो जाय तो वह आगम गिना जा सकता ?

(२२) गणधर या १४ पूर्वी के सूत्र के मूल पाठ में जिसके जो मन भाया बढा दिया, संवत् लगा दिये जाय, अनेक गाथाएँ एवं गद्य पाठ रूप स्तुति वंदन आदि बढा दिये जाय, अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये चौथ की संवत्सरी हेतु पर्यूषण के पाठ को बढा दिया जाय, ऐसे विकृत बने शास्त्र (कल्पसूत्र) को १४ पूर्वी के नाम से अक्षर अक्षर पूरा १२०० श्लोक प्रमाण आगम माना जाय, उसे मूर्खता समझना या विद्वत्ता ? और ऐसी परूपणा करने को पाप समझना अथवा धर्म समझना ? ऐसी प्ररूपणा करने वालों को श्रमण कहना या श्रमण भगवान की आज्ञा के चोर कहना ?

(२३) महानिशीथ और कल्पसूत्र में अनेक शब्द अनेक वाक्य अनेक अंश मौलिक सूत्र कर्ता के नहीं होते हुए भी सूत्र के मूल पाठ में रखे जाकर विकृतियों से भरे पडे ऐसे सूत्रों को आगम रूप में स्वीकार किया जाता है तो फिर हरिभद्रसूरि आदि की शुद्ध अनेक रचनाओं को ४५ से बाहर क्यों रखा गया है? अनेक प्रकीर्णकों को नंदी सूची में नाम होते हुए भी ४५ से बाहर क्यों रखा जाता है ?

(२४) लिपिकाल की हुई भूलों को जानबूझकर भी आगम की मानकर उनकी प्रामाणिकता को कलंकित करना योग्य है ? सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र, पर्युषणा कल्पसूत्र और महानिशीथ सूत्रों के अनेक पाठ स्पष्ट रूप से मौलिक रचना को और मौलिक रचनाकार को दूषित करने वाले उपलब्ध है, उन्हें उन प्रमाणिक पुरुष के रचित आगम के मूल पाठ के वाक्य रूप में सम्मिलित ही स्वीकारा जाता है, साथ ही ऐसे उन वाक्यों को मौलिक नहीं है विकृति से प्रविष्ट हो गये हैं, यह भी माना जाता है । ऐसे लकीर के फकीर रहने की क्या आवश्यकता है ? अर्थात् विकृति से प्रविष्ट भी मानना और फिर

मौलिक पाठ में सम्मिलित रखे रहना कदापि उचित कर्तव्य नहीं माना जा सकता । तो फिर संपादन, प्रकाशन या नकल में अकल से न्याय क्यों नहीं किया जाता है ? पाठ क्यों नहीं सुधारा जाता ?

(२५) भगवती के अंतिम मंगल प्रशस्ति को अभयदेवसूरि स्वयं लिपिकर्ता की बताकर व्याख्या भी नहीं करते हैं । फिर भी आज के संपादक उसे गणधर रचित मूल पाठ में क्यों स्वीकार करते ? यह लाचारी आगम सेवा में उचित है कि जान बूझ कर लहियों के वाक्य मूल पाठ में रखे जाय ? क्या ऐसे व्यक्तियों को आगम प्रकाशन संपादन का अधिकार उचित है ?

(२६) ठाणांग में अनेक जगह देवों के चैत्य वृक्ष कहे हैं - ठाणांग सूत्र ठाणा ४ उद्दे. ३ सूत्र ४४८ : २४ तीर्थंकरों के अशोक वृक्ष के सिवाय चैत्य वृक्ष भी कहे है । तो देवों के और देवाधिदेवों के चैत्यवृक्ष के वृक्ष में चैत्य क्यों लगा है उसका शब्दार्थ और तात्पर्यार्थ उद्धरण प्रमाण टीका ग्रन्थ आदि सहित स्पष्ट करावें ।

(२७) नंदी सूत्र और ठाणांग सूत्र में द्वीप सागर प्रज्ञप्ति सूत्र का नाम मिलता है और वह सूत्र प्रकाशित उपलब्ध भी है तो उसे आगम में क्यों नहीं माना है।

(२८) स्थानकवासी तेरापंथी आदि विभिन्न समुदायों में जिस तरह ३२ सूत्र की मान्यता के सूत्रों के उन नामों में कोई मत भेद या विकल्प नहीं है, किन्तु वे ही ३२ नाम सर्व मान्य है। वैसे ही मूर्ति पूजकों में एकरूपता क्यों नहीं है। और ४५ मानने में भी यत्र तत्र विभिन्न विकल्प क्यों दिये जाते हैं अर्थात् पंचकल्प, जीतकल्प, पाक्षिक सूत्र, ओघ निर्युक्ति, पिंड निर्युक्ति के लिए नाम भेद है अर्थात् कहीं ४६ नाम लिखते हैं कहीं ४७ नाम भी और संख्या ४५ ही कहते हैं तब कहीं किसी को छोडते, कहीं किसी को गिन लेते हैं। ऐसा क्यों ?

(२९) **१.** दस प्रकीर्णक के सिवाय नहीं मानने में और दस को मानने में क्या हेतु है । नंदी सूत्र में जो नहीं है उन्हें १० में क्यों मान रखा है? **२.** प्रकीर्णकों के रचियता का नाम ज्ञात नहीं है तो उन्हें आगम में मानने का क्या आधार है ? उनका काल भी ज्ञात है क्या ?

(३०) हरिभद्रसूरि तो बहुत बडे प्रकांड विद्वान ज्ञानी प्रभावक संत शिरोमणि युग प्रधान आचार्य हुए है, उनके बनाये ग्रन्थ साहित्य अनेक है उनको आगम नहीं मानने में क्या हेतु है ?

(३१) ध्यान शतक को आगम क्यों नहीं मानते है ? जो हरिभद्रसूरि के भी पूर्व आचार्य जिनभद्र गणी क्षमाश्रमण द्वारा रचित है ।

(३२) **सुतं गणहर रइयं, तह पत्तेय बुद्ध रइयं च ।**
सुयकेवलिणा रइयं, अभिन्न दस पुव्विणा रइयं ॥१५६॥

अर्थ- गणधर, प्रत्येक बुद्ध, १४ पूर्वी से १० पूर्वी तक के ज्ञानी गीतार्थ श्रमणों द्वारा की गई रचना को सूत्र या आगम कहा जा सकता ।

यह वृहत्संग्रहणी की गाथा है इसके अनुसार आपकी आगम मानने की मान्यता है या नहीं ? यदि यह गाथा और ग्रन्थ मान्य है तो ४५ आगम की सिद्धि कैसे कर सकते ? और यह गाथा और ग्रन्थ मान्य नहीं तो किसी आचार्य की रचना को आगम मानो और किसी प्रामाणिक पुरूष के एक भी ग्रंथ को आगम नहीं मानो इसका कारण क्या है ? इसमें क्या रहस्य है ?

(३३) क्या मंदिर बनाने का उपदेश साधु दे सकता है या सचित्त फूल पानी और अग्नि के पाप से पूजा करना कह सकता है ? क्या वर्तमान या प्राचीन मंदिरमार्गी साधु इन क्रियाओं की प्रेरणा करते ? और ऐसी प्रेरणा करने वालों का पहला महाव्रत दूषित होना माना जा सकता है ?

(३४) क्या देवलोक की शास्वत प्रतिमा में इस अवसर्पिणी के प्रथम और अंतिम तीर्थकर का नाम आना उचित है ? या यह मंदिर मार्गियों की सूत्र में पाठ प्रक्षिप्त करने की आदत का प्रभाव है?

(३५) मुहपोत्तियं, मुख वस्त्रिका या मुँहपत्ति नाम कहते हुए भी उसे रूमाल के समान हाथ में या कमर में रखना क्या उचित है ?

(३६) बोलते समय मुखवस्त्रिका को हाथ में ही नहीं ले और मुँह के सामने हाथ ले जाने का प्रयत्न भी नहीं करे तो भी ऐसे साधु अपने आप को जिनाज्ञा में होना या साधु होना कह सकते ? भगवती सूत्रानुसार सावद्यभाषी होते है ?

(३७) क्या कोई मंदिर मार्गी जैन साधु होकर के भी स्वछंदमति से एक पुस्तक बनावे, उसे स्थानकवासियों के नाम से छपावे, प्रेस का

नाम नहीं दे, लेखक का अर्थात् खुद का नाम नहीं दे, जब कि उन पुस्तकों की सप्लाई वह स्वयं करे, करावे, प्रेषक में खुद का गाँव का पता न देकर दूसरों की किसी की स्टांप छाप लगावे और स्टांप छाप अपने पास रखे, पोस्ट आफिस की छाप से चोरी पकड़ा जावे तो झूठ बोल कर सफाई पेश करे, इत्यादि कृत्य करने वालों को सच्चा निडर जैन साधु या लेखक कहा जा सकता है ?

(३८) एक पुस्तक में प्राचीन ग्रंथ के नाम से एक कथा देना उसमें भगवान महावीर के शासन में ४४ साधुओं को विराधक बताकर भवभ्रमण करना बताने में एक नरक का भव करवा कर ४४ ढूँढिये साधु बनना बताया । क्या ढाई हजार वर्ष में एक नरक का भव बताने वाले साधु और ग्रंथ झूठे है या सच्चे ? ऐसी पुस्तक छपाने वाला साधु है या धूर्त ? ऐसे धूर्त शिरोमणि गलती बताने पर भी कोई प्रायश्चित लिये बिना ही जैनाचार्य बन बैठे तो वे अपने को असत्य भाषी धूर्त मान सकते, कह सकते है ? पश्चात्ताप करके प्रायश्चित ले सकते है ?

(३९) वराहिसंहिता बनाने वाले वराहमिहिर निर्युक्ति कर्ता भद्रबाहु स्वामी के छोटे सगे भाई थे ?

(४०) वराहिसंहिता और पंचसिद्धांतिका ग्रन्थ की रचना का काल उसके अंत में लिखा है ? या नहीं ? लिखा है तो क्या लिखा है बतावे?

(४१) किस बारह व्रतधारी श्रावक ने मूर्ति पूजा की थी शास्त्र में ४५ आगम या ७२ आगम में बतावें ।

(४२) कोई श्रावक अपने गुरुओं, आचार्यों को सावद्यकार्यो के प्रेरक कह सकता या लिख सकता है?

नोंट- इन प्रश्नों का सरलता युक्त जवाब छपाकर अपनी सच्ची विद्वत्ता जाहिर करें तथा इस पुस्तक में दिये गये प्रमाणों का सच्चा उत्तर जाहिर करें। अन्यथा कोई भी पुस्तक आगम सिद्ध मूर्तिपूजा या तत्त्वनिश्चय आदि छपानेवाला वितंडावादी एवं निंदक विद्वेषी तथा मूर्खों का सरदार ही गिना जायेगा ।

परिशिष्ट- ५

निबंध माला भाग- ५ के विशिष्ट निबंध

[१] शास्त्रों के लिये विवेक बुद्धि परिज्ञान :-

जिज्ञेश- शास्त्रों के लिये विवेक बुद्धि का कथन अन्य किसी ने भी कभी कहीं किया है ? या आपने ही सारी आगम सत्ता अपने और विद्वानों के हाथ में ले ली है ?

ज्ञानचन्द्र - जी हा ! श्वे. मूर्ति पूजक विद्वान श्री पुण्यविजय जी ने इन उक्त विचारों वाले ही भाव एक जगह लिखे हैं देखें -

अहीं एक बात खास ध्यान मा राखवा जेवी छे के आजना जैन आगमों मां मौलिक अंशो घणां घणां छे एमा शंका नथी । परन्तु जेटलो अने जे कांई छे ए बधुं य मौलिक ज छे एम मानवा मनाववा नु प्रयत्न करवो ए सर्वज्ञ भगवंतो ने दूषित ज करवा जेवी वस्तु छे ।

आज ना जैन आगमों मां एवा घणां घणां अंशो छे जे जैन आगमों ने पुस्तकारूढ करवा मां आव्या त्यारे, के ते आसपास उमेराएला, के पूर्ति कराएला छे । केटलाक अंशो एवा छे जे जैनेत्तर शास्त्रों ने आधारे उमेरायेला कोई जैन दृष्टि थी दूर पण जाय छे । इत्यादि अनेक बाबतो जैन आगम ना अभ्यासी गीतार्थ गंभीर जैन मुनि गणे विवेक थी ध्यान मां राखवा जेवी छे ।- वृहत्कल्प भाष्य भाग ६, प्रस्तावनांश ।

इस प्रकार मूर्ति पूजक प्रसिद्ध शास्त्रोद्धारक पद विभूषित पूज्य श्री पुण्य विजय जी म.सा. ने मौलिक आगमों में भी गीतार्थ मुनियों को विवेक बुद्धि रखने का निर्देश किया है । इस स्थिति में आगमातिरिक्त ग्रन्थों व्याख्याओं एवं कल्पित भ्रमित कथाग्रन्थों इतिहास ग्रन्थों और कल्प सूत्र या महानिशीथ अथवा पट्टावलियों के लिए अंध बुद्धि का आग्रह और विवेक बुद्धि का निषेध, किसी के द्वारा करना कदापि उचित नहीं हो सकता है ।

इसीलिये अनुभव एवं चिंतन पूर्वक ही आगमों के लिये लिपि दोष, दृष्टि दोष, परंपरा दोष, प्रक्षेप दोष, परिवर्तन दोष संभवित होने का कहा जाता है एवं इन्हीं मुख्य कारणों को ध्यान में रख कर

ही विवेक बुद्धि रखने का संकेत किया जाता है । जो अन्य आगम मनीषियों द्वारा सम्मत होने से एक निराबाध सत्य संकेत है । इसका आशय समझे बिना उपेक्षा एवं आक्षेप करना समझदारी नहीं है ।

[२] श्रावक को आगम अध्ययन परिज्ञान :-

प्रश्न- तीन वर्ष की दीक्षा के पहले साधु को भी शास्त्र पढ़ाने की मनाई है तो गृहस्थ तो कभी शास्त्र पढ़ने का अधिकारी नहीं हो सकता ?

उत्तर- अनेक जगह आगम विधान के अर्थ की परम्परा बराबर उपलब्ध नहीं है किन्तु विकृति से पेश की जाती है ।

शास्त्र में ३ वर्ष की दीक्षा वाले को उपाध्याय पद देने का विधान किया है और उस तीन वर्ष की दीक्षा वाले को उपाध्याय बनने के लिए बहुश्रुत होना भी आवश्यक कहा है । अतः तीन वर्ष की दीक्षा होने के पहले शास्त्र नहीं पढ़ाना यह शास्त्र का खोटा अर्थ है । उन सूत्रों का अर्थ ऐसा समझना चाहिए कि तीन वर्ष वाले योग्य साधु को कम से कम उतना (शास्त्र कथित) अध्ययन तो करा ही देना चाहिए योग्यता हो तो ज्यादा करे करावे उसका निषेध नहीं समझना चाहिए ।

गृहस्थ को शास्त्र पढाने का निशीथ में प्रायश्चित्त कहा है। उसका मतलब भाष्यकार ने भी मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा किया है और बताया है कि, वह दुरुपयोग करेगा किन्तु जिन भगवान के प्रति जो अनुरक्त है और श्रावक है, उनके लिए कदापि निषेध नहीं समझना चाहिए । नंदी सूत्र और समवायांग सूत्र में जिस तरह साधुओं का शास्त्र अध्ययन और उपधान का कथन है, वैसा ही कथन श्रावकों के लिए भी है । अन्य आगम वर्णनों से योग्य श्रद्धालु श्रावक भी आगम ज्ञानी, बहुश्रुत, कोविद, जिनमत में निपुण आदि हो सकते हैं । आगम में श्रावक को भी साधु के समान ही तीर्थ कहा है तथा चार प्रकार के श्रमण संघ में भी श्रावक को गिना है अतः आगमकार की दृष्टि से श्रावक के लिए आगम अध्ययन का निषेध या अनधिकार नहीं है । अतः उक्त एकान्तिक आग्रह भी अविवेक है । श्रावक तो जिनशासन के तीर्थरूप है उनको शास्त्र पढ़ने में कोई

दोष नहीं है उल्टा महान् लाभ है । अतः सत्य विवेक यही है कि योग्य हो वह साधु-साध्वी या श्रावक श्राविका शास्त्र अध्ययन करें करावें, तो इसमें कोई प्रायश्चित नहीं आता है । अन्यथा गृहस्थ पंडितों से पढना और उनका प्रवचन सुनना भी पाप होगा ।

[३] मासिक धर्म के समय धर्माराधन : संवाद

धुरंधर विजय-केवल मुनि जी ! आप मासिक धर्म की अस्वाध्याय मानते हैं ?

केवल मुनि-हाँ, जी हम मासिक धर्म की अस्वाध्याय मानते हैं ।

धुरंधर विजय- आप श्राविकाओं को सामायिक का नियम कराते हैं तब क्या तीन दिन का आगार रखते हैं ?

केवल मुनि-नहीं जी ! सामायिक और स्वाध्याय का कोई सम्बन्ध ही नहीं है । साध्वी बिना किसी आगार के जीवन भर की सामायिक का पच्चक्खाण कर सकती है । सामायिक का अर्थ है १८ पाप का त्याग करना । एक मुहूर्त की या जीवन भर की सामायिक लेने के बाद मासिक धर्म आदि कोई भी अस्वाध्याय हो तो भी उससे सामायिक भंग होने का कोई प्रयोजन नहीं है । क्यों पंडित जी ! अस्वाध्याय स्वाध्याय का आप क्या मतलब समझते हैं ?

पं. न्यायचंद्र जी-मत्थएण वंदामि ! अभिधान राजेन्द्र कोष भाग प्रथम पृ. ८२७ में बताया गया है कि 'सत्शास्त्र का अध्ययन करना स्वाध्याय है । वह अध्ययन जब जहाँ न करना हो वह हेतु अस्वाध्याय कहा जाता है यथा- रुधिर आदि । ऐसे अस्वाध्याय ३२ है । उनमें सूत्र के मूल पाठ का अध्ययन उच्चारण करना नहीं कल्पता है ।'

अतः मुनिवरों ! अस्वाध्याय का सम्बन्ध केवल मूल पाठ के उच्चारण से है । नित्य नियम, धार्मिक-क्रिया, पाप-त्याग, तपस्या आदि कार्यों का अस्वाध्याय से कोई प्रयोजन ही नहीं है । प्रतिक्रमण रूप नित्य नियम का भी ३२ अस्वाध्याय से कोई सम्बन्ध नहीं है । चाहे गाज-बीज हो या सूर्य ग्रहण हो, चाहे चैत्र आदि की पूनम एकम हो या सन्ध्या काल (लाल दिशा) हो, नित्य नियम में उपयोगी होने

से आवश्यक सूत्र आगम होते हुए भी उसका उच्चारण करना निषिद्ध नहीं है अर्थात् ३२ अस्वाध्याय में भी प्रतिक्रमण किया जाता है ।

अतः मासिक धर्म के समय सामयिक प्रतिक्रमण, व्रत-नियम, प्रत्याख्यान, पौषध का निषेध करना, मनः कल्पित है किन्तु आगम सम्मत नहीं है ।

धुरंधर विजय- आगम के मूल पाठ के अध्ययन की भी अस्वाध्याय क्यों होती है ? आगम तो स्वयं मंगल रूप होते हैं उन्हें भी अस्वाध्याय के समय पढ़े तो दोष क्या है ? शास्त्र में अस्वाध्याय बताई गई है उसका हार्द क्या है ?

पंडित जी- मत्थएण वंदामि ! तीर्थंकर भगवान द्वारा प्ररूपित भावों को एक विशिष्ट भाषा में गुंथन करने पर वह शास्त्र कहलाता है । तात्पर्य यह है कि सूत्र हंमेशा किसी एक विशिष्ट एवं अल्प प्रचलित भाषा में बनाये जाते हैं । व्याख्यान, विचारणा, अर्थ-भावार्थ समझाना, यह प्रायः जनसाधारण की भाषा में होता है ।

तदनुसार भगवान के द्वारा प्ररूपित भावों को गणधर एक विशिष्ट भाषा में गुंथन करते हैं । वे गणधर इसके लिए देवों की भाषा का चयन करते हैं अर्थात् देववाणी(अर्धमागधी भाषा) में आगम रचना करते हैं । इस प्रकार हमारे आगमों की भाषा (अर्धमागधी) देवों की भाषा है ।

देवों में कई हल्के-कुतुहली एवं मिथ्यात्वी देव भी होते हैं । उनके कुतुहल या उद्दंडता करने के समय भी नियत होते है । यथा- पाठशाला में बच्चों के लिए खेलकूद मनोरंजन के समय भी होते हैं।

उन समयों में देववाणी वाले इन शास्त्रों में भूल हो जाने पर वे देव कुतुहल या रोष प्रकट कर सकते हैं । अतः स्वाध्याय के निमित आपत्ति न आवे इसके लिए ही वैसे समयों में(३२ अस्वाध्यायों में) स्वाध्याय का निषेध किया गया है । रुधिर पीप आदि की अस्वाध्याय आत्म(स्व) अस्वाध्याय कही गई है । यह निजी व्यक्तिगत अस्वाध्याय तीन या अनेक दिन तक निरंतर रह सकती है। इस कारण व्यवहार सूत्र उ. ७ तथा निशीथ सूत्र उ. १९ में परस्पर साधु साध्वी को सूत्रार्थ वाचना देने का विधान किया गया है । साथ

ही स्वतः अकेले को स्वाध्याय करने का निषेध किया है । निर्युक्ति भाष्य में स्वयं की खून रस्सी के विषय में शुद्धि करने एवं वस्त्र पट लगाकर परस्पर वाचना देने की स्पष्ट विधि बताई है।

इस प्रकार सूत्रों की अस्वाध्याय में भी आवश्यक सूत्र (प्रतिक्रमण) के पाठों (नमस्कार मंत्र, लोगस्स, णमोत्थुण आदि) का उच्चारण करना और अन्य आगमों की वाचना देना आगम और भाष्यों से सिद्ध है । तब अस्वाध्याय का जहाँ किंचित् भी सम्बन्ध नहीं है, उन धार्मिक क्रियाओं का निषेध करना कदापि उचित नहीं है। शुचि प्रधान समाज के निकट रहने से वीतराग धर्म में विकृति आई है कि धार्मिक क्रियाएं भी नहीं करना । किन्तु हमारा धर्म विनय मूल धर्म है, शुचिमूलक नहीं है ।

आगम में तो सात दिन की चौविहार तपस्या करने वाले निरंतर कायोत्सर्ग में लीन रहने वाले पडिमाधारी साधु को स्वमूत्र पान करने का भी विधान किया गया है । आचारांग सूत्र में गृहस्थों को शुचि धर्मी कहकर भिक्षुओं को मोयसमाचारी वाला कहा है अर्थात् आवश्यक होने पर वह मूत्र का उपयोग करने वाला होता है। वे शुचि धर्मी नहीं होते हैं ।

रात्रि में साधु को आहार या पानी सभी खाद्य या पेय पदार्थ रखने की मनाई है, निशीथ में उसका प्रायश्चित भी कहा गया है । तथा अन्य विलेपन के पदार्थों को भी रात्रि में रखने का निषेध एवं प्रायश्चित्त कहा गया है । साधु-साध्वी को परस्पर एक दूसरे का मूत्र लेकर पीना या अन्य उपयोग करने का भी विधान सूत्र में है । अतः शुचिधर्मी जनसाधारण की नकल करके धार्मिक क्रियाओं का एकान्त निषेध करना आगम सम्मत नहीं है ।

धुरंधर विजय-पण्डितजी ! हम तो संवत्सरी के दिन भी सम्पूर्ण धर्म आराधना का ऋजुस्वला बहिन को पूर्णतया निषेध करते हैं वह एक नमस्कारमंत्र भी नहीं गिन सकती ?

पण्डित जी-मुनिराज यह अर्वाचीन अशुद्ध नकल की हुई परम्परा है। आगमों से और उनके भाष्य व्याख्या ग्रन्थों से भी विरुद्ध है । उपर कहे गए राजेन्द्र कोष के स्पष्टीकरण से भी विरुद्ध है ।

पूज्य मुनिराज ! आप चिंतन करे कि पौषध, सामायिक या संयम लेने के बाद मासिक धर्म होने पर यह व्रत खण्डित नहीं होता है तो उसके करने का निषेध क्यों ?

स्वाध्याय करते समय तो यदि कोई अस्वाध्याय का हेतु बन जाए तो ज्ञात होते ही स्वाध्याय का त्याग कर दिया जाता है। किन्तु संयम का या सामायिक, पौषध, प्रतिक्रमण का त्याग नहीं किया जाता । अतः अस्वाध्याय का सम्बन्ध सूत्र पाठ के अध्ययन से ही है किंतु धार्मिक क्रिया से नहीं, ऐसा समझना चाहिए और लोकरुचि प्रवृत्ति को धर्म सिद्धांत में रूढ नहीं करना चाहिए । क्योंकि वैसा करने पर निष्प्रयोजन ही धर्म आराधना का अन्तराय लगता है, जो आगम विरुद्ध भी है ।

केवल मुनि- हाँ पण्डित जी ! वास्तव में ऐसा करने पर बहुत बडी अन्तराय लगती है । संवत्सरी महापर्व के दिन अट्ठम हो, किसी बहिन को प्रतिपूर्ण पौषध करना हो और उसे मासिक धर्म का अवसर आ जाए तो वह दिन भर एक नवकार मंत्र भी न गिने, कोई भगवान की स्तुति स्तवन भी नहीं कर सके, उपाश्रय मंदिर में पाँव भी नहीं रख सके, तो वह फिर दिन भर अव्रत में रहकर सावद्य कार्य करे या आलस्य करे और सम्पूर्ण धर्म आराधना से वंचित होकर इधर-उधर घर में चक्कर काटे यह कुछ भी उचित नहीं है । ऐसे नियम घड़ना सर्वज्ञों के विधानों को दूषित करना है । आगम में तो यथावसर मासिक धर्म में परस्पर वाचना देने लेने की भी छूट दे दी गई है। भाष्य में मंदिरमार्गी प्राचीन आचार्यों ने उसकी विधि भी बता दी है तब फिर स्वछंद बुद्धि से ऐसे नित्य नियम के संबंध में एकान्त निषेध करने में कोई भी लाभ नहीं है । नुकशान का कायदा चलाना सर्वथा अनुचित है ।

धुरंधर विजय- पण्डित जी ! किसी व्यक्ति का एक्सीडेंट हो जाए और उसके शरीर से घंटों तक खून बहता रहे तो क्या वह प्रभुभक्ति अथवा नमस्कार मंत्र आदि गिन सकता है ?

पण्डित जी- हाँ मुनिवर ! यही विवेक सीखने का है ऐसे समय में कोई धर्म सिद्धान्त प्रभु स्मरण आदि का एवं त्याग प्रत्याख्यान का,

पापों के त्याग का निषेध नहीं कर सकता । किसी को दीर्घ कालीन अशुचिमय रोग कोढ आदि हो जाए तो वह भी उस अवस्था में यथाशक्ति धर्म की आराधना कर सकता है इसका किसी भी ३२ या ४५ आगम में निषेध नहीं है ।

आगम की अस्वाध्याय का आशय तो इतना ही है कि आवश्यक सूत्र(प्रतिक्रमण) के पाठों को छोडकर अन्य सभी आगमों के मूल पाठ का उच्चारण अस्वाध्याय काल में नहीं करना। अतः सभी अस्वाध्यायों में आगम पाठ के उच्चारण के अतिरिक्त सामयिक, पौषध, व्याख्यान श्रवण, प्रतिक्रमण, गुरु दर्शन, जाप, ध्यान आदि अन्य कोई भी धर्माराधन की प्रवृतियाँ की जा सकती है ।

[४] ग्रंथों में मनघडंत कल्पनाओं का परिज्ञान :-

प्रश्न- अन्य मत के शास्त्रों में भी जिन मंदिर का कथन है अतः मंदिर पूजा प्राचीन है ?

उत्तर- अन्य मत के शास्त्रों का भी रचना समय जैन आगम लेखन काल के बाद का ही समझना चाहिए और उस काल में सभी लोगों ने अपने शास्त्रों में जो मन भाया वह करने का अधिकार रखा है। अतः अन्य मत के शास्त्रों का महत्त्व तो हमारे ग्रन्थों जितना भी नहीं है । उस मध्य काल में कई अयुक्त बातें ग्रन्थों में भरी गई है और मौका लगा तो पूर्वाचार्यों की रचनाओं में भी बेधडक प्रक्षेप करने की सत्ता रखी गई है ।

प्रश्न- इसके लिए उदाहरण दें -

उत्तर- **१.** रावण को तीर्थंकर गोत्र बांध कर चौथी नरक में जाना कह दिया जो आगम से एवं कर्म ग्रन्थ से भी विपरीत है । **२.** एक तीर्थ पर पांव धरे तो मोक्ष, एक मंदिर बनावे तो मोक्ष, वास्तव में यदि पैसों से ही धर्म या मोक्ष होता तो चक्रवर्ती नरक में क्यों जावे और धनवानों को साधुपन के कष्ट सहन करने की क्या जरूरत ? उस संपत्ति से मंदिर बना के मजे में मोक्ष प्राप्त कर लेनी चाहिए ।**३.** गौतम स्वामी के साथ १५ सौ साधुओं को केवल ज्ञान होना कह दिया जबकि भगवान के केवली साधु की संपदा ७०० की ही बताई

है । गणधरों के शिष्य भी भगवान की संपदा में गिने जाते हैं तभी १४००० साधु होते हैं । **४.** कल्प सूत्र को देखेंगे तो उसमें प्रक्षेपों और झूठी कल्पनाओं की मानों बाढ ही आ गई है । एक छेद सूत्र के एक अध्ययन के नाम से इतना बडा घोटाला भयंकर अपराध है। ऐसी करतूतों के करने वालों से इमानदारी की क्या आशा की जाय ? शास्त्र के नाम से इतना घोटाला करने वाले निर्युक्ति भाष्यों में मन-मर्जी मुताबिक कर बैठे उसमें तो आश्चर्य ही क्या है ? वास्तव में पर्यूषणा कल्प सूत्र के स्वतंत्र अस्तित्व का मलयगिरि आदि आचार्यों तक नामोनिशान भी नहीं था ।

प्रश्न- अच्छे प्रामाणिक ग्रन्थों में मूर्तिपूजा मंदिर का वर्णन है न ?

उत्तर- नंदी सूत्र में कहे गए श्रुत ज्ञान रूप ७२ शास्त्रों में से किसी में भी श्रावक साधुके द्वारा मूर्ति पूजा या मंदिर निर्माण का उल्लेख नहीं है । न ही किसी आचार शास्त्र में इस सम्बन्धी विधान है ।

उन ७२ शास्त्रों के अतिरिक्त अन्य कोई भी ग्रन्थ या व्याख्या आदि है वे सभी नंदी के बाद बने है यह निश्चित है । क्योंकि वे सभी स्वतंत्र ग्रन्थ रूप में बनाये गये है । नंदी कर्ता को एक पूर्व का ज्ञान था उन्होंने एक पूर्वधरों द्वारा रचित अनेक शास्त्रों को श्रुत में कहा है और ७२ नाम के बाद अंत करते हुए कहा कि जिस भगवान के शासन में जितने साधु हो उतने प्रकीर्णक श्रुत जानना । किन्तु निर्युक्ति भाष्य टीका आदि को श्रुत संख्या में नहीं कहा, न ही हिमवंत स्थविरावली आदि को श्रुत में कहा है। अतः ये सभी बाद की रचनाएँ है, यह स्पष्ट है । अन्यथा तो देवर्द्धि के द्वारा पूर्वधरों की रचनाओं को श्रुत में नहीं गिनाने में कोई कारण नहीं था। खुद की रचना को भी श्रुत में गिन लिया है ।

नियुक्तियों में चौदहपूर्वी भद्रबाहु को एवं वज्रस्वामी आदि को नमस्कार किया गया है । निर्युक्ति की चूर्णी करने वाले जिनदास गणि भी यही कहते है कि यहाँ प्रथम गाथा में निर्युक्तिकार महाराज सूत्रकर्ता श्री चौदह पूर्वी भद्रबाहु को प्रणाम करते हैं ।

शास्त्रोद्धारक पं. र. श्री पुण्यविजय जी लिखते है कि निर्युक्तियों की रचना के सम्बन्ध में प्रचलित घोटाला चूर्णिकार के समय नहीं

था। यह **विक्रम की तेरहवीं चौदहवीं शताब्दी** में नाम साम्यता से उठा हुआ घोटाला है । जो इतिहास की विकृतियों युक्त प्रचार से उत्पन्न हुआ है ।

प्रश्न– जिनदास गणी का समय कौन सा है ?

उत्तर– वीर निर्माण १२वीं १३वीं शताब्दि का माना जाता है ।

प्रश्न– कितने ही श्रावकों–साधुओं ने मंदिर बनाए ऐसा कई कथाओं में वर्णन आता है ?

उत्तर– नंदी में कहे गये शास्त्रों में करीब २००० पृष्ट जितनी कथाएँ है, किन्तु एक भी जगह साधु या श्रावक के द्वारा मंदिर बनाने या प्रेरणा करने का नामोनिशान भी नहीं है । तो बाद के रचे कथा ग्रन्थों में कहाँ से आवे ? स्वछंद मति कल्पित होने के सिवाय उसे कोई स्थान प्राप्त होने वाला ही नहीं है ।

प्रश्न– मंदिरमार्गी लोग हमें तो कहते है कि तुम पूर्वाचार्यों महापुरुषों के शास्त्रों को नहीं मानते यह ठीक नहीं। किन्तु वे स्वयं ४५–४५ ही क्यों कहते ?

उत्तर– हाथी के दांत खाने के अन्य और दिखाने के अन्य होते हैं । उसी तरह दूसरों पर आक्षेप करना हो जब तो वे सभी ग्रन्थ साहित्य को शास्त्र मानने का आग्रह करेंगे, किन्तु खुद ही अपने मुँह से ४५ शास्त्र कह कर हरिभद्र सूरी, देवेन्द्र सूरि, हेमचन्द्राचार्य, मलयगिरि रचित अनेक ग्रन्थों को आगम में नहीं गिनते । यह दुहरी चाल चलने की उनकी आदत बन गई है । कर्म ग्रन्थ, त्रिषष्टि श्लाका पुरुष चरित्र, परिशिष्ट पर्व, बृहत्संग्रहणी आदि को वे ४५ शास्त्र में नहीं गिनते हैं । फिर भी उन्हें कोई दोष नहीं लगता और ३२ आगम मानने वालों को वे अनेक ग्रन्थों के मानने का आग्रह एवं आक्षेप करते रहते हैं यह उन्हें दिया तले अंधेरा नहीं दिखने की स्थिति है ।

[५] निर्युक्तियों के कर्ता द्वितीय भद्रबाहू (१४ पूर्वी प्राचीन भद्र-बाहु नहीं) :-

जैन शास्त्रों के महान उद्धारक संशोधक साक्षर शिरोमणि मूर्तिपूजक समुदाय के पंडित रत्न **मुनि श्री पुण्यविजय जी म.सा.** ने

बृहत्कल्प भाष्य की प्रस्तावना में चर्चा प्रमाणों द्वारा यह स्पष्ट किया है कि "निर्युक्ति नामक व्याख्याओं के कर्ता प्रथम(प्राचीन) भद्रबाहु स्वामी नहीं थे" उसी प्रस्तावना से चर्चा प्रमाणों के कुछ अंश बहुत ही उपयोगी होने से गुजराती से हिन्दी भाषानुवाद एवं भावानुवाद करके यहाँ दिये जा रहे हैं ।

प्राचीन भद्रबाहु स्वामी १४ पूर्वी थे, उन्होंने तीन छेद सूत्रों (१. दशाश्रुतस्कंध २. बृहत्कल्प ३. व्यवहार)की रचना की है। वीर निर्वाण की दूसरी शताब्दि में हुए हैं । द्वितीय भद्रबाहु स्वामी ज्योतिष वेत्ता के रूप में प्रसिद्ध हुए । देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के बाद वीर निर्वाण ग्यारहवीं शताब्दि में हुए है, वराहमिहिर के बड़े भाई थे, वराही संहिता एवं भद्रबाहु संहिता के कर्ता भी ये दोनों भाई थे। भगवती सूत्र के अनुसार उस समय पूर्वज्ञान व्यवछिन्न हो चुका था।

यहाँ जो प्रमाण दिये जायेंगे वे वीर निर्वाण तीसरी शताब्दि और ग्यारहवीं शताब्दि के बीच की शताब्दियों के हैं :-

वंदामि भद्दबाहुं पाईणं, चरिम सगल सुयणाणिं ।
सुत्तस्स कारगमिसिं, दसासु कप्पे य ववहारे ।।

अर्थ– दशाश्रुतस्कंध, वृहत्कल्प और व्यवहार इन तीन सूत्रों की रचना करने वाले अंतिम श्रुत केवली प्राचीन भद्रबाहु को मैं वंदन करता हूँ ।

कोई भी व्यक्ति स्वयं को नमस्कार तो कर ही नहीं सकता है। इस प्रथम निर्युक्ति गाथा में १४ पूर्वी प्राचीन भद्रबाहु स्वामी को तीन सूत्रों का कर्ता विशेषण लगाकर वंदन किया गया है । अतः भद्रबाहु स्वामी के लिए प्राचीन विशेषण एवं तीन सूत्रों के कर्ता विशेषण लगाकर आदि मंगल रूप वंदन करने वाले श्रमण द्वितीय भद्रबाहु स्वामी है ।

इस निर्युक्ति गाथा की चूर्णीकार ने प्रारभ में यह कहा है कि अब भाव मंगल निर्युक्तिकार कह रहे हैं- **तत्थ भाव मंगल निज्जुत्तिकारो आह** ।यहाँ कोई दूसरी कल्पना को भी स्थान नहीं रहता है, क्योंकि चूर्णी करने वाले आचार्य भी यह स्वीकार कर रहे हैं कि यह गाथा निर्युक्तिकार की है और इसमें उन्होंने आदि मंगल रूप में सूत्र कर्ता प्राचीन भद्रबाहु स्वामी को वंदन किया है ।

अतः इस गाथा को प्रक्षिप्त भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि चूर्णिकार के समक्ष यह गाथा थी, उन्होंने निर्युक्तिकार से सूत्रकार का भिन्न होना स्पष्ट स्वीकार किया है । इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि चूर्णिकार के जमाने में यह भ्रम नहीं था कि सूत्र के और उसकी निर्युक्तियों के कर्ता एक ही व्यक्ति भद्रबाहु स्वामी है । क्यों कि ऐसी भ्रांत धारणा उस समय होती तो इस प्रथम गाथा की चूर्णि करने में वे चक्कर में पड जाते कि खुद को वंदन कैसे किया गया है? किन्तु यहाँ व्याख्या करते हुए चूर्णिकार ने किंचित भी उलझन में नहीं पडते हुए सरलता पूर्वक इस निर्युक्ति गाथा की चूर्णि कर दी है । इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि चूर्णिकार के समय यह घोटाला नहीं था कि निर्युक्ति कर्ता और सूत्र कर्ता एक ही व्यक्ति है और वह भी १४ पूर्वी भद्रबाहू स्वामी ही है । वास्तव में यह घोटाला चूर्णिकार के बहुत वर्षों बाद नाम साम्यता के भ्रम से पड़ा हुआ है।

(२) उत्तराध्ययन सूत्र के पाँचवें अध्ययन की निर्युक्ति गाथा –

सव्वे एए दारा मरणविभत्तिए वण्णिया कमसो ।
सगल निउणे पयत्थे, जिण चऊद्दसपुव्वी भासंति । २३ ।

अर्थ– मरण विभक्ति सम्बन्धी अनेक द्वारों से क्रमशः यह वर्णन किया गया है किन्तु और ज्यादा संपूर्ण विवेचन तो तीर्थकर एवं १४ पूर्वधारी ही कर सकते है ।

ऐसा कथन करने वाले स्वयं १४ पूर्वी तो नहीं हो सकते । इस निर्युक्ति गाथा की टीका करने वाले शांत्याचार्य के समय नाम साम्यता का भ्रम प्रचलित हो चुका था, इसीलिये उन्होंने इस, उक्त निर्युक्ति गाथा के संबंध में शंका उपस्थित की है कि निर्युक्तिकार स्वयं १४ पूर्वी होते हुए भी ऐसा क्यों कह रहे है । फिर वैकल्पिक समाधान दिये है कि १. अपने से भी विशिष्ट १४ पूर्वी के लिए ऐसा कह दिया होगा, २. अथवा तो द्वार गाथा से लेकर यहाँ तक की सब गाथा भाष्य गाथा होगी किन्तु निर्युक्ति गाथा नहीं होगी, अतः शंका नहीं करनी चाहिये

ऐसा वैकल्पिक समाधान उपयुक्त नहीं है, क्यों कि दशा-श्रुतस्कंध के चूर्णिकार ने उक्त गाथा को निर्युक्तिकार की होना

स्वीकार करते हुए व्याख्या की है । उन्हें व्याख्या करते समय किंचित भी संदेह उत्पन्न नहीं हुआ । अतः टीककार का संदेह एवं वैकल्पिक समाधान भ्रमित घोटाले के प्रभाव से युक्त है ।

(३) सूत्रकृतांग सूत्र के निर्युक्तिकार ने पुडरीक पद का निक्षेप निरूपण करते हुए द्रव्य निक्षेप में तीन मत कहे हैं । वे तीन मत बृहत्कल्प सूत्र की चूर्णी अनुसार स्थविर आर्य मंगू, आर्य समुद्र और आर्य सुहस्ती इन तीन स्थविरों की अलग अलग मान्यता रूप है । ये तीनों आचार्य १४ पूर्वी भद्रबाहु से पश्चात्वर्ती है और द्वितीय भद्रबाहु से पूर्ववर्ती है । इन तीनों की मान्यता का संकलन निर्युक्ति में होने से भी यही सिद्ध होता है कि इन आचार्यों के पहले निर्युक्ति की रचना नहीं हुई किन्तु बाद में ही निर्युक्तियों की रचना हुई ।

(४) गोष्ठामाहिल निन्हव और दिगम्बर मत के उत्पत्ति की हकीकत भी निर्युक्ति में बताई गई है । ये दोनों घटनाएँ प्राचीन भद्रबाहु और आर्य रक्षित से भी बाद के जमाने की है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि ये निर्युक्तियाँ प्राचीन १४ पूर्वी भद्रबाहु स्वामी की नहीं है।

मुनि श्री पुण्यविजयजी के मन्तव्यों का एक पेरा यहाँ उनकी भाषा में ही उद्धृत करना उपयुक्त होगा जिसका सार यह है कि भ्रम एवं दुराग्रह से निर्युक्तियों को १४ पूर्वी भद्रबाहु स्वामी की मानने पर अनेकों विषयों में कई शंकाएं होती है, जिसके समाधान के लिये व्यर्थ की कई दूषित कल्पनाएँ करनी पड़ती है । ऐसा नींद बेचकर उजागरा मोल लेने में कुछ भी सार नहीं है । अतः निर्युक्तियों के लिए १४ पूर्वी भद्रबाहु स्वामी की रचना मानने की खोटी पकड़ को ही छोड़ देनी चाहिये । नाम साम्य वाले द्वितीय भद्रबाहु स्वामी की रचना है, ऐसा सत्य ग्रहण कर लेना चाहिये । ऐसे सत्य के ग्रहण कर लेने पर स्वतःसारी समस्याएँ सुलझ जाती है । अथवा तो वैसी कोई उलझने खड़ी ही नहीं होती है । इस सार वाला वह गुजराती भाषा का पेरा इस प्रकार है–

'अहीं प्रसंग वशात् एक बात स्पष्ट करी लइए के चौदपूर्वी भगवान भद्रबाहु ना जमाना ना निर्युक्ति ग्रन्थों ने आर्यरक्षित ना युग मां व्यवस्थित कराय अने फरीथी पछीना युग मां व्यवस्थित करवामां आवे, एटलूँ ज

नहिं पण ए निर्युक्ति ग्रन्थों मां उत्तरोत्तर गाडा ने गाडा भरी ने वधारो घटारो करवा मां आवे, आ जात नी कल्पना करवी जराय युक्ति संगत नहीं । कोई पण मौलिक ग्रन्थ मां आवा फेर फार कर्या पछी ते ग्रन्थ ने मूल पुरूष ना नाम थी प्रसिद्ध करवा मां खरेज एना प्रणेता मूल पुरुष नी तेमज पछी ना स्थविरों नी प्रामाणिकता दूषित ज थाय छे । (अतः बाद के स्थविर की रचना मानने से ये सारी कल्पनाएँ नहीं करनी पड़ती है ।) वस्तुतः विचार करवा मां आवे तो कोई पण स्थविर महर्षि प्राचीन आचार्यना ग्रन्थ ने अनिवार्य रीते व्यवस्थित करवानी आवश्यकता ऊभी थतां तेमां सम्बन्ध जोडवा पूरतो घटतो उमेरो के सहज फेर फार करे ते सह्य होई सके । पण तेने बदले ते मूल ग्रन्थकार ना जमानाओ पछी बनेली घटनाओ ने के तेवी कोई बीजी बाबतों ने मूल ग्रन्थ मां नवेसर पेसाडी दे ऐथी ऐ ग्रन्थ नु मौलिक पणु, गौरव, के प्रामाणिकता, वधसे खरा? (बढेगी क्या?) आपणे निर्विवाद पणे कबूल करवूं जोइये के मूल ग्रन्थ मां एवो नवो उमेरो क्यारेय वास्तविक अने मान्य न करी शकाय । कोई पण महर्षि ऐवो उमेरो करे पण नहीं, अने ते जमाना ना बीजा स्थविरों पण तेने स्वीकारे नहीं । अे निर्युक्तियों ने चौदपूर्वी भद्रबाहु नी रचना मानवा थी ज अेवी अघटित दूषित कल्पनाओं करवी पडे ।'

(५) निर्युक्तिकार १४ पूर्वी भद्रबाहु स्वामी होते तो निर्युक्तियों में निम्न वर्णन नहीं मिलने चाहिये थे जब कि वे वर्णन आज मिल रहे है । यथा- **१.** आवश्यक निर्युक्ति गाथा ७६४ से ७७६ तक में :- स्थविर भद्रगुप्त (वज्र स्वामी के गुरु) आर्य सिंह गिरि, श्री वज्र स्वामी, श्री तोसलीपुत्र, आचार्य आर्य रक्षित, आर्य फल्गुरक्षित आदि ये सब प्राचीन भद्रबाहू स्वामी के बाद के आचार्य है, इनके सम्बन्धी वर्णन उक्त गाथाओं में हैं । **२.** पिंड निर्युक्ति गाथा- ४९८ में पादलिप्ताचार्य सम्बन्धी वर्णन एवं गाथा ४०३-४०४ में वज्रस्वामी के मामा आर्यसमित द्वारा बह्मद्वीपिक शाखा की उत्पत्ति का वर्णन है । इसका तात्पर्य यह होता है कि बह्मद्वीपिक शाखा की उत्पत्ति के बाद में ये निर्युक्तियाँ रची गई है। **३.** उत्तराध्ययन सूत्र की निर्युक्ति गाथा १२० में- कालकाचार्य सम्बन्धी घटना, का उल्लेख हैं । **४.** आवश्यक निर्युक्ति गाथा- ७६४ से ७६९ तक में वज्रस्वामी का गुणानुवाद करते हुए पुनः पुनः उन्हें नमस्कार करने

का वर्णन है जो १४ पूर्वी भद्रबाहु स्वामी के लिए सर्वथा अनुपयुक्त ठहरता है । क्योंकि वज्रस्वामी उनके गुरु या रत्नाधिक नहीं थे किन्तु शिष्यानु-शिष्य थे । वे नमस्कार वाली गाथाएँ इस प्रकार है -

जो गुज्झएहिं बालो, निमंतिओ भोयणेण वासंते ।
णेच्छइ विणीय विणओ, तं वइर रिसिं नमंसामि ।७६५।

जो कन्नाइ धणेण य, णिमंतिओ जुवणम्मि गिहीवइणा ।
णयरम्मि कुसुमणासे, तं वइररिसिं नमंसामि ॥

जेणउद्धरिया विज्जा, आगास गमा महापरिण्णाओ ।
वंदामि अज्जवइरं, अपच्छिमो जो सुयहराणं ।७६९।

६. आवश्यक निर्युक्ति गाथा ७७३ और ७४ में बताया कि अनुयोग का प्रथक्करण आर्य रक्षित के समय हुआ । वज्र स्वामी तक नहीं हुआ था । भूत काल वाची वाक्य है । इनसे भी यही सिद्ध होता है कि निर्युक्तियाँ प्राचीन भद्रबाहु की रचना नहीं है ।

७. आवश्यक निर्युक्ति ७७८ से ८३ तक और उत्तराध्ययन निर्युक्ति गा. १६४ से १७८ तक में सात निन्हवों और आठवाँ दिगंबर मत की उत्पति एवं उसकी मान्यताओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। जिसमें वीर निर्वाण के ७०० वर्ष बाद तक के प्रसंग एवं घटित घटनाएँ भी है ।

सारांश :- निर्युक्तियों की रचना भद्रबाहुस्वामी ने की, ऐसा जो इतिहास प्रसिद्ध है एवं ग्रन्थों मे व्याख्याओं में उल्लिखित है उसका किंचित भी विरोध नहीं है रचनाकार का नाम जो प्रसिद्ध है वह सत्य है उसे जुठलाने की कोई आवश्यकता नहीं है । तथा वराहमिहिर का भाई होना, भद्रबाहुसंहिता के रचनाकार होना आदि भी निर्युक्तिकार भद्रबाहु के जीवन के साथ जो संबंधित प्रसंग उपलब्ध है वे भी निर्युक्तिकार भद्रबाहु के साथ मानने में स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है । किन्तु नाम साम्यता से निर्युक्तिकार भद्रबाहु से सेकड़ों वर्ष (८८०) पूर्व हुए प्राचीन १४ पूर्वी भद्रबाहु के लिये, निर्युक्ति कर्ता का सम्बन्ध जोड कर जो घोटाला हुआ है वह किंचित् भी उचित और न्याय संगत नहीं है ।

स्वयं निर्युक्तियों का जो कलेवर(विषय वर्णन) है वह भी इस

बात की साक्षी दे रहा है कि नाम साम्यता से, १४ पूर्वी भद्रबाहु से जोड़ा गया निर्युक्ति कर्ता का सम्बन्ध, स्पष्ट ही गलत और भ्रम पूर्ण है ।

१. यह घोटाला शास्त्र लेखन के समय नहीं था क्योंकि उनशास्त्रों में प्राचीन भद्रबाहु की दस निर्युक्तियों का कहीं उल्लेख नहीं है ।

२. निर्युक्ति कर्ता द्वितीय भद्रबाहु के समय भी यह घोटाला नहीं था। उन्होंने तो तीन छेद सूत्र कर्ता प्राचीन भद्रबाहु स्वामी को प्रथम गाथा में आदि मंगल के लिये वंदन किया है ।

३. चूर्णीकर्ता के समय तक भी यह नाम साम्यता के भ्रम का घोटाला नहीं हुआ था । क्यों कि चूर्णिकार ने बिना किसी हिचकिचाहट के स्पष्ट अर्थ किया है कि अब दशाश्रुतस्कंध सूत्र के निर्युक्तिकार आदि मंगल रूप में उस सूत्र सहित तीन छेद सूत्र के कर्ता प्राचीन भद्रबाहु स्वामी को नमस्कार करते हैं ।

इन्हीं कारणों से मूर्तिपूजक प्रसिद्ध आगमोद्धारक विद्वान मुनि श्री पुण्य विजय जी म.सा. ने इसे नाम साम्यता से उत्पन्न भ्रमित घोटाला कहा है और वास्तव में इस घोटाले का निर्युक्ति, भाष्य एवं चूर्णिकारों के जमाने तक कोई अस्तित्व ही नहीं था । बाद में टीकाकारों के जमाने में जो कि शिथिलाचार का और खोटे हथकंडे करने के उत्कृष्ट माहोल का जमाना था उस समय में यह घोटाला भ्रम से उत्पन्न हुआ होगा । अथवा तो किसी ने संकल्प पूर्वक(कल्प सूत्र के घोटाले के समान जानबूझकर) भी चलाया हो तो भी असंभव नहीं है ।

उपलब्ध निर्युक्ति ग्रन्थों में- १. वज्र स्वामी को सभक्ति बारंबार किया गया नमस्कार, **२.** स्थूल भद्र के लिये **भगवं** शब्द का प्रयोग (उत्तराध्ययन निर्युक्ति) **३.** अनेक घटनाओं के घटित होने का भूत कालीन वाक्यों में प्रयोग,(आगम में भावी तीर्थकर श्रेणिक का वर्णन है किन्तु वहाँ भविष्यकाल की क्रियाओं का प्रयोग है और निर्युक्ति में उन वर्णनों घटनाओं के प्रकरण में भूत कालीन क्रिया लगी है यथा- अनुयोग का प्रथक्करण किया, निन्हव इस प्रकार हुए, अमुक मत निकला, इत्यादि ।

यदि किसी को भविष्य की बातों का ज्ञान है, तो भी उसका कथन करते समय वह भूतकाल की क्रिया नहीं लगायेगा, किन्तु भविष्य काल की क्रिया लगाकर ही अपने ज्ञान को व्यक्त करेगा। जब कि निर्युक्तियों में अनेकों वर्णन भूतकालीन क्रिया के साथ उल्लिखित है । अतः निर्युक्ति कर्ता के रूप में भद्रबाहु स्वामी का जो नाम प्रसिद्ध है वह इन वर्णित घटनाओं के पूर्व का व्यक्ति नहीं हो सकता बाद का व्यक्ति ही हो सकता है ।

निर्युक्तियों में वर्णित विषय और अनेक आचार्यों के जो प्रसंग हैं वे प्राचीन भद्रबाहु के बाद में हुए हैं और उनके लिए भूतकालीन प्रयोग है । अतः उन सभी प्रसंगों से बाद में हुए भद्रबाहुस्वामी ही इन निर्युक्तियों के रचनाकार सिद्ध होते हैं यह ध्रुव सत्य है और वे है द्वितीय भद्रबाहु स्वामी, जो कि वराहमिहिर के भाई थे और भद्रबाहु संहिता के रचनाकार भी थे ।

१४ पूर्वी प्राचीन(प्रथम) भद्रबाहु स्वामी ने निर्युक्ति ग्रन्थों की रचना नहीं की थी, किन्तु तीन छेद सूत्रों के कर्ता वे थे, यह बात दशाश्रुत स्कंध सूत्र की प्रथम निर्युक्ति गाथा से स्पष्ट है ।

भ्रमित घोटाले में १४ पूर्वी भद्रबाहु स्वामी को निर्युक्ति कर्ता कहने के साथ जो वराहमिहिर का भाई कहा जाता है और उन दोनों से संबंधित सारी जीवन घटना कही जाती है वह भी सफेद झूठ के समान स्पष्ट ही असत्य है । क्योंकि वराहमिहिर ने जो 'पंचासिका' ग्रन्थ बनाया है उसके अंत में उसका शक संवत भी निर्दिष्ट है और वह समय है देवर्द्धिगणी के बाद का एवं द्वितीय भद्रबाहु के समय का अर्थात् वीर निर्वाण ग्यारहवीं शताब्दि का है ।

उपसंहार - इस प्रकार आगम प्रमाणों से एवं अकाट्य तर्क विचारणाओं से एवं मूर्तिपूजक विद्वान मुनि श्री पुण्य विजय जी के उक्त मन्यव्यों से यह सत्य सिद्ध है कि -निर्युक्ति कर्ता भद्रबाहु स्वामी है इसमें किंचित भी संदेह नहीं है किन्तु वे १४ पूर्वी प्राचीन (प्रथम) भद्रबाहु स्वामी नहीं होकर वराहमिहिर के भाई द्वितीय भद्रबाहु स्वामी है ।

इस सत्य को स्वीकार कर लेने पर कई उलझने समाप्त हो जाती

है और कई शंकाओं की जड़ ही समाप्त हो जाती है । वास्तव में भ्रमित मान्यताएँ अनेक असमाधित संदेहों की जननी होती है ।

चिंतनशील विद्वानों को परंपराओं का दुराग्रह और व्यामोह छोड़कर प्राप्त होने वाले सत्य तत्त्व को सरलता के साथ स्वीकार करना चाहिए । किन्तु प्रदेशी राजा के द्वारा दिये गये बाप-दादों की परंपरा व्यामोह के तर्क में नहीं फँसना चाहिये और केशी श्रमण के द्वारा दिये उत्तर में निर्दिष्ट लोहवाणिए के साथी भी नहीं बनना चाहिये।

अतः आज से ही अपनी धारणा मान्यता को परिवर्तित कर लेना चाहिये कि -निर्युक्ति कर्ता द्वितीय भद्रबाहु स्वामी है और छेद सूत्र कर्ता प्रथम(प्राचीन) भद्रबाहु स्वामी है । निर्युक्तियों की रचना आगम लेखन एवं नंदी रचना के बाद में ही हुई है, पहले नहीं हुई हैं।

[६] निर्युक्ति ग्रन्थ और संख्याता निर्युक्तियाँ (हार्द चिंतन) :-

निर्युक्तियाँ द्वितीय भद्रबाहू स्वामी द्वारा रचित है ऐसा मान लेने पर एक शंका यह खड़ी होती है कि नंदी सूत्र एवं समवायांग सूत्र में संखेज्जाओ निज्जुत्तिओ पाठ आता है जिससे यह मानना चाहिये कि नंदी के पूर्व भी निर्युक्तियों का अस्तित्व था ।

समाधान :- समवायांग व नंदी के कथित निर्युक्ति शब्द को किसी व्यवस्थित रचित ग्रन्थ का सूचक न समझ कर, उस सूत्र से संबंधित भिन्न-भिन्न आचार्यों की अर्थ प्रतिपादक युक्ति की अपेक्षा समझना चाहिये । हमारे आगम और उनका अर्थ जब मौखिक परंपरा में था, आगम के अर्थों को बहुश्रुत भगवंत अनुयोग पद्धति से शिष्यों को समझाते थे, वे ही अर्थ प्रतिपादक युक्तियाँ नंदी में निर्युक्ति शब्द से सूचित है । उन अनेक बहुश्रुत भगवंतों की अर्थ प्रतिपादिका युक्तियाँ-निर्युक्तियाँ सभी मिलाकर संख्याता हो जाती है । इस अपेक्षा से यहाँ संख्याता समझना चाहिये । इन्हें ग्रंथ रूप में समझ लेना उपयुक्त नहीं है कि "आचारांग आदि अंग सूत्रों पर प्रत्येक पर संख्याता(सेकड़ों हजारों) निर्युक्ति ग्रन्थ रचे हुए थे" क्योंकि तब तो यह प्रश्न होगा कि वे सेकड़ों हजारों किसके रचे हुए थे और वे सब कहाँ गये ? जब आगम लिपिबद्ध हुये तो उनका भी लेखन

हुआ होता एवं श्रुतज्ञान में उन ग्रन्थों के नाम का एक विभाग होता तथा फिर बाद में आचार्यों को व्याख्या ग्रन्थ रचने की जरूरत ही नहीं पड़ती । क्योंकि सेकड़ों हजारों थे ही । और फिर भी कोई रचते तो स्पष्टीकरण भी करते कि हम अमुक अमुक आचार्यों की निर्युक्तियों के आधार से रचना कर रहे हैं, इत्यादि । किन्तु वास्तव में ऐसा कुछ भी हुआ नहीं है ।

संख्याता निर्युक्तिग्रंथ एक-एक सूत्र पर मानना समझना कदापि उचित नहीं हो सकता है । मौखिक व्याख्या करने के प्रकार प्रत्येक सूत्र के संख्याता होते है यही समझाने के लिये **संखेज्जाओ निज्जुत्तिओ** प्रयोग है और ऐसा समझना ही उचित प्रतीत होता है ।

अतः निर्युक्तियों की स्वतंत्र व्याख्या ग्रन्थ रूप रचना और उनके रचनाकार जिनकी निर्युक्तियाँ आज ८-९ उपलब्ध है, आगम लेखन व नंदी रचना के बाद में हुई है अन्यथा नंदी में व्याख्या ग्रन्थ का श्रुतज्ञान में एक स्वतंत्र विभाग होता । क्यों कि देवर्द्धिगणी व उनके समय के एक पूर्वधरों की रचना रूप नंदीसूत्र, प्रकीर्णक सूत्र आदि को श्रुत ज्ञान में कहा गया है, तो उनसे पहले हुए अधिक पूर्वधरों की रचनाएँ रूप निर्युक्तियाँ आदि यदि उपलब्ध होती तो उनको श्रुत ज्ञान में अलग विभाग करके अवश्य बताते किंतु ऐसा है नहीं ।

अतः नंदी कथित संख्याता निर्युक्तियाँ और उपलब्ध निर्युक्ति ग्रन्थों में भिन्नता समझनी चाहिए । निर्युक्ति ग्रन्थ तो एक एक शास्त्र पर एक ही होता है वह भी आज ५-७ शास्त्र पर उपलब्ध है।जब कि नंदी एवं समवायांग सूत्र में संख्याता निर्युक्तियाँ एक एक अंग आगम की कही गई है । जिसमें से ५-५ भी उपलब्ध नहीं हैं ।

उपलब्ध निर्युक्ति व्याख्या ग्रन्थ और नंदी में कही गई संख्याता (हजारों) निर्युक्तियों का तात्पर्य अलग-अलग समझना चाहिये।

सार :- १. निर्युक्ति व्याख्या ग्रन्थ द्वितीय भद्रबाहु स्वामी द्वारा रचित ग्रन्थ है २. नंदी सूत्र और समवायांग सूत्र में प्रत्येक अंग आगम की संख्याता निर्युक्तियाँ-मौखिक समझाई जाने वाली प्रत्येक

वाचनाचार्य की विभिन्न पद्धतियों को कहा गया है । जिन शासन में अनेकों वाचनाचार्य होने से ही इन निर्युक्तियों को संख्याता कहा गया हैं ।

[७] महानिशीथ सूत्र एक परिचय :-

[महानिशीथ सूत्र का परिचय कराने के लिये उसके मूलपाठ के विषयों का उद्धरण देकर उसके उपर की गई मंदिरमार्गी विद्धान मुनिश्री कल्याणविजय जी की टिप्पणी भी साथ में दी जा रही है, इतिहास शोध के पाठक ध्यान से पढेंगे।]

(१) 'सबलों (शिथिलाचारियों) के सम्बन्ध में नहीं लिखा जाता, क्योंकि ग्रन्थ का विस्तार हो जाने का भय है, भगवान ने भी इस प्रसंग में कुशीलादिकों का अधिक वर्णन नहीं किया ।'

इत्यादि वचनों का सार देखने से यही ज्ञात होता है कि उपलब्ध महानिशीथ, सूत्र नहीं बल्कि एक प्रबन्ध ग्रन्थ है । सूत्रकार सूत्रों में इस प्रकार कभी नहीं लिखते कि 'भगवान ने भी नहीं किया' यह कथन तो महानिशीथ की असौत्रिकता प्रमाणित करता है । जो सूत्र गणधर रचित होता है उसमें यह कभी नहीं होता कि 'भगवान ने भी अधिक नहीं कहा' । इसलिए यही कहना पड़ता है कि महानिशीथ एक अर्वाचीन ग्रन्थ है, गणधर रचित शास्त्र नहीं है ।

इस तीसरे अध्ययन के अंत में कहा है कि 'बहुतेरे श्रुतधरों ने सम्मिलित होकर अंग उपांगात्मक द्वादशांग श्रुत समुद्र में से अंग उपांग श्रुतस्कंध अध्ययन उद्देशकों का चयन करके कुछ सम्बन्धित पाठ लेकर इसे व्यवस्थित कर लेखबद्ध किया है । अपना काव्य नहीं किया(अपना राग नहीं अलापा है)'। **पृष्ठ-९१, प्रबंध पारिजात**

(२) चौथे अध्ययन के अंत में कहा है- यहाँ चौथे अध्ययन में कई सैद्धान्तिक विद्वान कतिपय अलापकों पर श्रद्धा नहीं करते और उनके श्रद्धा न करने से हमको भी उन पर श्रद्धा नहीं होती ऐसा हरिभद्र सूरि कहते हैं । परन्तु सारा चौथा अध्ययन अथवा अन्य अध्ययन ऐसे नहीं है अर्थात् चौथे अध्ययन के कुछ आलापक अश्रद्धेय हैं । क्यों कि स्थानांग समवायांग जीवाभिगम पन्नवणा आदि सूत्रों में ऐसी बातें कहीं भी नहीं लिखी है । जैसे प्रतिसंतापस्थल, आस्थित

तद्गुफावासी मनुष्य के रूप में परमाधर्मिकों का सात आठ बार उत्पन्न होना, कठोर वज्रशिलापुड़ों के बीच में पीडित होने पर भी एक वर्ष के पहले प्राणों का न निकलना इत्यादि । किन्तु वृद्धों का कथन तो यह है कि यह सूत्र आर्ष है । इसमें कुछ भी विकृति प्रविष्ट नहीं हुई, इस श्रुतस्कंध में भरपूर अर्थ भरे पडे हैं । और इसमें विशिष्ट प्रकार के गणधरोक्त वचन है । इसलिये इस विषय में कुछ भी शंका नहीं करनी चाहिये ।'एक नहीं पच्चासों बातें इस तरह की है जो अन्य सूत्रों से प्रमाणित नहीं की जा सकती इसका प्रायश्चित्त निरूपण तो छेद सूत्रों से मेल ही नहीं खाता । इससे भी प्रमाणित होता है कि महानिशीथ खंडित महानिशीथ का अवशेष नहीं किन्तु एक स्वतन्त्र कृति है ।'- **पृ.१२२ प्रबंध पारिजात ।**

(३) जहाँ आवश्यक चूर्णी में प्रायश्चित्त का नाम ही नहीं था, वहाँ २०० वर्ष बाद निशीथ विशेष चूर्णी में लघुमास प्रायश्चित्त आया। (प्रतिक्रमण के बाद जहां चैत्य हो और वंदन नहीं करे) और प्रतिक्रमण के प्रारंभ में चैत्य वंदन का कोई सूचन तक भी नहीं था, जो महानिशीथ में आ गया कि बिना चैत्यवंदन के प्रतिक्रमण प्रारंभ करे तो उपवास का प्रायश्चित्त ।

मौलिक छेद सूत्रों में देव(चैत्य) वंदन करने या नहीं करने की कहीं कोई चर्चा ही नहीं है । तब प्रायश्चित्त की बात ही कैसी ? आगे चलकर वि.सं.११वीं सदी के बाद की समाचारियों में ७ बार चैत्य वंदन करना निश्चित हुआ ।

त्रिकाल चैत्य वंदन न करे तो उपवास का प्रायश्चित्त और दूसरी बार गलती करे तो छेद का प्रायश्चित्त, तीसरी बार मूल प्रायश्चित्त और अविधि से करे तो पारांचित प्रायश्चित्त ।-**अध्ययन ६ में ।**

(४) भगवान के मेरु पर्वत को हिलाने का कथन **अध्ययन -४ में** है।

(५) अध्ययन ६ में कैसे गुरु को गच्छपति बनाना विस्तार से लक्षण गुण दिये है । इस अध्ययन में चैत्य वास की उत्पति का विस्तृत वर्णन है । प्रायश्चित्त वर्णन भी है ।

(६) जो कोई हरियाली, बीज, पुष्प या फल का पूजार्थ, महिमार्थ या शोभार्थ संघट्टा करे, संघट्टा करावे, उक्त हरितादि का छेदन करे

दूसरों से करावे **संघट्टन छेदन करने वालों का अनुमोदन करे** तो इन सर्व स्थानों में गाढ़ आगाढ़ भेद से यथाक्रम से उपस्थापना, छट्ठ, चउत्थ भक्त, आयंबिल, एकासन, निवी **प्रायश्चित्त देना ।**

(७) महानिशीथ के निर्माता यदि सुविहिताचार्य होते तो उपधान के अंत में जिन चैत्य में नंदी की क्रिया कर **श्वेत ताजे पुष्पों की माला 'जिन' के पूजा देश से अपने हाथों में लेकर गृहस्थ के गले में पहनाने का विधान कभी नहीं करते** । इससे ज्ञात होता है कि रचियता स्वयं शिथिलाचारियों की पंक्ति के विद्वान थे ।[शिथिलाचारियों को भी अन्य शिथिलाचारियों की कई प्रवृतियाँ पसंद नहीं होती है तो ये उसका जिक्र जोरशोर से करते है और ऐसा आज भी देखा जाता है। वैसा ही कथन लगभग महानिशीथकार ने भी किया है ।]

(८) विचित्र प्रायश्चित्त- जिन वंदन या प्रतिक्रमण करने वालों के बीच में से बिल्ली निकल जाय तो उन सभी साधुओं को लोच करना चाहिए और कठोर तप करना चाहिए । अगर यह प्रायश्चित्त न करे तो उसे गच्छ से बाहर कर दिया जाय ।

पाँव में जूते पहन कर घूमे तो नई दीक्षा । जूते न रखे तो क्षपण (बेला)। देव वंदन बिना प्रतिक्रमण करे तो उपवास । आवश्यक प्रसंग पर जूते न पहने तो बेला । रात्रि में प्रथम प्रहर में प्रतिक्रमण के बाद स्वाध्याय न करे तो ५ उपवास । पहला प्रहर पूरा होने के पहले संथारा आदेश ले तो बेला । आदेश बिना सोवे तो उपवास। उत्तरपट्टे बिना संथारा करे तो उपवास । दुपट्ट संथारा करे तो उपवास।

सोते समय आयरिय उवज्झाए का पाठ न करे, कान में रूई न डाले, सागारी संथारा पच्चक्खाण न करे तो प्रत्येक में नई दीक्षा। फिर परम मंत्राक्षरों से शरीर की १२ भावना भाकर सर्प सिंह हाथी दुष्ट प्रांत वाणव्यंतर पिशाचादि से रक्षा न करे तो नई दीक्षा ।सुख साधनों का उपयोग नहीं किये जाने पर उन्हें कोई प्रायश्चित्त नहीं लगता है । तो उपसर्ग दूर करने के कार्य और जूते पहनने आदि कार्य नहीं करने पर प्रायश्चित्त कैसा ? यह विधान करना अनागमिक है। उत्तरपट्टा भी पूर्व काल में उपधि में नहीं था । महावीर निर्वाण के सैकड़ों वर्षों बाद इसे स्थान मिला है । अतः उसका भी प्रायश्चित्त

कैसा ? १२ भावना न भावे तो २५ आयंबिल का प्रायश्चित्त और प्रायश्चित्त न करे तो ५ उपवास । रात्रि में छींक खांसी आदि आवे तो एक बेला। दिन रात में कभी हास्य, क्रीडा, कंदर्प, नास्तिक वाद की बातें करे तो नई दीक्षा । तेउकाय, अपकाय का संघट्टा हो जाय तो २५ आयंबिल ।

स्त्री संबंधी सेवन का प्रायश्चित्त- यदि महातपस्वी हो तो उसे ७० मास खमण ७० अर्धमास खमण ७० पचोले ***यावत्*** उपवास, आयं बिल, एकलठाणा, निवी, एकासन सभी ७०-७०।ये सारे विधान अन्य किसी सूत्र में नहीं हुए है ।

(९) यह प्रायश्चित्त विधान कब तक चलेगा ? आचारांग सूत्र रहेगा तब तक उक्त प्रायश्चित्त पद्धति भी चलती रहेगी । प्रायश्चित्त सूत्र का विच्छेद होने पर ७ दिन में चन्द्र सूर्य की कांति कम होगी । आचार्य, महत्तर और प्रवर्तिनी को इसका(इन सभी प्रायश्चित्तों का) चार गुना प्रायश्चित्त समझना।''यह विधान भी आगमिक नहीं है ।

(१०) हे भगवान् कुगुरु कब होंगे ? -साडे १२ सौ वर्ष बीतने पर कुगुरु प्रगट होंगे । हे भगवन् कोई गणी प्रमादी हो जाय आवश्यक कार्य में, तो क्या करना ? उत्तर- उसे अवंदनीय ठहराना । निष्कारण क्षणभर भी प्रमाद करे उसका यह प्रायश्चित्त है ।

विक्रम की ८वीं सदी(वीर निर्वाण १२५०) जैन श्रमणों के शैथिल्य का प्रधान समय था । श्री धर्मदासगणी की उपदेशमाला, हरिभद्र सूरि के ग्रन्थ और महानिशीथ के अमुक लेखों से सिद्ध होता है कि वह समय शिथिलाचारियों के प्राबल्य का समय था ।

(११) अध्ययन ८- हे भगवन् आचार्यों को कितना प्रायश्चित्त आता है ? उत्तर- उसी अपराध में १७ गुना प्रायश्चित्त । यदि शील में स्खलना वाले हों तो उन्हें तीन लाख गुणा प्रायश्चित्त आवे ।

(१२) अध्ययन दूसरे में- स्त्री की योनि में हर वक्त ९ लाख समुर्च्छिम पंचेन्द्रिय जीव रहते हैं । एक ही बार में व्यक्ति उन जीवों का नाशक बनता है । सर्व केवली उन जीवों को देखते हैं । और उसके आगे की गाथा में कह दिया कि- वे जीव केवल ज्ञान का विषय मात्र है । पर केवली उन्हें देखते नहीं हैं । अवधिज्ञानी जानते

हैं, पर देखते नहीं । मनपर्यव ज्ञानी जानते भी नहीं, देखते भी नहीं।

(१३) सूक्ष्म पृथ्वीकाय को किलामना हो तो केवली उसे अल्पारंभ कहते हैं और जीव का विनाश संभव हो तो महारंभ कहते हैं ।

(१४) **तीसरे अध्ययन में**- जिसे रात-दिन घोखने पर आधा श्लोक भी याद न हो उसे क्या करना चाहिए ? उत्तर में भगवान ने कहा- उसे स्वाध्यायी की सेवा करनी चाहिए और २५०० नवकार मंत्र को एकाग्रचित्त से घोखना चाहिए ।

(१५) **अध्ययन चौथे में**- रत्नद्वीप के मनुष्यों द्वारा जल मनुष्यों से अंडगोलक प्राप्त करने की विधि बताई । यह विधि भी अन्य आगम में नहीं आई । बाद के ग्रंथों में इसकी नकल हुई । और ''ज्यादा विवेचन के लिये प्रश्न व्याकरण के वृद्ध विवरण को देख लेना'' ऐसा संकेत मूल पाठ में ही कर दिया गया है ।

(१६) **अध्ययन पाँच में**- शासन में आचार्यों की संख्या ५५ करोड़ लाख, ५५ करोड़ हजार ५५ सौ करोड़ अर्थात्- ५५, ५५, ५५, ५५, ००, ००, ००० होगी, यह भी कोई आगम में नहीं है ।

(१७) इसी अध्ययन में- मुनि, संघ, तीर्थ, गण, प्रवचन, मोक्ष मार्ग, दर्शन ज्ञान चारित्र घोरग्रतप, और गच्छ, इन सब को एकार्थक बताया है ।गाथा-

मुणियो, संघ, तित्थं, गणपवयण मोक्ख मग्ग एगट्ठा ।
दंसण णाण चारित्ते घोरूग्गतवं चेव गच्छ णामे ॥ अ.५गा.१३

(१८) एक स्थान पर लिखा है कि "ऐसे नाम धारी सूरी होंगे कि जिनका नाम लेने से भी प्रायश्चित्त लगेगा यह निश्चित समझो" गाथा-

भूए अजाइ कालेण, केइ होहिंति गोयमा सूरि ।
णाम गहणेण वि जेसिं, होज्ज नियमेण पच्छित्तं ।।

(१९) दुप्पसह आचार्य और विष्णु श्री साध्वी उपवास में काल कर प्रथम देवलोक में जायेंगे ।

(२०) साध्वी संपर्क -

जत्थ य गोयमा साहु अज्जाहिं सगे पहम्मि अहुणा ।
अववाएण वि गच्छेज्जा, तत्थ गच्छम्मि का मेरा ॥

जत्थ य अज्जा लद्धं पडिग्गहमादि विविहमुवकरणे ।
परिभुंजई साहुहि ते गोयमा केरिसे गच्छं ॥ अ.५गा.१००

(२१) आचार्य वज्र-उनके ५०० शिष्य बिना आज्ञा तीर्थ यात्रा के लिये रवाना हुये । उनके पीछे जाते हुए आचार्य वज्र ने कहा- हे महाभागो! साधु साध्वी के लिये तीर्थकर भगवान ने २७००० स्थंडिल कहे । उनको शोधते हुए उपयोग पूर्वक चलना चाहिए । उपयोग शून्यता से जैसे-तैसे नहीं चलना चाहिए । बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय के संघट्टे जनित कर्म बंध का सर्व तत्त्वों का सारभूत सूत्र भूल गये क्या ? विचार करो। इस प्रकार समझाने पर भी हितावह वचन नहीं माना तो एक का वेश छीन लिया तो शेष सब भाग गये(संक्षिप्त)।

(२२) एक समय आचार्य कुवलय प्रभ विहार क्रम से चैत्य वासियों के क्षेत्र में पहुँचे । चैत्यवासियों ने वंदन कर सत्कार कर ठहरा कर कहा- आप यहीं वर्षावास करें । आपके उपदेश से सुन्दर चैत्य बन जायेगा और बहुत लाभ होगा । **ताहे भणियं तेण महाणुभागेणं गोयमा, जहा भो पियंवए ! जइवि जिणालए तहावि सावज्जमिणं णाहं वायामित्तेणं एयं आयरिज्जा, एयं च समय सारवरं तहिं जहाठियं, अविवरीयं णीसंकं भणमाणए णं तेसिं मिच्छदिट्ठी लिंगीणं साहु वेसधारीणं मज्झे गोयमा ! आसंकलियं तित्थयर नाम कम्म गोयं तेण कुवलयपभेणं, एगभवावसेसी कओ भवोयहि ।- ५ / १२९।**

भावार्थ : चैत्य की प्रेरणा के उत्तर में कुवलय प्रभ आचार्य ने उस कार्य को सावद्य और अकरणीय बताकर निषेध कर दिया । इस तरह के सार पूर्ण निशंक वचन कहते हुए उन आचार्य ने उन शिथिलाचारी मिथ्यादृष्टि वेषधारियों के बीच उसी समय तीर्थंकर नाम कर्म का बंध कर लिया और एक भवावतारी बन गये ।

(२३) व्रत भंग करने के लिये मच्छीमार के भव से आठ गुणा पाप कहा, यथा-

आजम्मेणं तु जे पावे, बंधेज्जा मच्छ बंधगो ।
वय भंगे काउमाणस्स, तं चेव अट्ठगुणं मुणे (६ (१४९)

''महानिशीथ सूत्र भले ही ऐसा कह दे पर सिद्धांत ऐसा नहीं कहता । सिद्धांत से तो व्रत शुद्ध पालने वाला उत्तम, अशुद्ध करने वाला मध्यम और अव्रती जघन्य माना जायेगा ।

(२४) जो निर्दयी पुरुष एक लाख स्त्रियों के ७-८ मास के गर्भ को पेट चीर कर निकाल कर काटे, उसको जितना पाप होता है उससे नवगुणा स्त्री संग से साधु बांधता । साध्वी संग से हजार गुणा और प्रेम वश यह काम करे तो करोड गुणा, तीसरी बार करे तो बोधि का नाश करे ।

(२५) सातवें अध्ययन में कठोर, कर्कश भाषा, कषाय, क्लेश के अनेक प्रायश्चित्त वर्णन है ।

नोट- यह निबंध लगभग उक्त प्रबंध पारिजात ग्रंथ से संकलन मात्र है अर्थात् इसमें कथित वाक्य महानिशीथ सूत्र के और मूर्तिपूजक संत श्री कल्याण विजय गणी के है ।

[८] कल्प सूत्र की रचना सम्बन्धी विचारणा :-

आगम लेखन काल के समय में तीन कल्प सूत्र विद्यमान थे जिनका देवर्द्धिगणी ने नंदी सूत्र में कथन किया है । १.'कप्पो' (बृहत्कल्प सूत्र) जो कि छेद सूत्र है एवं कालिक श्रुत है । २. 'चुल्लकप्प सूत्र' ३. 'महाकप्प सूत्र' ये दोनों उत्कालिक सूत्र है और दोनों ही आज अपने नाम से स्वतंत्र रूप से अनुपलब्ध है ।

यदि चौथा पर्यूषणा कल्पसूत्र देवर्द्धि गणी ने संपादित कर पृथक किया होता तो इसका नाम भी कालिक सूत्र की सूची में नंदी में किया होता तो निर्युक्तिकार के सामने दशाश्रुतस्कंध में रहना चाहिये था । अतः नंदीसूत्र में अनिर्दिष्ट यह पर्युषणाकल्पसूत्र देवर्द्धि के समय भी स्वतंत्र सूत्र रूप में नहीं बना था, न दशाश्रुत स्कंध की आठवी दशा में इसका यह स्वरूप था । देवर्द्धि के बाद करीब २०० वर्ष तक भी इसका अस्तित्व नहीं था , यह स्पष्ट है । अतः देवर्द्धि के समकालीन चतुर्थ कालकाचार्य ने इसका सभा में वाचन किया, यह कथन भी कल्पना मात्र है । क्यों कि इस सूत्र का प्रादुर्भाव ही नहीं हुआ था ।

धुवसेन राजा तीन हुए है । जिसमें प्रथम धुवसेन राजा का पुत्र आनंदपुर में विक्रम संवत ५८४ में काल धर्म को प्राप्त हुआ । चतुर्थ कालकाचार्य विक्रम संवत् ५२३ तक रहे । क्योंकि **दुषमाकाल श्रमण संघ स्तोत्र** में भूतदिन्न के बाद कालकाचार्य को ग्यारह वर्ष

तक पाट पर रहना बताया है ।अतः राजा के पुत्रशोक दूर करने के लिये सभा में कल्पसूत्र कालकाचार्य के द्वारा वाचना, यह भी असत्य मनघडंत असंगत कल्पना है ।

सूत्र लेखन के बाद निकट काल में ही आवश्यक सूत्र व आचार सूत्रों की व्याख्या रूप निर्युक्तियों की रचना हुई । फिर उनके भाष्य चूर्णी बने । उसके बाद आठवीं शताब्दि में हरिभद्र सूरि ने आवश्यक सूत्र की टीका करी । गंधहस्ती ने आचारांग सूत्र की टीका शुरू की जो प्रथम आचारांग के आगे न बढ पाये । फिर शीलांकाचार्य दो अंग शास्त्र के टीकाकार हुए । उसके बाद अभयदेव सूरि नवांगी टीकाकार हुए । उसके बाद मलयगिरि महान उत्साही टीकाकार हुए ।

यदि कल्पसूत्र की रचना देवर्द्धि गणी और कालकाचार्य के समय होकर सभा में वाचन शुरू होता तो ऐसे प्रचलित सूत्र की आठ सौ वर्ष तक हुए महान व्याख्याकारों में से एक भी विद्वान ने टीका क्यों नहीं की ? उन व्याख्याकारों एवं विद्वानों ने कहीं भी पर्यूषणाकल्पसूत्र का पृथक्करण व सभा में वांचन जैसी बात का कोई निर्देश भी नहीं किया है और न ही इस सूत्र का कहीं नामोल्लेख किया ।

महान टीकाकार श्री मलयगिरि ने देवी से वरदान प्राप्त करके अनेक सूत्रों की टीकाएँ रची । यदि पर्यूषणाकल्पसूत्र भी कोई स्वतंत्र सूत्र होता और व्याख्यान में वांचा जाता होता तो उस सूत्र के टीका की रचना करना भी उन मलयगिरिजी के लिये अत्यंत आवश्यक हो जाता, परन्तु ऐसा नहीं हुआ ।

पर्यूषणाकल्पसूत्र का स्वतंत्र स्वरूप बनने और सभा में वांचन शुरू होने के बाद शीघ्र ही उसकी व्याख्या बननी शुरू हुई । प्राथमिक व्याख्याएँ कल्पांतरवाच्य कहलाई । जो विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में हुई । उसके बाद टीकाएँ आदि बनी ।

यदि कल्प सूत्र दशाश्रुतस्कंध का आठवाँ अध्ययन रूप इन कल्पांतर वाच्य व टीकाकारों के सामने होता तो इसकी टीका की रचना निर्युक्ति को अपने में समावेश करते हुए होती । जैसा कि छेद

सूत्रों की तथा दशवैकालिक, आवश्यकसूत्र की टीकाएँ निर्युक्तियों को अपने में समाविष्ट करते हुए बनी हुई है। कल्पांतरवाच्य श्री मलयगिरी आचार्य के बाद(१३वीं १४वीं शताब्दि के लगभग)रचे गये है । अतः मलयगिरीजी के बाद कल्प सूत्र का यह स्वरूप बना और सभा में वांचन शुरू हुआ ।

दशाश्रुतस्कंध कालिक सूत्र है और कल्पसूत्र उत्कालिक सूत्र है तभी इसका दोपहर में वांचन होता है । अतः इसका आधार उत्कालिक सूत्र ही रहा है, न कि कालिक दशाश्रुतस्कंध । सभा में वांचन शुरू करने वालों ने सूत्र का काल ध्यान न रखा हो ऐसा भी संभव नहीं हो सकता।

आठ सौ वर्ष बाद सम्बन्ध जोडने वालों से यह भूल होना भी संभव है । तभी चतुर्थ कालकाचार्य और प्रथम ध्रुवसेन राजा के पुत्र की मृत्यु का समय भी सम्बन्धित नहीं होता है और उपरोक्त अनेक तर्कों से असंगतता सिद्ध हो जाती है ।

चुल्लकल्पसूत्र उत्कालिक सूत्र है सांडिल्य के अज्ञात नाम वाले शिष्य ने बनाया है । उसमें तीर्थकर वर्णन व स्थविरावलि सांडिल्य तक गद्य पाठ मय बनाई होगी । उन दोनों के विषयों को १३वीं १४वीं शताब्दि में किसी आचार्य ने एक रूप किया होगा और फिर बाद में व्याख्यान में शुरू हुआ होगा । सूत्र का महत्त्व कथन करते-करते आगे बढ कर नाम साम्य होने से दशाश्रुतस्कंध के आठवे अध्ययन को भी इच्छित सुधारा वधारा करके जोड़ दिया गया। प्रक्षिप्तता-मिश्रणता को गुप्त रखने हेतु देवर्द्धि तक स्तुति वंदन बढाया गया तथा ९८० व ९९३ के संवत्सर का असंगत विकल्प भी जोड दिया गया फिर और ऊँची प्रामाणिकता का सिक्का लगाने के लिये एवं १२०० श्लोक प्रमाण पूरा सूत्र प्राचीन भद्रबाहु के नाम से प्रसिद्ध कर दिया ।

किसी ने तो १४वीं शताब्दि में दशाश्रुतस्कंध सूत्र की आठमी दशा में पूरा कल्पसूत्र लिख भी दिया । उसके पहले की दशा श्रुतस्कंध की किसी भी हस्त प्रत में वह पाठ नहीं है, न चूर्णि निर्युक्तिकार के सामने था । अतः यह लेखन भी किसी मूर्तिपूजक

के अपने अभ्यस्त प्रक्षेप दोष का परिणाम हुआ । उक्त प्रमाण चिंतन से **निष्कर्ष यह हुआ कि** महान टीकाकार श्री मलयगिरी के बाद ही कल्प सूत्र बना है । प्रारंभ में चुल्लकल्प सूत्र के रूप में व्याख्यान में वाचन हुआ । फिर अन्य सामग्री जोड कर उसे पर्यूषणा कल्पसूत्र कहा जाने लगा । फिर नाम साम्य से दशाश्रुतस्कंध का आठवां अध्ययन कहने लगे गये । अंत में उसे ही प्राचीन भद्रबाहु कृत और भगवद् भाषित सूत्र कहा जाने लगा।

[९] मध्यकालीन इतिहास और आगम साहित्य :-

आज हमारे सामने इतिहास को जानने की सामग्री जो भी उपलब्ध है, वह बहुत ही विशाल मात्रा में है । उसके आधार पर अनेक विद्वानों ने अपने चिंतन प्रकट किये है । फिर भी मूल आधार इतना शुद्ध और मजबूत नहीं होने से, नूतन विज्ञान के समान हमारा इतिहास भी नई खोज व सत्य समीक्षा की सदा अपेक्षा रखता है।

आज जो भी साहित्य हस्तलिखित उपलब्ध है, उसमें हजार वर्ष से पुरानी कोई भी प्रत नहीं मिलती है । जो भी ग्रन्थ उपलब्ध हो रहे है, जिनमें ऐतिहासिक सामग्री या पट्टावली आदि इतिहास उपलब्ध हैं, वे भी वीर निर्वाण २०वीं शताब्दि के या बहुत बाद के हैं । खुदाई की सामग्री में भी श्वेतांबर दिगंबर या अन्य एक दूसरे के कुशलबुद्धि करामात पर शंकित है । अतः उस पर भी कहाँ तक विश्वास किया जाय यह विचारणीय है । क्योंकि वीर निर्वाण के हजार वर्ष के बाद का जो समय है, वह अपने अपने धर्म की जड़ों को सब तरफ से मजबूत करने के वातावरण वाला था । जिसमें ग्रंथ रचना, चेत्य व बिंब रचना, शिलालेख रचना, राज्य सहयोग, मंत्र-विद्याबल, चमत्कार और अनैतिक बल प्रवृत्ति का भी अवलंबन था। यह सब उपलब्ध इतिहास की जानकारी से ज्ञात होता है ।

वीर निर्वाण की दसवीं शताब्दि तक का जो काल व्यतीत हुआ उस काल में कुछ आगम रचना संकलना तो हुई है किन्तु देवर्द्धिगणी की लेखन व्यवस्था तक का जो भी आगम आज उपलब्ध है उसमें उस हजार वर्ष संबंधी इतिहास विषयक जानकारी नहीं के समान है,

ऐसा कह दिया जाय तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी । पट्टावलियाँ और गुरु, कुल, शिष्य-परिवार लेखन की परंपरा भी वीर निमार्ण के डेढ हजार वर्ष के भी बाद में चलाई गई प्रणालिका है अर्थात् १७ वीं १८ वीं शताब्दि की है ।

नंदी सूत्र के प्रारंभ में ५० गाथाओं से जो स्तुति की गई है वह भी कोई पट्टावली नहीं है । शासनपति, संघ, २४ तीर्थकर, ११ गणधरों का स्मरण किया है उसके बाद सुधर्मा स्वामी से दूष्यगणी तक वंदन गुणग्राम किया है । इसमें कोई शिष्य परंपरा पाट परंपरा की कल्पना करना या युग प्रधान पट्टावली कहना एक जटिल समस्या खड़ी करना है । रचनाकार ने ऐसी कोई प्रतिज्ञा या उत्थानिका नहीं करी कि मैं क्रमिक पाट परंपरा या शिष्य परंपरा या युगप्रधान पट्टावलि कह रहा हूँ । तथा उपसंहार रूप अंतिम गाथा में भी कुछ नहीं कहा कि "ये क्रमिक पाट परंपरा प्राप्त को वंदन किया और शेष सभी साधुओं को अब समुच्चय वंदन हो" इत्यादि कोइ स्पष्टीकरण नहीं है ।

अतः नंदी सूत्र में कोई पट्टावली संग्रहित हुई हो यह बात नहीं है । किन्तु स्मृति परंपरा में और प्रसंग प्राप्त जो भी विशिष्ट श्रुतधर, कालिकश्रुत व अनुयोग के धारी प्रसिद्धि प्राप्त दिवंगत पूर्वधरों को एवं दूष्यगणि, लौहित्य, भूतदिन(संभवतः) परिचय प्राप्त पूर्वधरों को बड़े छोटे के क्रम से(भले ही वे कोई-कोई समकालीन भी थे) वंदन किया है और उपसंहार रूप अंतिम गाथा में शेष बचे हुए अर्थात् जिनका नाम स्मृति में या प्रसंग में नहीं आया है ऐसे कालिक श्रुत अनुयोगधरों को वंदन किया है । जब परिशेष में भी कालिक श्रुत अनुयोगधरों(पूर्वधरों) को वंदन किया तो जिन्हें नाम और गुण कीर्तन सहित वंदन किया वे भी कोई पाट परंपरा या शिष्य परंपरा न हो कर ऐसे ही विशिष्ट प्रख्यात श्रुतधर मात्र है ऐसा स्पष्ट ज्ञात होता है । स्कंदिलाचार्य से लेकर दूष्य गणी तक के जो श्रुतधरों के नाम है, उनकी उस १४० वर्ष के काल में पाट परंपरा जमाना भी बहुत उलझन युक्त है । क्योंकि उसमें के तीन महापुरूष- स्कंदिल, हिमवंत, नागार्जुन समकालीन लगभग व विभिन्न प्रांतवर्ती रहे । तथा दो

महापुरूष नागार्जुन और भूतदिन्न क्रमशः ७८ व ७९ वर्ष की उम्र के हो गये हैं । अतः यहाँ जिन सात को वंदन किया है उन्हें पाटनुपाट मानना संगत हो ही नहीं सकता। इस तरह नंदी सूत्र के रचना प्रसंग में भी पाट परंपरा अथवा पट्टावलि लेखन पद्धति का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था ऐसा समझना ही युक्ति संगत हैं ।

निर्युक्तियों के रचनाकार भद्रबाहु स्वामी थे, जो कि आगम लेखन के या नंदी रचना के या देवर्द्धि के बाद में हुए । यह बात अनेक अकाट्य प्रमाणों से मंदिरमार्गी विद्वान संत श्री पुण्यविजय जी ने बृहत्कल्प भाष्य भाग ६ की प्रस्तावना में विस्तार सहित समझाई है । जिसे निर्युक्तियों के निबंध में दिया जा चुका हैं ।

(१) दशाश्रुतस्कंध पर निर्युक्ति रचना की गई । उसमें प्रारंभ की गाथाओं में दस दशाओं के नाम के साथ निर्युक्तिकार ने यह भी समझाया कि इस सूत्र में छोटी-छोटी(दस) दशाओं का कथन है और बड़ी दशाएँ ज्ञाता सूत्र आदि में है । इस कथन से, आठवीं दशा रूप कहा जाने वाला कल्पसूत्र, अकेला १२०० श्लोक प्रमाण का होने से, निर्युक्ति रचनाकार के समाने नहीं था, यह स्पष्ट होता है ।

(२) आठवींदशा की निर्युक्ति गाथाओं में प्रारंभ से चातुर्मास(पर्युषणा) कल्प समाचारी का कथन हुआ है और अंत तक सम्भवतः कोई विषयांतर नहीं है । अतः नमस्कार मंत्र से आदि युक्त पट्टावलि तक का कल्पसूत्र का पाठ यदि रचना काल से ही आठवीं दशा में होता और अंत में पर्युषण कल्प समाचारी का पाठ होता, (जैसा कि आज के कल्प सूत्र में है) तो उसका कथन निर्देश उसकी निर्युक्ति में भी प्रारंभ में ही किया जाता । जबकि ऐसा नहीं है ।

(३) तीर्थंकर वर्णन के अंत में आया संवत्सर सम्बन्धी वैकल्पिक पाठ व देवर्द्धि तक के वंदन गुणग्राम का वर्णन भी, भद्रबाहू प्रणीत आठवें अध्यय में मानना और (१२००+९००) इक्कीस सौ श्लोक प्रमाण दशाश्रुतस्कंध सूत्र चौदह पूर्वी भद्रबाहु रचित मानना तो हास्यास्पद ही है ।

(४) निर्युक्तिकार के एक शताब्दि से भी अधिक पश्चात्वर्ती चूर्णीकार ने भी संवत्सर व वैकल्पिक पाठ संबधी कोई निर्देश या

स्पष्टीकरण अथवा चर्चा नहीं की है । इस पाठ की चर्चा १३वीं शताब्दि के पूर्व किसी भी व्याख्याकार ने कहीं पर भी नहीं की है ।

(५) निर्युक्तिकार ने आठवीं दशा की व्याख्या में न तो कल्पसूत्र का नामकरण बताया । न इस दशा के प्रथक्करण का जिक्र किया । न इसके परिचय में ऐसा बताया कि इसमें देवर्द्धि ने संशोधन वर्धन किया और कालकाचार्य ने सभा में वांचन शुरू किया । जब निर्युक्ति एवं चूर्णिकार इस दशा के वर्णन में ऐसा कुछ भी इतिहास का कथन नहीं कर रहे हैं जो कि देवर्द्धि व कालकाचार्य के निकटवर्ती(छठी सातवीं आठवीं शताब्दि के) हैं तो फिर सैकडों वर्षों बाद १३वीं १४वीं शताब्दि वाले वह इतिहास लाये ही कहाँ से ? अतः निर्युक्ति चूर्णी रचना के बाद और १३वीं १४वीं शताब्दि के आसपास कल्पसूत्र का उपलब्ध स्वरूप तैयार किया गया समझना चाहिए ।

(६) प्राचीन भद्रबाहु स्वामी ने छेद सूत्रों की रचना साध्वाचार के विषय को लेकर पूर्वों के आधार से की है तो उसमें नौ व्याख्यान रूप उपलब्ध कल्पसूत्र विषयांतर रूप ही होता है । चिंतन के लिये बृहत्कल्प, व्यवहार व दशाश्रुत स्कंध का संपूर्ण वर्णन मूल पाठ का देखा जा सकता है ।

इस तरह जब कल्पसूत्र की मौलिकता, प्रामाणिकता ही संदेह पूर्ण है, तो उसमें उपलब्ध पट्टावली की प्राचीनता कितनी सच्ची हो सकती है? यह स्वतः समझा जा सकता है ।

इस प्रकार कल्पसूत्र और नंदी सूत्र की पट्टावली सम्बन्धी वर्णन को अलग कर दिये जाने के बाद जो भी पट्टावलियाँ उपलब्ध है, वे १३ वीं शताब्दि अर्थात् वीर निर्वाण १८ वीं शताब्दि के पूर्व नहीं जाती है। अतः यह सिद्ध होता है कि आज जो भी पट्टावलियाँ अथवा इतिहास उपलब्ध है उसका अधिकांश विभाग वीर निर्वाण की १८ वीं शताब्दि की रचना और कल्पना एवं अनुभव का है । प्राचीन व्याख्या ग्रन्थों में कुछ कुछ सामग्री उपलब्ध है उसमें भी समय समय पर विकृतिएँ एवं प्रक्षेप दोष हुए हैं ।

[१०] तीन आगमों में णमोत्थुणं के पाठ की समीक्षा :-

मूर्तिपूजक के एक प्रतिष्ठित विद्वान अपनी **जैनसाहित्य**

मां विकार थवा थी थेयेली हानि नामक पुस्तक में- 'मूर्तिपूजा आगम विरूद्ध है, इसके लिये तीर्थंकरों ने शास्त्र में कोई विधान नहीं किया है, यह कल्पित पद्धति है।' इस प्रकार मू॰ पू॰ विद्वान भी मूर्तिपूजा को आगमिक नहीं मानते हैं । तो उन्हें तीर्थंकर भगवान समझ कर उनके सामने णमोत्थुणं देने का तो प्रश्न ही नहीं रहता। अर्थात् उन लोगों की मान्यता में भी णमोत्थुणं के पाठ को प्रक्षिप्त माना है । आगमों में जहाँ कहीं भी प्रतिमा सम्बन्धी वर्णन है प्रायः वहाँ पर पाठ सरीखा ही है । द्रौपदी के प्रतिमार्चन के सम्बन्ध में स्वयं टीकाकार भी बिना णमोत्थुणं के पाठ को अधिक महत्त्व देते हैं। इस प्रकार प्रतिमार्चन का पाठ सर्वत्र सरीखा होने से सूर्याभ देव एवं विजय देव के वर्णन में भी णमोत्थुणं का पाठ प्रक्षिप्त ही समझना चाहिये ।

विक्रम की आठवीं नौवीं शताब्दियों में जब कि चैत्यवासियों का जोर सर्वत्र फेल चुका था, वे मठाधीश यति बन चुके थे । मंदिरों के पैसों की उघराणी करते थे एवं सारा वहीवट स्वयं की देख रेख में रखते थे । जिसका खंडन संबोध प्रकरण में तथा महानिशीथ में हुआ है । संभवतः इसी युग में णमोत्थुणं का पाठ इन तीन प्रतियों में प्रक्षिप्त हुआ हो तो असंभवित नहीं है । १२वीं शताब्दि में होने वाले नवांगी टीकाकार के समय तो दोनों प्रकार की प्रतियाँ उपलब्ध होती थी । जिससे ही उन्होंने ज्ञातासूत्र में बिना णमोत्थुणं वाले पाठ को प्रधानता दी है । इसलिये ७वीं आठवीं शताब्दि में लिखी गई पुरानी प्रतियों से इस पाठ का मिलान होने पर इसकी प्रक्षिप्तता जानी जा सकती है । अतः पुरानी प्रति से मिलाने का प्रयत्न करना चाहिये। रायप्पसेणीय व जीवाभिगम सूत्र के टीकाकार श्री मलयगिरी जी नवांगीटीकाकार श्री अभयदेव सूरि के बाद में हुए है । इनको प्रक्षिप्त पाठ वाली प्रतियाँ ही उपलब्ध होने की संभावना है । जिससे उन्होंने अपनी टीका में णमोत्थुणं आदि पाठ की भी टीका की है किन्तु उसकी संगति के विषय में वे मौन हैं। मू॰पू॰ आचार्य अनेक ग्रन्थों में मूर्ति पूजा जिनागम विरूद्ध सिद्ध करते हैं । णमोत्थुणं का पाठ प्रक्षिप्त है, ऐसा पुरानी प्रतियों को देखने से एवं इनके व्याख्या ग्रन्थों को देखने से स्पष्ट होता है ।

यह भी एक स्वार्थपूर्ण घोटाले के विषय का परिणाम है । जो विक्रम संवत की आठवीं सदी के पश्चात १२वीं तेरवीं शताब्दि तक बीच के काल में होना संभव है । यह ४००-५०० वर्ष का मध्यकाल उत्कृष्ट शिथिलाचार का समय था, साथ ही विरोध करने वाले धुरंधर विद्वान मूर्तिपूजकों के साथी श्रमण भी उस समय थे। वे भी किसी न किसी तरह अपनी शुद्धाचार मूलक प्ररूपणा जगह-जगह कर देते थे । स्वतंत्र उपदेशी ग्रन्थ रचकर उसमें भी अपनी श्रद्धा रूचि अनुसार प्ररूपणा एवं मूर्तिपूजा, आडंबर आदि का खंडन कर ही देते थे । ऐसे विरोध के, प्रतिस्पर्धा के, प्रतिवाद के, उस मध्य कालीन जमाने में कल्पित प्रक्षेपों, कल्पित रचनाओं, आगम सम्बन्धी चोरियों, झूठे शिलालेखों, आदि अनेकों कारनामें उस जमाने में हुए है । अतः आगमों के प्रति अंध श्रद्धा बुद्धि न रखकर विवेक बुद्धि रखना ही उपयुक्त है ।

[११] द्रव्य पूजा भाव पूजा परिज्ञान :-

छज्जीव काय संजमेसु, दव्व थएसो विरुज्झई कसिणो ।
तो कसिण संजम विऊ, पुप्फाइयं न इच्छंति ॥१९३॥ -आ०२०निर्यु०।

अर्थ :- द्रव्य स्तव करने पर पृथ्वी आदि छ काय की हिंसा त्याग रूप संपूर्ण संयम का सम्यग् पालन नहीं होता है ।(पुष्पादिनां लुंचन संघट्टनादिना कृत्स्न संयम अनुपपद्यते) इसलिये संपूर्ण संयम प्रधान विद्वान मुनि 'पुष्पादि द्रव्यस्तव' की चाहना इच्छा भी नहीं करते हैं ।

तर्क- कहा जाता है कि द्रव्य स्तव करने में जो धन का त्याग होता है उससे शुभ अध्यवसाय होते हैं ।

उत्तर- तदपि यत्किंचित् व्यभिचारात् वह तो कोईक में होवे अधिक में नहीं होवे और अविवेकी कम समझ वाले में भी नहीं होवे। देखा भी यह जाता है कि अधिकांश लोग मात्र यश कीर्ति के लिये ही करते हैं(या दिखावा परंपरा से) शुभ अध्यवसाय हो भी जाय तो वे तो भाव स्तव से हैं । क्योंकि शुभ अध्यवसाय में द्रव्य स्तव अप्रधान कारण है । प्रधान कारण तो भाव स्तव है । क्योंकि आरम्भ समारंभ तो कर्म फल को देने की प्रधानता वाले हैं ।

भाव स्तव एव च सति तत्त्वतः तीर्थस्य उन्नति करणं । भाव

स्तव एव तस्य सम्यग् अमरादिभिरपि पूज्यत्वात् तमेव च दृष्टवा क्रियमाणं अन्येऽपि सुतरां प्रतिबुद्ध्यंते शिष्टाः, इति स्वपरानुग्रहो अपि इहैव इति गतार्थः। इसके पूर्व गाथा १९२ में कहा हैं कि- द्रव्य स्तव भी अनेक अपेक्षाओं से बहुत गुणकारी भी है; ऐसा कहना ना समझी का कथन है ।(अनिपुण मति वचनमिदं) । तीर्थंकर तो छः काय के हितकारी कथन करते हैं । छः काय की रक्षा, यही प्रधान मोक्ष साधन है ऐसा तीर्थंकर फरमाते हैं ।

गाथा- दव्वथओ भावथओ दव्वथओ बहुगुणति बुद्धि सिया।
अणिउणमई वयणमिणं, छज्जीव हिये जिणा बेंति ॥१९२॥

टीका- पृथ्वी कायादिनो हितं प्रधानं मोक्ष साधनमिति जिना तीर्थंकरा ब्रूवते। वित्त का परित्याग, शुभाध्यवसाय, तीर्थ की उन्नति देख अन्य भी बोध पावे इस तरह स्व पर का अनुग्रह करने वाला है- द्रव्य स्तव । इसकी असारता बताने के लिये असारता ख्यापनाय आह- अनिउण मई वयणमिणं इत्यादि । **यः प्रकृत्यैव असुंदरः स कथं श्रावकाणामपि युक्तः ॥**

तस्मात् सति बोधि लाभे तप संयमानुष्ठान परेण भवितव्यं । न यत् किंचित चैत्यादि आलंबनं चेतसि आधाय प्रमादादिना भवितव्यं। तपः संयमोद्यमवतः चैत्यादि कृत्येषु अविराधकत्वात् तथा चाह- चेइय कुल गण संघे आयरियाण च पवयण सुए य । सव्वेसु वि तेण कयं, तव संजमुज्जमंतेणं (११०१)। इन सबके प्रति भक्ति आदि कृत्य करना उसी का है जो तप संयम में उद्यमवान है उसने इन सब के प्रति अपना भक्ति विनय कर दिया समझना चाहिए । यः तप संयमेषु उधमवान् वर्तते तेन एतेषु स्थानेषु कृत्यं (विनय भक्ति) कृतं ।

भावार्थ :- छः काया जीवों की हिंसा रूप द्रव्य पूजा से संयम का सम्यग् पालन नहीं हो सकता है अतः सम्यग् संयम का ज्ञाता मुनि फूल फलादि से पूजा की कभी इच्छा भी नहीं करे !

द्रव्य पूजा से भावों की शुद्धि होना भी एकांत नहीं है और द्रव्य पूजा के बिना भी भावों की शुद्धि हो सकती है ।

भाव शुद्धि का प्रधान कारण तो भाव स्तुति और भाव पूजा है। और वही तीर्थ की उन्नति का कारण है ।

छः काया के जीवों की रक्षा करना यही मोक्ष का प्रथम साधन है । तीर्थंकर एवं श्रमण छः काया के हितकारी कथन ही करते हैं । छः काया की हिंसा प्रेरक वचन तीर्थंकर नहीं कह सकते ।

द्रव्य पूजा द्रव्य स्तव का महत्त्व बताने वालों के वचन अनिपुण बुद्धि के वचन हैं । इसलिये बोध प्राप्त करने के पश्चात् संयम तप में पुरुषार्थ करना चाहिये किन्तु मूर्तिपूजा आदि के बहाने से संवर धर्म में आलसी नहीं होना चाहिये । संयम तप में जो उद्यमवंत होता है वह चैत्यादि कृत्यों का स्वतः आराधक हो जाता है अर्थात् जिसने तप संयम में उद्यम कर दिया है तो उसने चैत्य, आचार्य, उपाध्याय, गुरु, कुल, गण, संघ प्रवचन, श्रुत इन सब के प्रति कर्तव्य पालन अथवा विनय भक्ति कर दिया है, ऐसा समझ लेना चाहिये । यह मूर्तिपूजकों के मान्य निर्युक्ति ग्रन्थों में आये स्पष्ट उल्लेख का भावार्थ है । इससे कितना स्पष्ट है कि मूर्तिपूजा तप संयम धर्म गुणों में आलस या बहानावाजी की उत्पत्ति का निमितक भी है । उससे बहुत अधिक महत्त्व संवर प्रवृति का है । अतः संवर सामायिक आदि प्रवृतियों को छोड़कर जो केवल पूजा करके धर्म कर लिया, ऐसे संतुष्ठ अमरे बने रहते हैं, वे वास्तव में उक्त प्रमाणानुसार अनिपुण बुद्धि अर्थात् मूढ बुद्धि है ।

[१२] पदार्थों के परठने सम्बन्धी परिज्ञान (द्विदल-मक्खन) :-

श्रमण सूत्र की चौथी पाटी के ५ समिति के पाठ में ५वीं समिति के विवेचन में आचार्य हरिभद्र सूरि ने अन्यत्र से संपूर्ण पारिठावणिया निर्युक्ति अपनी टीका में उदृत की है । जिसमें अजीव का और जीव के एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के परठने के प्रसंग व विधिएँ बताई है -

चाउलोदगमाईहिं, जलयर माईण होई सच्चित्ता ।
जल थल खह काल गयं,अचित्ते विगिंचणं कुज्जा ॥

टीका- तंदुलाम्बुना सह मत्स्यो मंडूकी वा समेतौ तौ चाल्य अंबुना सह जले नयेत । जल स्थल खगेषु कालगतेषु, अचित्त नो मनुज पारिष्ठापनिका स्यात् । मृतमत्स्य उंदुर काकादौ ।

त्रस(विकलेन्द्रिय) जीव ऊरणिका(लट) आदि से संसक्त

आहार पानी को शुद्ध करने की और खाने पीने की विधि तथा परठने की विधि बताई है । पानी के समान ही जीव से संसक्त छाछ की विधि कही है ।

दही, मक्खन त्रस जीव संसक्त हो उसकी विधि बताई है वह इस प्रकार है - पानी निकाल कर पानी रहित दही व मक्खन को छाछ में या पानी में डाल दो, जीव होगा तो दिख जायेगा उन्हें परठ देना जीव न दिखे तो खा लेना । संसक्त तक्रस्य अंबुवद् विधि ।

दधि नवनीतयोस्तु अयं विधि- पूर्वे जलं गालयित्वा पिंडी भूत दध्नः एकाउंडी तक्रादौ प्रक्षेप्या चेत्प्राणा स्युस्तदा प्रेक्ष्यंते ततस्त्यज्यते, न स्युस्तदा भुज्यते । नवनीतोऽपि एकाउंडी त्यादि कार्यः । तक्राभावे गोरस धावने क्षेप्या । तस्याभावे शीती भूते उण्णाप्सु, तस्याप्यभावे तंदुलाप्सु क्षिप्त्वा वीक्ष्य शुद्धे, भोज्यम् । अशुद्धयोर्विधिना त्यागं ।

दध्नि पात्र पतिते संसक्त भ्रांतौ दधिः पात्रतीरं आनीय पुनः पश्चात् कृत्वा दधि लिप्त तीरे जीवा ईक्ष्याः । इक्षुविकारे कक्कं अप्येष विधिः । परसमुत्थंमप्येवं । अर्थात् गृहस्थी के बर्तन में रहते शंका हो तो भी इस विधि से परीक्षा कर लेना ।

रसज- रसजै संसंक्तं तु कांजिकादि(उदक) सपात्रं त्याज्यम्।

संसक्त जल में- जीव परणित हो जाय तो तीन साधु देख कर फिर छान कर पीना अनुज्ञात है । परिणत न हुए हो तो पहले उन्हें निकालने की विधी से निकालना । धोवण में फंवारे(पानी के जीव) तथा धावन जले पूतरेषु सत्सु- छानकर थोडे पानी में उन जीवों को लेकर के यदि दाता वापस न ले तो अपकाय में यतना से परठ देना चाहिए ।

पानी में कीडियाँ जीवित आ जाय तो तुरन्त छान कर विवेक करना । मक्खी हो तो देखते ही निकालना और मर जावे तो छान कर उपयोग लेना अन्यथा- **मेधा उवहणंति पिविलिया, मच्छियाहि वमी हवइ ॥११॥**- पर हत्थे भत्ते पाणे वा जइ मच्छिया मरई तं अणेसणिज्जं । संजय हत्थे, उद्धिरिज्जई, नेहे पडिया छारेण गुंडिज्जइ॥-आवश्यक हरिभद्रीय टीका (पारिठावणिया निर्युक्ति)

सारार्थ :- १. पानी में मेंडक मछली आ जाय तो उसे जल में ले

जाकर अन्यत्र जल में परठना २. पशुपक्षी का मृत कलेवर उपाश्रय में हो तो विवेक पूर्वक यथास्थान परठना ३. आहार में पानी में दही छाछ में और मक्खन तथा इक्षुकी काकब में त्रस जीव संसक्त है तो विवेक से निकाल कर खाना । यदि न निकल सके तो फिर खाना नहीं किन्तु उस वस्तु को परठ देना । ४. त्रस जीव युक्त जल में यदि जीव परिणत होकर जीव रहित पानी हो जाय तो तीन साधु निरीक्षण करके फिर छानकर उपयोग में ले सकते ५. पानी में फंवारे बारीक जीव जल के हों तो उन्हें थोड़े पानी में निकाल कर दाता वापिस ले तो उन्हें दे देना, न ले तो अन्यत्र जल में यतना से परठ देना चाहिये ६. रसज जीवोत्पत्ति युक्त आहार हो तो उसे परठ देना और ऐसा पानी आ जाय तो पात्र सहित परठ देना या मिट्टी के बर्तन में डालकर परठ देना ७. पानी में कीडियाँ आ जाय तो तुरंत छानकर विवेक करना, मक्खी पड जाय तो तुरन्त निकाल देना । स्निग्ध पदार्थ हो तो मक्खी को राख में डालना । ८. कीड़ी मक्खी आदि मर जाय तो पानी को छानकर उपयोग में लेना ९. गृहस्थ के हाथ में रहे आहारादि देते समय उसमें मक्खी पड जाय और मर जाय तो वह आहार अनेषणीय है अग्राह्य है और साधु के प्राप्त किये आहार के पात्र में वहीं पर ही मक्खी गिर जाय तो तुरन्त निकाल देना चाहिये।

निष्कर्ष– (१) यहाँ मक्खन के संबंध में लेने का और संशोधन करने का एवं खाने या परठने का जो वर्णन है, उससे स्पष्ट है कि मक्खन को अभक्ष्य कहने की प्रथा इस टीका के कर्ता हरिभद्रसूरि के समय तक उत्पन्न नहीं हुई थी । बाद में ही किसी ने प्रचारित की है ।

(२) रसज जीवोत्पति वाले आहार के और जीव युक्त आहारादि परठने के इन अनेक प्रकरणों में द्विदल संबंधी किंचित भी कथन नहीं किया गया है । अत: यह द्विदल संबंधी अयुक्त एवं अनावश्यक कल्पना भी बाद में किसी की स्वच्छंद मति से उत्पन्न हुई है । २२ अभक्ष्यों की कल्पना भी इन व्याख्याकारों के बाद में ही चली है ।

(३) जल के जीवों को या फव्वारों को परठने की विधि से यह भी स्पष्ट होता है कि उन्हें कहीं भी जल में ही परठना चाहिये ।

परिशिष्ट- ६

अति निम्न दर्जे की चोरी किसने कहाँ करी

श्वे. मू. पू. गुणरत्नसूरि के संत रश्मिरत्न, मुक्तिरत्न, भावेशरत्न, धर्मरत्न आदि कई मिली भगत पार्टी के लोग **शंकाएं सही समाधान नहीं** नामकी पुस्तक ४-५ वर्ष तक नई नई आवृत्ति छपा कर प्रचार करके आनंद ले रहे थे । पुस्तक में लेखक, मुद्रक, प्रकाशक छिपकर रहते थे अर्थात् नाम (सच्चा) नहीं देते। किंतु हम स्थानकवासी (११ नाम) यह पुस्तक छपा रहे, ऐसा लिखते । खोज करने पर इनकी सप्लाई के फ्रोम की छाप तथा इनके परिचित हस्ताक्षर (क्योंकि दोस्ती से पत्र व्यवहार था) आदि पकडे गये । फ्रोम की छाप वाले गांव-घर पहुँचकर मैंने पता लगाया तो इन धूर्तों का नाम प्रगट हुआ और वहाँ ढेर सारी पोस्ट आदि आई पडी थी । वह सब मैंने देखी और पूछताछकर सारी जानकारी भोले भगतों से ले ली । कुछ आई पोस्ट सामग्री भी मैने ले ली । फिर इन कपटी दोस्तों को पूछा तो झूठ बोल गये तब फटकार लगाई तो शर्मिंदा होना पडा । फिर मैने वार्निंग समझाइस करके नहीं मानने पर जवाब रूप पुस्तक छपाकर हजारों को चातुर्मास सूचि की सहायता से भेजी । फिर प्रत्यक्ष मिलकर वार्ता करी। उसके बाद इन्होंने गुमनामी और झूठे नामी एक पुस्तक पाली के एड्रेस से छापी । उसमें प्राचीन झूठे ग्रंथ के नाम से कथा उद्धृत करके दी । उसमें ४४ जीवों को महावीर के शासन में विराधक बनाकर भवभ्रमण करवाया और एक भव नरक का भी करवाया फिर यथाक्रम से उन्हें ४४ स्थानकवासी साधु बनना बताया । ऐसी चोरी और महा झूठ करने वाले ये रूस्तम १०,००० हजार वर्ष के नरक के भव से पकडा गये । पाली पत्र लिखकर इन मूर्ख होशियारों की नाक काटी गई । पर बेशर्मी से उन्हें कुछ असर नहीं होता है, क्योंकि ऐसे ही कारनामे करने में सिद्धहस्त इन उस्तादों को मोक्ष का पट्टा मूर्ति मंदिर के आरंभ समारंभ से मिलने की आशा रहती है। आज भी **शंकाएं सही समाधान नहीं** पुस्तक की झेरोक्ष गाँव गाँव बांटते फिरते है ।

महानिशीथ और कल्पसूत्र में क्या कहा :-

महानिशीथ सूत्र में एक महत्त्वपूर्ण बात कही है यथा-

प्रश्न- हे भगवन् ! कुगुरु कब होंगे ?

उत्तर- साडे बारह सौ वर्ष (१२५० वर्ष) बीतने पर कुगुरु प्रगट होंगे ।

इस प्रश्नोत्तर में भगवान ने यह बताया था कि मेरे शासन के १२५० वर्ष बीतने पर इस शासन में कुगुरु खोटे साधु पैदा होंगे अर्थात् वे खोटा धर्म और खोटा आचरण चलायेंगे । अब पाठक सोचें कि स्थानकवासी और वीर लोकशाह तो वीर निर्वाण के २००० हजार वर्ष बीतने पर हुए है अतः कुगुरु और उनका कुधर्म तो पहले ही प्रगट हो गया था । लोकाशाह को खोटा बताना सरासर गलत है ।

मूर्तिपूजकों के मान्य कल्पसूत्र में ही बताया गया है कि निर्वाण के समय भगवान महावीर के जन्म नक्षत्र पर भस्मग्रह का संयोग था, जिससे जिन शासन अत्यंत अवनति पर चलेगा । उस भस्मग्रह की २००० वर्ष की स्थिति का संयोग हटने पर जिन धर्म उदितोदित होगा अर्थात् उसका शुद्ध धर्म के रूप में पुनरूत्थान होगा ऐसे इस निर्दिष्ट समय में ही लोकाशाह ने क्रियोद्धार किया था ।

इन दोनों सूत्रों के प्रकरण में लोकाशाह के क्रियोद्धार का संयोग वीर निर्वाण १२५० में नहीं किन्तु वीर निर्वाण २००१ में हुआ है तथा १२५०में ये मंदिरमार्गी कुगुरु साधुओं ने ही खोटा धर्म चलाया था । इसलिये अपने ही प्यारे इन दोनों शास्त्रों से और इस समुत्थान सूत्र से ये मंदिरधर्मी खोटे सिद्ध होते हैं । फिर भी सच्चे होने की खोटी डींग हाँकते हैं ।

भद्रबाहु स्वामी ने चन्द्रगुप्त राजा के १६ स्वप्नों के फल में चौथे पाँचवे स्वप्न का फल इस प्रकार बताया है-

दुवालस वास परिमाणो दुकालो भविस्सई । तत्थ कालिय सुय पमुहा वोच्छिज्जिस्सइ। चेइयाइं ठव्वावई । दव्वाहारिणो मुणि भविस्सइ । लोभेण मालारोहण, देवल उवहाण उज्जमण, जिण बिम्ब पइट्ठावण विही उमाइयेहिं । बहवे तदप्पभावा पयाइस्संति अविय

पंथे पडिस्सइ । कुमइजणा परंपरागम्मेण बहिया सच्छंद चारिया सयमेव संजमिया भविस्सइ ।

अर्थ - इस स्वप्न का फल यह है कि १२ वर्ष का दुष्काल पडेगा, जब सूत्र ज्ञान व्यवछिन्न होगा, तब जैन साधु संयम मार्ग की भगवदाज्ञा को छोडकर मंदिर बनवायेंगे, धन इकट्ठा करने कराने वाले बनेंगे । अति धन लोभी होकर मालारोहण आदि महोत्सव करेंगे उपधान तप का उजमणा करेंगे । जिनेश्वर की मूर्तियों को प्रतिष्ठित करवायेंगे । ऐसे बहुत से कार्य करके अनेक साधु तप संयम से भ्रष्ट होकर धर्म से विपरीत मार्ग में पड जायेंगे अर्थात् सभी साधु ऐसा नहीं करेंगे । कुछ आत्मार्थी मुनि इन प्रवृत्तियों से निरपेक्ष भी बने रहेंगे ।

इस स्वप्न फल से भद्रबाहु की भाषा से ही स्पष्ट हो गया कि उस समय मंदिर मूर्ति जिनेश्वरों की नहीं थी, तभी कहा कि स्वप्न के कुप्रभाव से ऐसा करके वे साधु कुमार्ग में पडेंगे । यह १६ स्वप्नों का ग्रन्थ भी मूर्तिपूजक श्रमण श्रद्धा से भद्रबाहु का मानते हैं । इससे स्पष्ट है कि भद्रबाहु के समय मूर्तिपूजक धर्म नहीं था । स्थानकवासी मान्य सत्य आगमिक धर्म ही पहले था। मंदिरमार्गी धर्म बाद में उत्पन्न हुआ उसे भी भद्रबाहु ने कुमार्ग कह दिया है और तप संयम से भ्रष्ट होना भी कह दिया है । यह मूर्तिपूजकों का ही ग्रन्थ और उनके महा पूजनीय भद्रबाहु स्वामी का बनाया और उन्हें ही कुमार्गी बता रहा है, स्वप्न फल के नाम से ।

सच्चे जैनी तीर्थंकरानुयायी को वैज्ञानिकों के शोध कृत्यों में उलझे बिना महावैज्ञानिकों(तीर्थंकरों) के साधना प्राप्त अमृत रस से संतुष्ट और गंभीर बने रहना चाहिये । सच्चे जैनी को **वैज्ञानिक बनने की कतई आवश्यकता नहीं** है क्योंकि वह महावैज्ञानिकों के प्राप्त ज्ञान में तृप्त होता है । जो अपने आप को जैन वैज्ञानिक होने का या बनने का अहं धरते है वे वास्तव में सच्चे जैन भी नहीं हैं, नहीं रह सकते है और महावैज्ञानिकों के प्राप्त अमृत रस से हाथ धो बैठतें हैं और वैज्ञानिक बनने के खोटे अहं में मोहित बुद्धि होते हैं ।

परिशिष्ट- ७

आगम संख्या विचारणा

शास्त्रों में आगम शास्त्र शास्वत रूप में द्वादशांगी अर्थात् १२ अंग सूत्र एवं आवश्यक सूत्र ये प्रत्येक तीर्थंकर के शासन में भरत, ऐरवत एवं महाविदेह यों १५ कर्म भूमि में होते हैं।

जिसमें साध्वियाँ ११ अंग सहित आवश्यक सूत्र का कंठस्थ अध्ययन करती है और श्रमण कोई ११ अंग, कोई १२ अंग का अध्ययन आवश्यक सूत्र सहित करते हैं । आवश्यक सूत्र का अध्ययन सभी के लिये सभी तीर्थंकर के शासन में आवश्यक होता है ।

वर्तमान हुण्डावसर्पिणी के इस पाँचवें आरे में शास्त्रों का लेखन और नये निर्माण का क्रम चला है ।अन्य किसी भी शासन में कहीं भी ऐसा होना शक्य नहीं है और उसके लिये कोई आगमाधार भी नहीं है । हर शासन में द्वादशांगी ही निरंतर चलती है। दृष्टिवाद अंग की पूर्णता में कुछ कमी हो सकती है पर विच्छेद नहीं होता है। ११ अंग भी आवश्यक सभी विषयों से परिपूर्ण होते हैं । अतः परिवर्तन, परिवर्धन की किसी शासन में आवश्यकता नहीं होती है। जिससे आगम की ध्रुव संख्या आवश्यक सूत्र सहित द्वादशांगी- १२ अंग है।

पाँचवें आरे के वर्तमान समय में आगमों की विविध संख्या मानने की परंपरा समय समय पर चलती रही है जो स्थानकवासी के उद्‌गम पूर्व ४५ या ८४ संख्या किसी आगमाधार के बिना चलती रही है । क्योंकि नंदीसूत्रकी आगम सूचि में संख्या नहीं दी गई है, केवल नाम ही गिनाये हैं, जो आज ७३ दिखते हैं ।

देवर्धिगणी आचार्य ने १३ वर्ष संलग्न एक स्थान पर स्थिर रहकर ११ आगमों का लेखन और नया संपादन करवा कर उन्हें लिखवाकर भविष्य के लिये आगमों को सुरक्षित कराया । तब उन्होंने नंदीसूत्र में उस समय जितने आगम लिखे या नये बनाये उन सब की सूचि श्रुतज्ञान के वर्णन में स्पष्ट दे दी है । इस सूचि में कुल संख्या स्पष्ट नहीं करी जिससे पीछे के लोगों ने मनमते

अधिकार ले लिया एवं जो जचा सो नया नाम डाला पुराना निकाला या फेरफार किया । फिर भी परिवर्तन पाते हुए आज ७३ संख्या को लिये हुए नंदी की सूचि उपलब्ध है जो ५०० वर्ष करीब से अधिक प्राचीन ज्यों की त्यों चल रही है। इसके पहले और देवर्धि के बाद के हजार वर्ष में किसने क्या क्या परिवर्तन किया वह अनुभवी विद्वानों के लेखों, कृतियों से जाना जा सकता है।

स्थानकवासी के उद्‌गम के पूर्व २०० वर्ष करीब पहले श्रमणों ने अपनी सोच व पसंद अनुसार ४५आगम संख्या और नाम कायम किये। जो प्रद्युम्नसूरि के विचारसार ग्रंथ में मिलते है । जिसमें नंदी सूत्र के बाद बने को भी समाविष्ट किया और कुछ नंदी में रहे हुए तथा उपलब्ध को भी नहीं गिना जो उनकी अपनी स्वतंत्र सोच रही होगी। उसके बाद उन्हीं आचार्यों की परंपरा के श्रमणों ने ४५ नामों में से ८ को निकाला और ९ नये को डाला जो नंदीसूत्र में नहीं भी थे । एवं उसमें कोई व्याख्या ग्रंथ भी डाले तथा अन्य ग्रंथ को भी गिन लिया, जो आज मूर्तिपूजक समाज में सर्वमत से चल रहे हैं। १० प्रकीर्णकों की संख्या भी ४५ में मान रखी है उसमें भी कोई नंदी सूत्रोक्त है और कोई बाद के बने हुए भी गिन रखे हैं ।

उपांगसूत्रों की १२ संख्या के नाम भ्रमणा से लोकाशाह के सैकडों वर्ष पूर्व हो चुके हैं । जो उपांगों के मूलपाठ को सही बुद्धि से पढने पर सरलता से समझ में आ सकता है कि उपांग सूत्र वास्तव में ७ ही हैं, ५ तो अतिरिक्त किसी अगम्य कारण से झूठमूठ बढाये गये हैं। जिनके नामों का फेरफार नंदीसूत्र की सूचि में करने का अधिकार लेकर दुरुपयोग किया गया है। ऐसा लोकाशाह के पूर्व चल गया था और आज भी नासमझी से स्थानक मंदिर सभी आमनाय वाले १२ उपांग रटते हैं जो कि असत्य है ।

उसे परंपरा की पकड के कारण या मानसंज्ञा के कारण तथा अपनी बात की शान के पीछे कोई समझना ही नहीं चाहता, सोचना ही नहीं चाहता । अपवाद रूप कोई समझ भी ले तो परंपरा के दुराग्रह के कारण स्वीकार नहीं सकते और यदि कोई स्वीकार भी ले तो खोटी परंपरा के मोह को छोड नहीं सकते । यह बुद्धिमानों के समाज की

दशा है। उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, अनुयोगद्वार, प्रज्ञापनासूत्र आदि की रचना काल के विषय में मतांतर मिलते हैं । जिन्हें आचार्य देवेन्द्रमुनि, पंन्यास पुण्य विजयजी म.सा. आदि के लेखों में तथा साहित्य में देखा जा सकता है । उनसे भी सार यही निकलता है कि उन सब रचनाओं में कोई छाप नहीं मिलने से एवं भ्रमित-कल्पित इतिहास मिलने से ये आगम देवर्धिगणी के समय इन्हीं नाम वाले बहुश्रुतों से संपादित करवाये गये हैं । फिर नाम साम्यता से एवं प्राचीनता की मोहर लगाने के हेतु से पुराने और झूठे नाम जोड दिये गये अथवा नासमझ से जुड गये हैं । वास्तव में उत्तराध्ययन सूत्र प्रश्नव्याकरण सूत्र से और निशीथसूत्र आचारांग से निकाल कर देवर्धिगणी ने ही अलग शास्त्र का नाम देकर कालिक सूत्र की सूचि में रख दिया है । इतना इतिहास और आगमों से एवं विद्वानों के साहित्य से स्पष्ट हो रहा है । तो भी कोई कुछ कुछ कल्पना चर्चा करते रहते हैं अर्थात् उत्तराध्ययन को भगवान की अंतिम देशना एवं निशीथ को भद्रबाहु स्वामी आदि तीन आचार्यों के द्वारा बनाया होने की चर्चा करते रहते हैं । ऐसे कितने ही खोटे प्रवाह चल जाते या चला दिये जाते हैं ।

प्रश्न :- वर्तमान में ३२ और ४५ आगम संख्या मानने की परंपरा है वह कैसी है ? **उत्तर :-** ये संख्याए मात्र स्थानांग में कहे १० सत्य में से परंपरा सत्य या रूढ सत्य में समाविष्ट होती है । इसलिये मधुर भाषा में इन्हें परंपरा सत्य कह सकते हैं । परंतु कसौटी करने पर ये दोनों संख्या भूल भरी अपनी अपनी भ्रमित भ्रमणा से पकडी हुई चल रही है।

इनका निर्णय कोई भी समझना चाहे तो आगम पाठों को श्रद्धा से और सत्यनिष्ठा से समझे तो समझ में आ सकता है तथा उपलब्ध अनुपलब्ध की विचारणा करे तो भी वास्तविक नंदीसूत्र से और समीक्षा से प्रमाणित शास्त्र एवं उपलब्ध शास्त्र ३७ की संख्या में होते हैं । फिर भी कौन किसको माने और नहीं माने और स्वमति से नंदीसूत्र की सूचि के अतिरिक्त बाद में बने हुओं को माने यह सब अलग-अलग बुद्धि या दृष्टि के कारण हैं ।

उपलब्ध स्वीकार्य वास्तविक आगम-३७ :-

(१ से १२) आवश्यक सूत्र सहित ११ अंग सूत्र ।

(१३ से १७) उववाई सूत्र से प्रज्ञापना तक एवं जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति ।

(१८) ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति (सूर्य-चंद्र प्रज्ञप्ति नाम तो कल्पित बनाये हुए हैं) तथा सच्चाई के लिये अनेक शास्त्रों में ये नाम प्रक्षेप किये हैं । यथा- स्थानांगसूत्र के स्थान ३-४ में ।

(१९) उपांगसूत्र (निरयावलिकादि ५ तो उसके वर्ग-विभाग हैं)

(२० से २३) चार छेदसूत्र

(२४ से २७) चार मूलसूत्र

(२८) समुत्थान सूत्र **(२९)** ऋषिभाषित सूत्र **(३०)** देवेन्द्रस्तव सूत्र **(३१)** तंदुलवैतालिक सूत्र **(३२)** चंद्रावैद्यक सूत्र **(३३)** गणिविद्या सूत्र **(३४)** आत्मविशोधि सूत्र **(३५)** आतुरप्रत्याख्यान सूत्र **(३६)** महा प्रत्याख्यान सूत्र **(३७)** द्वीपसागर प्रज्ञप्ति सूत्र । ये नंदीसूत्रोक्त प्रकाशित आगम उपलब्ध होते हैं ।

इनके सिवाय नंदी सूत्रोक्त ३६ आगम :-

(१) अंग चूलिका **(२)** वर्ग(उवंग) चूलिका, ये दोनों आचार्य यशोभद्र रचित मिलते हैं । नंदीसूत्रोक्त नहीं मिलते हैं । **(३)** महानिशीथ सूत्र यह नाम नंदीसूत्र में प्रक्षिप्त है क्योंकि इस शास्त्र के विषय में मूर्तिपूजक विद्वान संत लिखते हैं कि इसमें आगमिकता को चेलेंज देने वाले वाक्य हैं, यह किसी का निबंध ग्रंथ जैसा है । ***देखें- 'प्रबंध पारिजात' मुनि कल्याण विजय।***

(४-५) चूलकल्प सूत्र, महाकल्प सूत्र ये दोनों अनुपलब्ध गिने जाते हैं ।

(६-९) निरयावलिकादि ५ नाम नंदी में गलत डाले गये हैं । ५ में से एक उपर(३७ में) गिन लिया है अत: ४ यहाँ गिने हैं ।

(१०) कल्पिका सूत्र- अशुद्धि-भूल से नंदी में लिखा गया है ।

(११) दृष्टिवाद- विच्छेद हो गया है ।

(१२-२३) नंदीसूत्रोक्त १२ उत्कालिक आगम अभी अनुपलब्ध है ।

(२४-३५) नंदीसूत्रोक्त १२ कालिक आगम अभी अनुपलब्ध है ।

(३६) सूर्य-चंद्र प्रज्ञप्ति सूत्र ये दो नाम नये डाले गये है । शास्त्र

का नाम तो एक ही है अतः यहाँ अनुपलब्ध में एक गिन लिया है ।

यों नंदीसूत्र की सूचि में उपलब्ध ७३ आगम नामों में से ३६ नाम वाले अनुपलब्ध या गलत बढे हुए नाम है । शेष उपर कहे गये ३७ नामवाले आगम नंदी में है और आज वे शास्त्र उपलब्ध भी हैं । जो एक पूर्वधरों के द्वारा प्रमाणित स्वीकार कर नंदी में नाम लिपिबद्ध किये गये हैं । इस प्रकार वर्तमान में आगमों की सही-सच्ची नंदीसूत्रोक्त उपलब्ध आगम संख्या ३७ है । अब इसमें अपनी अपनी सोच लगा कर कोई किसी को आगम गिने, किसी को नहीं गिने यह स्वतंत्र स्वतंत्र भ्रमित सोच है ।

प्रश्न :- जिन शास्त्रों में कुछ परिवर्तन हो गया हो अथवा गलत घुस गया हो तो उसे आगम क्यों मानें ? **समाधान :-** यह मात्र अपनी अपनी आग्रह युक्त परंपरा की ओट लेना है। क्यों कि कितने ही अंग सूत्रों में परिवर्तन हो गये है तो भी मानते ही हैं । प्रश्नव्याकरण सूत्र तो पूरा नया ही बन गया है तो भी मानते हैं । उववाई आदि कितने ही सूत्रों के कर्ता का नाम भी प्राप्त नहीं होता है तो भी मानते ही हैं । किसी में मांस भक्षण की पुष्टि की बात प्रक्षिप्त हो गई है तो भी ज्यों का त्यों पाठ रखकर अर्थ की खींचताण की जाती है ।यथा- आचारांग, निशीथ, ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति, भगवती सूत्र।

अतः उपरोक्त ३७ सूत्रों में जो भी मोक्षमार्ग अविरुद्ध तत्त्व मिले उसे स्वीकार करना और मोक्षमार्ग विरुद्ध तत्त्व मिले उसे वैसा समझकर उपेक्षा करना या सुधारना । परंतु पूरा शास्त्र नहीं मानना यह योग्य नहीं है । यथा- गेहुँ की बोरी में कोई मामूली कचरा कं कर दिखे तो साफ किया जाता है या यों ही उपयोग में लेकर भूख शांत की जाती है। किंतु सारे गेहुँ फेंक नहीं देते । वैसे ही शरीर के किसी अंग में विकृति हुई हो तो उसे सुधारना शक्य हो तो सुधारा जाता। नहीं सुधरे तो भी केन्सर सरीखी गांठों वाले भी उस शरीर को फेंक नहीं देते, ५-१०-२० वर्ष की उम्र तक जीवित भी रहते है। तो मांसभक्षक पाठ मिलते हुए भी आचारांग, निशीथ, भगवती और ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति को मान्य करते ही है और उस खराब अंश का समाधान भी कर लेते हैं । वैसे ही नंदीसूत्रोक्त उपलब्ध इन ३७

आगम को स्वीकार करना तथा स्वाध्याय कर तत्त्वज्ञान प्राप्त करना एवं योग्य बुद्धि से हर तत्त्व को समझना चाहिये ।

सार यह है कि सत्य मायने में नंदीसूत्रोक्त उपर कहे गये ३७ उपलब्ध शास्त्रों को अकारण नहीं नकारना चाहिये । यदि कभी शोध करने से ज्ञात हो जाये कि नंदीवाले शास्त्र के नाम से बाद के आचार्यों ने बनाये हैं नंदीवाले नहीं है तो उपर कहे गये अंग चूलिका और वर्ग चूलिका के समान रचनाकार का नाम स्पष्ट घोषित हो जाये तो उसे ३७ की सूचि में नहीं गिन कर आगे वाली ३६ की सूचि में समाविष्ट कर दिया जा सकता है । परंतु बिना आधार प्रमाण के स्वेच्छा से किसी को आगम मान लेना और किसी को आगम मानने से नकार देना उपयुक्त नहीं होता है ।

मंदिरमार्गी और स्थानकवासी दोनों ही संघों को आगम के न्याय से नंदीसूत्र सूचि वाले ही आगम मानने चाहिये । एक पूर्वधर देवर्धिगणी के बाद के आचार्य की कृति को आगम में नहीं गिनकर जैन साहित्य, ग्रंथ, व्याख्या ग्रंथ, निबंध ग्रंथ तक ही सीमित रखना चाहिये और नंदी सूत्रोक्त उपलब्ध आगमों को मनमाने तर्क से नकारना भी नहीं चाहिये। इस प्रकार इस आगम संख्या विचारणा की जैन विद्वानों को समीक्षा कर सत्य स्वीकार करने की उदारता रखकर आगम संख्या की समाज में अेकरूपता स्वीकार की जा सकती है ।

उपरोक्त स्वीकृत ३७ आगमों में- ११ अंग, ७ उपांग, ४ मूल, ४ छेद, १ आवश्यक सूत्र तथा समुत्थान, ऋषिभाषित आदि १० यों कुल ३७ है । जिसमें ११ अंग + आवश्यक सूत्र ये १२ गणधर कृत है, ३ सूत्र गणधर कृत में से उद्धृत है(निशीथ, उतराध्ययन, ऋषिभाषित), ३ छेद सूत्र १४ पूर्वी रचित और शेष १९ आचार्य कृत अर्थात् एक पूर्वधर कृत या उद्धृत है ।

अतः हर किसी को बिना आधार प्रमाण के १४ पूर्वी या १० पूर्वी का मानकर आत्म संतोष करना गलत है । तथा गणधर कृत आदि भी प्रायः सभी आगम एक पूर्वी देवर्धिगणी के द्वारा संशोधित, संपादित, अभिवर्धित आदि हैं ऐसा आगम इतिहास के समीक्षण से एवं आगम अवलोकन से अवभाषित होता है । इस कारण काल प्रभाव से हम एक

पूर्वधर द्वारा प्रमाणित आगम स्वीकार कर रहे है ऐसा सच्चा मानना चाहिये। दसपूर्वी आदि का ही आगम मानने से तो ५-७ आगम ही मान सर्केंगे ।

नंदी की आगम सूचि में आई हुई अशुद्धि :-

(१) स्थानांग कथित एक शास्त्र के १० अध्ययनों को ११ शास्त्र गिन रखा है । (२) उपांग सूत्र के ५ वर्गों को नंदी में ६ शास्त्र गिन रखा है । (३) महानिशीथ सूत्र किसी के द्वारा प्रक्षिप्त है जो हरिभद्र सूरि के भी बाद का ग्रंथ है । (४) ज्योतिषगण राज प्रज्ञप्ति सूत्र के एक नाम को निकाल कर चंद्र सूर्य प्रज्ञप्ति दो नाम डाले गये है।

इस प्रकार उपलब्ध नंदी सूचि अनुसार एक आगम को दो और अेक आगम को पाँच-छ गिनना, मानना तथा ३२ या ४५ की संख्या में गिनना असंगत और अतार्किक है ।

सार :- सारे परीक्षण विचारणा का निष्कर्ष यही है कि सही मायने में अभी ३७ शास्त्र उपलब्ध है जो देवर्धिगणी आदि एक पूर्वधारी द्वारा सम्मत है ।

नंदी सूत्रोक्त अनुपलब्ध १२ उत्कालिक आगम :- (१) कल्प्याकल्प्य (२) महाप्रज्ञापना (३) प्रमादाप्रमाद (४) पोरिषीमंडल (५) मंडलप्रवेश (६) विद्याचरण विनिश्चय (७) ध्यान विभक्ति (८) मरण विभक्ति (इसे मरण समाधि नामक ग्रंथ में ले लिया है) (८) वीतरागश्रुत (१०) संलेखना श्रुत (११) विहारकल्प (१२) चरणविधि ।

नंदी सूत्रोक्त अनुपलब्ध १२ कालिक आगम :- (१) क्षुल्लिका विमान प्रविभक्ति (२) महल्लिका विमान प्रविभक्ति (३) वियाह-चूलिया (४) अरुणोपपात (५) वरुणोपपात (६) गरुलोपपात (७) धरणोपपात (८) वेसमणोपपात (९) वेलंधरोपपात (१०) देविंद्रोपपात (११) उत्थान श्रुत (१२) नागपरियावनिका ।

ये २४ शास्त्र देवर्द्धिगणि के समय तथा बाद में कभी उपलब्ध थे इसीलिये इनका नंदी सूत्र में नाम है । परंतु अज्ञात काल से इन सूत्रों की कोई भी प्रत भारत के भंडारों में प्रायः उपलब्ध नहीं हुई है, कोबा के ज्ञान भंडार में भी जांच कर ली गई है ।अतः इन नंदी सूत्रोक्त २४ शास्त्र को नहीं मिलने से विछिन्न मान सकते है ।

परिशिष्ट- ८

सूत्रों के नामों में परिवर्तन विवरण

स्थानकवासी मान्य ३२ आगम श्वे.मूर्तिपूजक को भी हमेशा से वे ही मान्य है । अतिरिक्त १३ आगमों में परिवर्तन अथवा विकल्प होते रहे हैं यथा—

विक्रम संवत १३२५ में मान्य (विचारसार ग्रंथ में)		अभिधान राजेन्द्र कोष में मान्य विक्रम संवत १९७० में (करीब)	
१	द्वीप सागर प्रज्ञप्ति सूत्र	१	महानिशीथ सूत्र
२	ऋषिभाषित सूत्र	२	पंचकल्प सूत्र
३	नरक विभक्ति सूत्र	३	भक्त परिज्ञा प्रकीर्णक
४	ध्यान विभक्ति सूत्र	४	संस्तारक प्रकीर्णक
५	गणधरावली सूत्र	५	महाप्रत्याख्यान प्रकीर्णक अथवा वीर स्तव प्रकीर्णक
६	समुत्थान सूत्र (नरेन्द्र-देवेन्द्रा)	६	चउसरण प्रकीर्णक
७	मरण विभक्ति सूत्र	७	समाधिमरण प्रकीर्णक
८	आतुर प्रत्याख्यान सूत्र	८	आतुर प्रत्याख्यन प्रकीर्णक
९	पाक्षिक सूत्र	९	पाक्षिक सूत्र
१०	देवेन्द्र स्तव सूत्र	१०	देवेन्द्र स्तव प्रकीर्णक
११	तंदुलवैतालिक सूत्र	११	तंदुलवैतालिक प्रकीर्णक
१२	चंन्द्रावैद्यक सूत्र	१२	चंन्द्रावैद्यक प्रकीर्णक अथवा गच्छाचार प्रकीर्णक
१३	गणिविद्या सूत्र	१३	गणिविद्या प्रकीर्णक

पाठक देखेंगे कि ६ नाम वे ही रहे, ७(९) नाम नये आ गये। पुराने आचार्य के संस्कृत ग्रंथ में स्वीकार किये हुए भी २००-३०० वर्ष बाद किसी ने बदल दिये हैं । इसमें दो जगह अथवा अथवा कर दिया है जब कि वि.सं.१३२५ में कोई अथवा विकल्प बिना १३ सूत्र नाम थे। तथा कइयों के साथ प्रकीर्णक शब्द नया डाला गया। पुराने नामों में किसी के साथ प्रकीर्णक शब्द का नाम निशान भी नहीं था। उसके बाद ही प्रकीर्णक शब्द डालने की बुद्धि चली तो नंदीसूत्र में एवं उत्तराध्ययनसूत्र अध्ययन-२८ में और कई जगह

प्रकीर्णक शब्द योग्य-अयोग्य डालकर गिनती हुई हैं । सभी तीर्थंकरों के शासन में १२ अंग ही होते हैं। हुंडावसर्पिणी में लेखन युग के कारण देवर्धिगणी ने नंदी में विशेष शास्त्रों के नाम दिये। जिसकी संख्या स्पष्ट नहीं करने से मध्यकाल में (देवर्धि के बाद और लोकाशाह के पहले) कई नाम डाले गये और कई निकाले गये । जो आज ७३ नाम मिलते हैं । जिसमें ३७+२५=६२ नाम वास्तविक लगते हैं। उनमें २५ अनुपलब्ध होने से आज ३७ नाम वाले शास्त्र वास्तविक और उपलब्ध होते हैं।

अभिधान राजेन्द्र कोश में ४५ आगम शीर्षक लगाकर उपर कहे १३(१५) नाम गिनाकर भी १३ नाम और भी दिये हैं यों कुल ६० आगम नाम और उनका परिचय दिया है तो भी शीर्षक तो ४५ आगम विवरण ऐसा ही लगाया है । ६० नाम क्यों दिये कुछ खुलासा नहीं किया । फिर भी स्पष्ट है कि आगम गिनने कि एक स्थिर परंपरा नहीं रखी है अर्थात् आगम ४५ बोलते या लिखते रहना फिर भी नाम ४७, ५०, ६० आदि कुछ भी गिनते रहना ।

जब कि वि.सं. १३२५ में प्रद्युम्नसूरि ने विचार सार नामक संस्कृत श्लोक बद्ध ग्रंथ में १३ ही नाम स्थिरता पूर्वक दिये हैं ।

नंदी सूत्र में कहे १३ नाम इस प्रकार है—

१	ऋषिभाषित सूत्र	७	आत्म विशोधि सूत्र
२	समुत्थान सूत्र	८	आतुर प्रत्याख्यान सूत्र
३	देवेन्द्र स्तव सूत्र	९	द्वीप सागर प्रज्ञप्ति सूत्र
४	तंदुलवैतालिक सूत्र	१०	महाप्रत्याख्यान सूत्र
५	चन्द्रावैद्यक सूत्र	११	अंग चूलिका सूत्र
६	गणिविद्या सूत्र	१२	वर्ग चूलिका सूत्र

१३ महानिशीथ सूत्र

११ वाँ और १२ वाँ सूत्र विलुप्त हो जाने से बाद के आचार्यों ने उन्हीं नाम के सूत्र बना दिये हैं । १३ वाँ महानिशीथ नाम प्रक्षिप्त हैं । संभवतः यह ग्रंथ हरिभद्रसूरि के बाद में अथवा प्रद्युम्नसूरि के भी बाद में (अर्थात् वि.सं. १३२५ के बाद में) बनाकर नंदी में नाम डाला गया लगता है । क्यों कि प्रद्युम्नसूरि ने ४५

आगमों के नाम में महानिशीथ का नाम नहीं गिनाया हैं । यदि उस समय नंदी सूत्र में होता तो वे क्यों छोडते ? ऐसा स्पष्ट होता हैं । नंदी सूत्र में बढाने वाला अन्य शास्त्रो में भी बढा सकता है । यथा- प्रकीर्णक जगह-जगह बढाना अर्थात् देवर्धिगणी सूचित आगम लिस्ट में बढाने वाला उनके बाद के ग्रंथों, टीका, भाष्यों में बढावे उसमें कुछ भी असंभव नहीं हैं अर्थात् बढा सकते हैं।

चौरासी आगम मान्यता में फेरफार :-

पंन्यास चतुरविजयजी म.सा.ने **देवेन्द्र नरकेन्द्र** ग्रंथ की प्रस्तावना में और पंन्यास पुण्यविजयजी म.सा.ने अपने **पइण्णग सुत्ताइं भाग-१** की प्रस्तावना में ८४ आगम प्राचीनकाल में होने का एवं गिनने का संकेत-हवाला दिया कि नंदी सूत्र और पाक्षिक सूत्र सूचित कुल ८४ आगम माने जाते थे । परंतु वर्तमान में श्वे. मू.पू. समाज में अन्य ८४ आगम माने जाते हैं उन दोनों की तुलना तालिका द्वारा की जाती है । जिसमें १ से ३२ स्थानकवासी मान्य ही श्वे.मू.पू. द्वारा मान्य है । शेष ३३ से ८४ तक इस प्रकार है—

नंदीसूत्र तथा पाक्षिक सूत्रानुसार		**वर्तमान में मू.पू. द्वारा मान्य**		
३३	कल्प्याकल्प्य सूत्र	**नया मान्य**	**३३**	पर्युषणा कल्प सूत्र
३४	चुल्लकल्प सूत्र	**नया मान्य**	३४	यतिजीत कल्प
३५	महाकल्प सूत्र	**नया मान्य**	३५	श्राद्धजीत कल्प
३६	महाप्रज्ञापना सूत्र	**नया मान्य**	३६	पाक्षिक सूत्र
३७	प्रमादाप्रमाद सूत्र	**नया मान्य**	३७	क्षमापना सूत्र
३८	देवेन्द्र स्तव		३८	देवेन्द्र स्तव
३९	तंदुल वैतालिक		३९	तंदुल वैतालिक
४०	चंद्रावेधक		४०	चंद्रावेधक
४१	पोरषी मंडल सूत्र	**नया मान्य**	४१	वंदितु
४२	मंडलप्रवेश सूत्र	**नया मान्य**	४२	अजीवकल्प
४३	विद्याचरण विनिश्चय	**नया मान्य**	४३	वीर स्तव
४४	गणिविद्या सूत्र		४४	गणिविद्या
४५	ध्यान विभक्ति सूत्र	**नया मान्य**	४५	सिद्धप्राभृत
४६	मरण विभक्ति सूत्र	**नया मान्य**	४६	तीर्थोद्धार (तित्थोगालिय)

४७	आत्म विशोधि सूत्र	**नया मान्य**	४७	आराधना पताका
४८	वीतरागश्रुत सूत्र	**नया मान्य**	४८	ज्योषकरण्डक
४९	संलेखना सूत्र	**नया मान्य**	४९	अंगविद्या
५०	विहारकल्प सूत्र	**नया मान्य**	५०	तिथी प्रकीर्णक
५१	चरणविधि सूत्र	**नया मान्य**	५१	पिंड विशुद्धि
५२	आतुरप्रत्याख्यान सूत्र		५२	आतुरप्रत्याख्यान
५३	महाप्रत्याख्यान सूत्र		५३	महाप्रत्याख्यान
५४	महानिशीथ सूत्र		५४	महानिशीथ
५५	ऋषिभाषित सूत्र		५५	ऋषिभाषित
५६	द्वीपसागर प्रज्ञप्ति सूत्र		५६	द्वीपसागर प्रज्ञप्ति
५७	क्षुल्लिका विमान प्रविभक्ति सूत्र	**नया मान्य**	५७	सारावली
५८	महल्लिका विमान प्रविभक्ति सूत्र	**नया मान्य**	५८	पर्यंताराधना
५९	अंग चूलिका सूत्र		५९	अंग चूलिका
६०	वर्ग(उवंग) चूलिका सूत्र		६०	वग्ग चूलिका
६१	विवाह चूलिका सूत्र	**नया मान्य**	६१	योनि प्राभृत
६२	अरुणोपपात सूत्र	**नया मान्य**	६२	आचारांग निर्युक्ति
६३	वरुणोपपात सूत्र	**नया मान्य**	६३	सूयगडांग निर्युक्ति
६४	गुरुलोपपात सूत्र	**नया मान्य**	६४	उतराध्ययन निर्युक्ति
६५	धरणोपपात सूत्र	**नया मान्य**	६५	दशवैकालिक निर्युक्ति
६६	वेसमणोपपात सूत्र	**नया मान्य**	६६	निशीथ निर्युक्ति
६७	वेलंधरोपपात सूत्र	**नया मान्य**	६७	दशाकल्प निर्युक्ति
६८	देविन्द्रोपपात सूत्र	**नया मान्य**	६८	बृहत्कल्प निर्युक्ति
६९	उत्थान सूत्र	**नया मान्य**	६९	व्यवहार निर्युक्ति
७०	समुत्थान सूत्र	**नया मान्य**	७०	सूर्यप्रज्ञप्ति निर्युक्ति
७१	नागपरियापनिका सूत्र	**नया मान्य**	७१	ऋषिभाषित निर्युक्ति
७२	कल्पिका सूत्र	**नया मान्य**	७२	संसक्त निर्युक्ति
७३	द्रष्टिवाद सूत्र	**नया मान्य**	७३	विशेषावश्यक भाष्य
७४	वण्हि सूत्र	**नया मान्य**	७४	जीव विभक्ति
७५-७९	एक आवश्यक सूत्र के ६ गिने	**नया मान्य**	७५	कवच प्रकरण
८०	आशीविष भावना सूत्र	**नया मान्य**	७६	वृद्ध चतुःशरण
८१	द्रष्टि विष भावना सूत्र	**नया मान्य**	७७	जम्बूपयण्णा
८२	चारण भावना सूत्र	**नया मान्य**	७८	पंचकल्प भाष्य

८३	महास्वप्न भावना सूत्र	**नया मान्य**	७९	चतुःशरण पयण्णा
८४	तेयनिसर्ग भावना सूत्र	**नया मान्य**	८०-८१	पिंडनिर्युक्ति, ओघनिर्युक्ति
		नया मान्य	८२	भक्त परिज्ञा
		नया मान्य	८३	संस्तारक प्रकीर्णक
		नया मान्य	८४	मरणसमाधि
नोट :- क्रमांक ७३ तक नंदीसूत्रोक्त है, आगे ८४ तक पाक्षिकसूत्रोक्त विशेष है।				

प्राचीन ८४ मान्य आगम में भी ४१ को छोड दिया गया और नये ४१ मानना शुरु कर दिया। इस प्रकार मंदिरमार्गी समाज में आगम गिनने में भी परिवर्तन क्यों आता रहा उसका कोई खास कारण भी नहीं दिखता और आगमाधार भी नहीं होता । वह भी ग्रहदशा या भस्मग्रह का प्रभाव होगा । पंन्यास चतुरविजयजी ने और पंन्यास पुण्यविजयजी ने नंदी सूत्रोक्त और पाक्षिक सूत्रोक्त मिलाकर ८४ आगम स्वीकारे हैं जो आधार सहित कहे गये है। तो भी इन्होंने ४१ नये चला दिये और नंदी-पाक्षिक सूत्रोक्त ४१ को छोड दिये । ऐसा परिवर्तन आगमों में करने वालों को इसका समाधान सोचना चाहिये । यदि नये गिनने भी हो तो पुरानों को निकालने की कोशीश तो नहीं करनी चाहिये । क्योंकि ऐसा करने से प्राचीन पुरुषों की महान आशातना अवहेलना होती है ।

नये नये आगम सम्मत साहित्य का सर्जन करना टिप्पणीय या निंदनीय नहीं होता है किंतु उस साहित्य को प्राचीन आगम मान्य सूचि में डालना और पूर्व स्वीकृत को स्वेच्छा से निकाल देना वह विचारणीय बनता है। उसी का यहाँ दिग्दर्शन कराया गया है ।

इस चर्चा का यह मतलब भी नहीं है कि नया निष्पादित आगम सम्मत साहित्य उपेक्षणीय है अपितु आगम सम्मत नये साहित्य सर्जक सभी अभिनंदनीय है और वह साहित्य भी सन्माननीय, पठनीय एवं अनुप्रेक्षणीय है । किंतु कोई उसे पूर्वधर कृत स्वीकृत आगम तुल्य कह दे या पूर्वधर देवर्धिगणि सूचित नंदीसूची में प्रक्षिप्त कर दे अथवा पूर्वाचार्य स्वीकृत ८४ में प्रक्षिप्त कर पूवाचार्य स्वीकृत को निकाल दे या उसे गेट आउट कर दे वह बहुत गलत और विचारणीय होता है । यथा नंदी सूत्र (एक पूर्वधर) मान्य समुत्थान सूत्र को

४५ आगम से एवं ८४ आगम से उडा देना, गेट आउट कर देना तो मनमानी करना स्पष्ट है और जो नंदी सूत्रोक्त नहीं है, बाद के आचार्यों से बनाये गये हैं उनको ४५ में और ८४ में गिनते रहना, ऐसी मनमानी गिनना निकालना यहाँ विचारणीय है ।

वास्तव में नंदी सूत्रोक्त एक पूर्वधर रचित कथित शास्त्रों को आगम गिनना ही उचित हो सकता है, १४ पूर्वी या १० पूर्वी के आगम अनुपलब्ध होने से। शेष बाद के आचार्यों के सर्जित ग्रंथों को जैन साहित्य, ग्रंथ, निबंध ग्रंथ, शोध ग्रंथ, व्याख्या ग्रंथ रूप और साहित्य रूप में स्वीकार करना, सन्मान देना और आदरणीय, अध्ययनीय समझना चाहिये । जो कि आगम सम्मत रचना हो, आगम विरुद्ध या आगम निरपेक्ष न हो एवं स्वच्छंद मति निष्पादित न हो किंतु आगम मूलक, आगम विवेचक हो; वह सभी कृतियें महापुरुषों की, प्राचीन आचार्यों की सम्माननीय, संग्रहणीय और स्वीकार्य होती है । उनसे घृणा, नफरत करना भी उचित नहीं होता है।

★ ★ ★ ★ ★

आगम अमृतरस और विज्ञान

महावैज्ञानिक तीर्थंकरों की साधना का अमृतरस हमारे आगम है । ऐसे आगम हमें अपने असीम पुण्य से मिले हैं । ऐसे हम जैनों को अल्पज्ञानी रूप (अज्ञानी) वैज्ञानिकों के ज्ञान की बातों से महावैज्ञानिकों के ज्ञान अमृतरस की कसौटी नहीं करना चाहिये । क्योंकि आज के मतिश्रुत अज्ञानी वैज्ञानिकों का ज्ञान कल्पना मूलक और छद्मस्थ बुद्धि शोध प्रयत्नक है । जब की जैन आगम की सैद्धांतिक बातें महावैज्ञानिक तीर्थंकरों की अनुपम साधना से प्राप्त सच्चे केवल ज्ञान से समुत्पन्न है ।

दश प्रकीर्णक सहित १३ आगम

नंदी सूत्रोक्त	विचारसार ग्रंथ में	राजेन्द्र कोष में	वर्तमान प्रचलन में
द्वीपसागर प्रज्ञप्ति	**द्वीपसागर प्रज्ञप्ति**	जीत कल्प ।	**महानिशीथ**
ऋषिभाषित सूत्र	ऋषिभाषित सूत्र	चउशरण ।	जीत कल्प/पंच कल्प ।
समुत्थान सूत्र	समुत्थान सूत्र	महाप्रत्याख्यान/वीर स्तव।	ओघनिर्युक्ति/पिंड निर्यु. ।
आतुर प्रत्याख्यान	आतुर प्रत्याख्यान	आतुर प्रत्याख्यान	चतुःशरण प्रकी. ।
महा प्रत्याख्यान	पाक्षिक सूत्र ।	पाक्षिक सूत्र ।	आतुर प्रत्याख्यान
देवेन्द्र स्तव	देवेन्द्र स्तव	देवेन्द्र स्तव	देवेन्द्र स्तव
तंदुल वैतालिक	तंदुल वैतालिक	तंदुल वैतालिक	तंदुल वैतालिक
चन्द्रा वेधक	चन्द्रा वेधक	चन्द्रावेधक/गच्छाचार प्र.।	चन्द्रा वेधक
गणिविद्या	गणिविद्या	गणिविद्या	गणिविद्या
आत्मविशोधि	गणधरावली ।	भक्तप्रत्याख्यान ।	भक्त परिज्ञा ।
अंग चूलिका	नरक विभक्ति ।	संस्तारक ।	संस्तारक ।
वर्ग चूलिका	ध्यान विभक्ति ।	समाधि मरण ।	महा प्रत्याख्यान
महानिशीथ	मरण विभक्ति ।	महानिशीथ	मरण समाधि ।
	इसमें नंदीसूत्र से पाँच नये रखे ।	इसमें नंदीसूत्र से आठ नये रखे ।	इसमें नंदीसूत्र से आठ नये रखे ।
	आठ नंदी के	सात नंदी के	सात नंदी के
	कुल - १३	कुल - १५	कुल - १५

हिसाब :- नंदी के १३ + विचार सार के ५ नये + राजेन्द्र कोष के ७ नये + प्रचलन में ३ नये = २८ कुल नाम १३ आगम के लिये वैकल्पिक रूप से आये हैं । इसके अतिरिक्त राजेन्द्र कोष में ४ और भी नये लिखे हैं अतः २८ + ४ = ३२ । पुण्यविजयजी म.सा. ने २२ प्रकीर्णक नामों में ७ नये लिखे हैं तो ३२ + ७ = ३९ । इतने प्रकीर्णक आज उपलब्ध होते हैं और किसी किसी के द्वारा स्वीकारे जाते हैं । श्री यशोकीर्ति विजय आचार्य के **चतुःशरण प्रकीर्णकम् ग्रंथ की प्रस्तावना में कुल ८८ प्रकीर्णकों के नाम दिये हैं ।**

जैसी दे वैसी मिले पुस्तक में दिये ४० प्रश्नों के उत्तर मू.पू. लोग दे नहीं सकते फिर भी तत्त्व निश्चय नामक पुस्तक निकाल कर अपने दुराग्रह का पोषण करते हैं यह उनकी अज्ञान दशा का द्योतक है, किसी में कुछ भी ज्ञान और प्राण हो तो क्रमशः४० प्रश्नों का उत्तर देना चाहिये ।

दश प्रकीर्णकों के मतांतर

	नंदी	वि.सं.१३२५ प्रद्युम्नसूरि	वि.सं.१९७३ राजेन्द्र कोश	वि.सं.२००० आगमोदय समिति	वि.सं.२०३५ पुण्यविजय	सन. २०१६ सागरमलजी	सन. २००० दीपसागर मुनि
१	देवेन्द्र स्तव	देवेन्द्र स्तव	देवेन्द्र स्तव	देवेन्द्र स्तव	देवेन्द्र स्तव	देवेन्द्र स्तव	देवेन्द्र स्तव
२	तंदुल वैतालिक	तंदुल वैतालिक	तंदुल वैतालिक	तंदुल वैतालिक	तंदुल वैतालिक	तंदुल वैतालिक	तंदुल वैतालिक
३	चंद्र वेध्यक	चंद्र वेध्यक	चंद्र वेध्यक	चंद्र वेध्यक	चंद्र वेध्यक	-----	चंद्र वेध्यक
४	गणिविद्या	गणिविद्या	गणिविद्या	गणिविद्या	गणिविद्या	गणिविद्या	गणिविद्या
५	आतुर प्रत्याख्यान	आतुर प्रत्याख्यान	आतुर प्रत्याख्यान	आतुर प्रत्याख्यान	आतुर प्रत्याख्यान	-----	आतुर प्रत्याख्यान
६	महा प्रत्याख्यान	-----	महा प्रत्याख्यान	महा प्रत्याख्यान	महा प्रत्याख्यान	महा प्रत्याख्यान	महा प्रत्याख्यान
७	आत्म विशोधि	-----	-----	-----	-----	-----	-----
८	द्वीपसागर प्रज्ञप्ति	द्वीपसागर प्रज्ञप्ति	-----	-----	-----	द्वीपसागर प्रज्ञप्ति	-----
९	अंग चूलिया	-----	-----	-----	-----	-----	-----
१०	वग्ग चूलिया	-----	-----	-----	-----	-----	-----
११	-----	गणधरावली	-----	-----	-----	-----	-----
१२	-----	नरक विभक्ति	-----	-----	-----	-----	-----
१३	-----	ध्यान विभक्ति	-----	-----	-----	-----	-----
१४	-----	मरण विभक्ति	-----	-----	-----	-----	-----
१५	-----	-----	चउसरण	चउसरण	चउसरण	चउसरण	चउसरण
१६	-----	-----	भक्त परिज्ञा	भक्त परिज्ञा	भक्त परिज्ञा	-----	भक्त परिज्ञा
१७	-----	-----	संस्तारक	संस्तारक	संस्तारक	संस्तारक	संस्तारक
१८	-----	-----	गच्छाचार	गच्छाचार	-----	गच्छाचार	गच्छाचार
१९	-----	-----	वीर स्तव	-----	वीर स्तव	वीर स्तव	वीर स्तव
२०	-----	-----	समाधि मरण	मरण समाधि	-----	-----	-----
२१	-----	-----	-----	-----	-----	सारावली	-----
कुल	१०	१०	१२	१०	१०	१०	११

इस तालिका में कुल २१ प्रकीर्णकों के नाम है । पुण्यविजयजी म.सा. ने प्रकीर्णक सूत्र भाग -१ में इन २१ में से ६ छोडकर ७ स्वीकार कर २२ प्रकीर्णक संख्या स्वीकारी हैं। **छोडे गये ६** = अंगचूलिया, वग्ग चूलिया, गणधरावली, नरक विभक्ति, ध्यान विभक्ति, मरण विभक्ति। **नये स्वीकारे ७** = ऋषिभाषित, अजीव प्रकरण, जीव विभक्ति, तित्थोगालिय, ज्योतिषकरंडक, अंग विद्या, सिद्धपाहुड। प्रायः विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि दस प्रकीर्णक संख्या में प्राचीन काल से आज तक मतमतांतर चलते आये हैं । वास्तव में प्रकीर्णक की आगम रूप मान्यता मूल में ही असत्यता से ही शुरू की गई है और सर्वत्र अनैतिक प्रक्षेपों की भरमार की गई है जिसे कोई भी समझ सकता है।३२ मौलिक आगमों में कोई मान्यता भेद कभी हुए नहीं है तो प्रकीर्णकों में क्यों ? क्यों कि यह प्रक्षेपों के अनीति से खडा किया गया है। जो प्रद्युम्न सूरि तक नहीं था। उसके बाद का होते हुए भी नंदी आदि आगम में और टीका भाष्य आदि में मिलना प्रक्षेप बुद्धिवालों की करामात का रिजल्ट है। प्रक्षेप बुद्धि का भंडाफोड तो एक अंग्रेज ने भी उपासक दशांग सूत्र के प्रकाशन में किया है तो हम करें उसमें क्या बडी बात ?

परिशिष्ट- ९

२० विहरमान तीर्थंकर नाम तुलना

क्रम	इस शास्त्र में	परंपरा में	विजय मान्यता पहली	दूसरी
१	**श्री सीमंधर स्वामी**	**श्री सीमंधर स्वामी**	८	८
२	श्री युगमंधर स्वामी	श्री युगमंधर स्वामी	२५	९
३	श्री बाहु स्वामी	श्री बाहु स्वामी	९	२४
४	श्री सुबाहु स्वामी	श्री सुबाहु स्वामी	२४	२५
५	श्री सुजात स्वामी	श्री सुजात स्वामी	८	८
६	श्री स्वयंप्रभ स्वामी	श्री स्वयंप्रभ स्वामी	२५	९
७	श्री ऋषभानन स्वामी	श्री ऋषभानन स्वामी	९	२४
८	श्री अनंतवीर्य स्वामी	श्री अनंतवीर्य स्वामी	२४	२५
९	श्री सूर्यप्रभ स्वामी	श्री सूर्यप्रभ स्वामी	८	८
१९	श्री विशालभद्र स्वामी	श्री विशालभद्र स्वामी	२५	९
११	श्री वज्रधर स्वामी	श्री वज्रधर स्वामी	९	२४
१२	श्री चन्द्रानन स्वामी	श्री चन्द्रानन स्वामी	२४	२५
१३	श्री चन्द्रबाहु स्वामी	श्री चन्द्रबाहु स्वामी	८	८
१४	श्री भुजंगेश्वर स्वामी	श्री भुजंगदेव स्वामी	२५	९
१५	श्री नेमप्रभ स्वामी	श्री ईश्वर स्वामी	९	२४
१६	श्री अजित स्वामी	श्री नेमिप्रभु स्वामी	२४	२५
१७	श्री वीरसेन स्वामी	श्री विरसेन स्वामी	८	८
१७	श्री महाभद्र स्वामी	श्री महाभद्र स्वामी	२५	९
१९	श्री देवयश स्वामी	श्री देवसेन(देवयश) स्वामी	९	२४
२०	श्री अजितानंतवीर्य स्वामी	श्री अजितवीर्य स्वामी	२४	२५

सभी का **जन्म** वैशाख वद-१०, **दीक्षा** फागण सुद-३, **केवलज्ञान** चैत्र सुद-१३ और **निर्वाण** श्रावण सुद-३ को होगा । अजितनाथ तीर्थंकर के समय उत्कृष्ट १७० तीर्थंकर हुए । उन सबके नामादि **''आपणा तीर्थंकरो''** नामक पुस्तक में दिये है । वह पुस्तक- श्री मुंबई जैन युवक संघ, ३८५- सरदार वल्लभ भाई पटेल मार्ग, मुंबई- ४ से प्रकाशित हुई है। संग्राहक- ताराबेन रमणलाल शाह है।

परिशिष्ट- १०

मुनि श्री कल्याण विजयजी के विचार

[प्रबंध पारिजात ग्रंथ में]

(१) चौदह पूर्वी भद्रबाहु के दुष्काल में दक्षिणापथ में जाने की बात बहुत अर्वाचीन है । दिगम्बर विद्वान भी द्वितीय भद्रबाहु को दक्षिण में जाने वाले मानते है।

(२) आदि पुराण ग्रंथ भी विक्रम संवत १०६५ में जिनसेन ने बनाया था उसमें शक संवत ७०५ लिखा है । अतः भद्रबाहु संबंधी कहानियाँ अर्वाचीन कल्पनाएँ है ।

(३) श्वेतांबर साहित्य में विशाखाचार्य या विशाखा गणि नामों का उल्लेख भी नहीं है । निशीथ चूर्णि के अंत में उनके नामकी तीन गाथाएँ १२वीं सदी के बाद किसी लहिये ने डाली है किसी के द्वारा देने पर । पृष्ट - ७ प्रबंध पारिजात ।

(४) श्वेतांबरो के अर्वाचीन कथा साहित्य में जो भद्रबाहु संबंधी कथानक मिलते हैं वे भी श्रुत केवली भद्रबाहु से मेल नहीं खाते हैं क्योंकि उन कथाओं में भद्रबाहु को प्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिर का भाई माना है । जब कि वराहमिहिर तो विक्रम की सातवीं सदी में हुए हैं । जो द्वितीय भद्रबाहु के भाई थे। पृष्ट - ६ प्रबंध पारिजात ।

(५) उपधान प्रवृत्ति और आडंबर की आरंभ समारंभ की बहुत निंदा कर उसे अनुपयोगी ठहराया है । पृष्ट - ७७ प्रबंध पारिजात ।

(६) मंदिर बनाने की प्रेरणा करने पर निषेध करने वाले आचार्य कुवलयप्रभ के तीर्थंकर गोत्र बांधने का महानिशीथ अ. ५ सूत्र १२९ का हवाला दिया है । पृष्ट - १४० प्रबंध पारिजात ।

(७) आजकल का पर्युषण कल्प सूत्र १२०० श्लोक से भी अधिक प्रमाण है। परंतु यह परिमाण मौलिक नहीं है। पूर्वकाल में जिस पर्युषणा कल्प का जैन साधु पठन श्रवण करते थे वह इतना बडा नही था किंतु वर्तमान पर्युषणा कल्प का अंतिम अधिकार समाचारी ही उस समय का पर्युषणा कल्प था और उसका पठन श्रवण श्रमण-श्रमणी, काल प्रतिलेखन पूर्वक रात्रि में प्रतिक्रमण के बाद

करते थे। न उसकी ९ वाचनाए थी और न वह संघ की सभा में पढा जाता था। आनंदपुर में रहने वाले शिथिलाचारी साधुओं ने सभा में सुनाने की योजना की फिर बाद में सुविहित श्रमणों ने अपनाया और उसमें जिन चरित्र स्थविरावली और समाचारी मिला कर पढना सुनाना सभा में शुरू किया। इस प्रकार वर्षों तक शिथिलाचारियों ने सभा में वांचा । सुविहित साधु तो रात्रि के प्रथम प्रहर में ही संवत्सरी के दिन काल ग्रहण करके इसे पढते सुनते थे। रहते रहते सुविहितों ने भी उस आगमिक परिपाटी को छोडकर सभा में इसे वाचना शुरू किया। धीरे धीरे उसे रसप्रद बनाने के लिये सुभाषित, कथानक आदि मसाला बढ गया । पृष्ट- १४४ प्रबंध पारिजात- मुनि कल्याण विजय ।

[आज के मंदिरमार्गी उसे ही भगवद् भाषित १४ पूर्वी भद्रबाहु रचित १२०० श्लोक प्रमाण उस कल्प सूत्र की दैनिक पत्रों में अतिशयोक्ति युक्त गुणगाथा गाने लगे है । ऐसा स्पष्ट खोटा चलाने वाले बडी शान से खोटी प्ररूपणा सच्चे बनकर एक मत से संगठन पूर्वक करते है जिसे एक मंदिर मार्गी विद्वान संत ने पूरी तरह अपने निबंध ग्रंथ मे खोल कर स्पष्ट कर दिया है ।

वास्तव में २००० वर्ष के भस्म ग्रह के प्रभाव से ऐसे अनेक खोटे कर्तव्य प्ररूपण किये है। यथा मंदिर मूर्ति के अनेक पाप, आगम में सिद्धायतन (सेकडों) प्रक्षेप के महा पाप कार्य, साधुलिंग खराब करने के अनेक कार्य (डंडा, डंडासन, हत्थपत्ती, हंडी, चरवला, रंगीन चित्रामों से भरा निशीथिया, रंगीन पट्टे वाली कंबली कंधे पर, छोटा चोलपट्टा फिर उस पर बडी चद्दर, छोटा ओघा फिर पूंजने के लिये बडा रजोहरण(डंडासन) ऐसे अशास्त्रीय कार्य एवं प्रवृत्तियें, वर्षा में भी कंबली ओढकर गोचरी निकलना, रात्रि में भी कंबली ओढकर मंदिर के लिये खुले में जाना एवं सूर्यास्त बाद भी भ्रमण एवं विहार करना और अंत में रात्रि के दो-तीन बजे अंधेरे में कंबली ओढकर लंबे लंबे विहार करना आदि एकता से मनमते शुरू कर दिये । जिसकी गली निकालने के लिये अपने घर के कल्प सूत्र में पाठ भी बना लिया है। इसी आदत से चौथ की संवत्सरी करने के

लिये कल्प सूत्र में मनघडंत पाठ बना लेना और उसे प्रामाणिकता की छाप लगाने के लिये समवायांग सूत्र में भी पाठ भगवान के नाम से रख देना आदि कार्य एवं प्रक्षेप करके भी अब सच्चे बनने के लिये हल्ला करना कि सूत्र में एक अक्षर कम ज्यादा करने वाला अनंत संसार वृद्धि करता है। खुद भले कहीं नमोत्थुणं डाले कहीं चेइयं डाले, कहीं चेइयं के साथ अरिहंत डाले तो कुछ भी पाप नहीं लगे।- संपादक]

परिशिष्ट- ११

अपनों से अपनी बात

नोट :- यह समुत्थान सूत्र गुजराती भाषा में शब्दार्थ भावार्थ सहित वि.सं. १९९८ में छपा था तब उस समय के मूर्ति पूजक समुदाय के मासिक पत्र-**जैन सत्य प्रकाश** में मुनि जयशेखर म.सा. ने दो पृष्ठ में इस सूत्र बारे में कल्पित होने के आक्षेपात्मक विचार प्रगट करवाये थे। वह असत्य आक्षेप जामनगर के प्रकाशक संपादक के प्रति था। किंतु वे गुजरात के सरल स्वभावी संत १२०० श्लोक प्रमाण नया ग्रंथ बना ले ऐसा किंचित भी अनुमान नहीं किया जा सकता। क्योंकि उनके साथे अनुवाद शब्दार्थ करने में दो आयुर्वेद के महान विद्वान भी साथ में सक्रिय रूप से जुडे हुए थे जो उस पुस्तक के प्रारंभिक पृष्ठों से जाना जा सकता है।सूत्रों में परिवर्तन परिवर्धन प्रक्षेप का जमाना विक्रम की १२वी शताब्दि आदि में रहा था तभी अनेक शास्त्रों में और शास्त्रों के नाम से नई रचनाएँ होती रही थी। किंतु वर्तमान के १९वी, २०वी, २१वी सदी के स्थानकवासी संत १२०० श्लोक प्रमाण का नया शास्त्र समुत्थान सूत्र बनाकर रख दे ऐसा संभव भी नहीं और कोई करे तो स्थानकवासी समाज उसे चलावे भी नहीं, चलने दे भी नहीं । यथा- **पुप्फ भिक्खु** ने मूल पाठ में कुछ शब्द हीनाधिक किये तो स्थानकवासी लोगों ने मासिक पत्रों में उन्हें अप्रमाणित घोषित कर उसकी चर्चा करी थी। एवं आचार्य श्री घासीलालजी म.सा. ने किसी जगह सदोरक मुखवस्त्रिका का

पाठ रख दिया तो भी समाज ने उसे स्वीकार नहीं किया और उसके बाद छपनेवाले संस्करणों में उन्हें स्थान नहीं दिया । अतः मुनि जयशेखर का वह आक्षेप अविचार पूर्वक रखा हुआ है ऐसा स्पष्ट होता है । तभी उसके बाद किसी ने कोई उहापोह नहीं किया है। मैंने विक्रम संवत १९९८, ९९, २००० आदि ५-६ वर्ष के अंको का नीरिक्षण ध्यान पूर्वक किया किंतु दुबारा कभी किसी ने इस विषय की चर्चा नहीं करी है । जब कि जयशेखर मुनि जी ने दूसरों को इस विषय में ध्यान देने के लिये उस निबंध में उत्पेरित भी किया था । किंतु किसी भी साधु-साध्वी आचार्य उपाध्याय और समाज की तरफ से कोई कार्यवाही नही की गई थी। जब कि उस निबंध में प्रकाशक का नाम पता पुस्तक प्राप्ति वगैरह बातों की स्पष्ट सूचना मुनि जी ने कर दी थी । इन सब शोध खोज के कर्तव्य के साथ ही हमने यह हिन्दी प्रकाशन का काम किया और इस सूत्र का प्रचार प्रसार किया है। १५०० पुस्तक की फ्री सप्लाय पूरे उभय समाज में (मंदिर-स्थानकों में) करके चार महिने बाद संशोधन शुद्धि आदि करके यह द्वितीयावृत्ति भी प्रकाशित कर दी है जिसे स्वाध्यायियों और विद्वानों ने स्वीकारा है ।

परिशिष्ट- १२

२८ नक्षत्रों का विवरण

क्रम	नाम	आकार	तारा	कुल	पूनम संयोग	अमावस संयोग	दृश्य
१	अभिजित	गोशीर्ष	३	कुलोपकुल-१			
२	श्रवण	कावड	३	उपकुल			
३	धनिष्ठा	शकुनि-पिंजर	५	कुल	श्रावण	माघी	
४	शतभिषक	पुष्प चंगेरी	१००	कुलोपकुल-२			

क्रम	नाम	आकार	तारा	कुल	पूनम संयोग	अमावस संयोग	दृश्य
५	पूर्वभाद्रपद	अर्ध वाव	२	उपकुल			
६	उ॰भाद्रपद	अर्ध वाव	२	कुल	भादवा	फाल्गुनी	
७	रेवती	नावा	३२	उपकुल			
८	अश्विनी	अश्वस्कंध	३	कुल	आसोज	चैत्री	
९	भरणी	भग	३	उपकुल			
१०	कृतिका	क्षुर-घर	६	कुल	कार्तिक	वैशाखी	
११	रोहिणी	धू सर	५	उपकुल			
१२	मृगशीर्ष	मृग का शिर	३	कुल	मिगसर	ज्येष्ठी	
१३	आर्द्रा	रुधिरबिंदु	१	कुलोपकुल-३			
१४	पुनर्वसु	तुला	५	उपकुल			
१५	पुष्य	वर्धमानक	३	कुल	पोष	आषाढी	
१६	अश्लेषा	पताका	६	उपकुल			
१७	मघा	प्राकार	७	कुल	माघ	श्रावणी	
१८	पूर्वा फा॰	पलियंक	२	उपकुल			
१९	उत्तरा फा॰	पलियंक	२	कुल	फाल्गुन	भादवी	
२०	हस्त	हाथ	५	उपकुल			
२१	चित्रा	खिला पुष्प	१	कुल	चैत्र	आसोजी	०
२२	स्वाति	खीला	१	उपकुल			
२३	विशाखा	दामणि	५	कुल	वैशाख	कार्तिकी	
२४	अनुराधा	एकावली	४(५)	कुलोपकुल-४			
२५	ज्येष्ठा	गजदंत	३	उपकुल			
२६	मूल	वींछी	११	कुल	ज्येष्ठ	मिगसिरी	
२७	पूर्वाषाढा	हाथी के पाँव	४	उपकुल			
२८	उत्तराषाढा	बैठा सिंह	४	कुल	आषाढ	पौषी	

परिशिष्ट- १३

वर्तमान चोवीसी के तीर्थंकरों के पूर्व भव

क्रम	तीर्थंकर	भव संख्या	भव के नाम
१	ऋषभदेव	१३	(१) धनसार्थवाह (२) देवकुरु युगलिक (३) सौधर्म देव (४) महाविदेह में महाबल राजा (५) ईशान देवलोक में देव (६) महाविदेह में वज्रजंघ राजा (७) उत्तरकुरु युगलिक (८) सौधर्म देव (९) केशव राजा (१०) अच्युत देवलोक में देव (११) महाविदेह में वज्रनाभ चक्रवर्ती (१२) सर्वार्थसिद्ध देव (१३) श्री ऋषभदेव
२	अजितनाथ	३	(१) विमलवाहन राजा (२) अनुत्तर विमान में देव (३) श्री अजितनाथ
३	संभवनाथ	३	(१) विपुलवाहन राजा (२) सर्वार्थसिद्ध देव (३) श्री संभवनाथ
४	अभिनंदन स्वामी	३	(१) महाबल राजा (२) विजय विमान में देव (३) श्री अभिनंदन स्वामी
५	सुमतिनाथ	३	(१) पुरुषसिंह राजा (२) वेजयंत विमान में देव (३) श्री सुमतिनाथ
६	पद्मप्रभ स्वामी	३	(१) अपराजित राजा (२) आठवें ग्रैवेयक में देव (३) श्री पद्मप्रभ स्वामी
७	सुपार्श्व नाथ	३	(१) नंदिषेण राजा (२) मध्य ग्रैवेयक में देव (३) श्री सुपार्श्वनाथ
८	चन्द्रप्रभ स्वामी	३	(१) महापद्म राजा (२) विजय विमान में देव (३) श्री चन्द्रप्रभ स्वामी पाठांतर से- श्री चन्द्रप्रभ स्वामी के सात भव : (१) श्री वर्म राजा (२) सौधर्म देव (३) अजित सेन चक्रवर्ती (४) अच्युत देवलोक में देव (५) पद्मनाभ राजा (६) वेजयंत देव (७) श्री चन्द्रप्रभ स्वामी
९	सुविधि नाथ	३	(१) पद्म राजा (२) आनत देव (विजय विमान में देव) (३) श्री सुविधि नाथ

क्रम	तीर्थंकर	भव संख्या	भव के नाम
१०	शीतलनाथ	३	(१) पद्मोत्तर राजा (२) प्राणत देव (३) श्री शीतल नाथ
११	श्रेयांसनाथ	३	(१) नलिनीगुल्म राजा (२) महा अच्युत नामक शुक्र विमान में देव (३) श्री श्रेयांसनाथ
१२	वासुपूज्य	३	(१) पद्मोत्तर राजा (२) प्राणत देव (३) श्री वासुपूज्य
१३	विमलनाथ	३	(१) पद्मसेन राजा (२) सहस्रार देव (३) श्री विमलनाथ
१४	अनंतनाथ	३	(१) पद्मधर राजा (२) प्राणत देव (३) श्री अनंतनाथ
१५	धर्मनाथ	३	(१) दृढरथ राजा (२) विजय विमान में देव (३) श्री धर्मनाथ स्वामी
१६	शान्तिनाथ	१२	(१) श्रीषेण राजा (२) उत्तरकरु युगलिक (३) सौधर्म देव (४) अमितसेन (अश्वसेन विद्याधर) (५) प्राणत देव (६) महाविदेह में बलभद्र (७) अच्युत देव (८) वज्रायुध राजा (९) नवमे ग्रैवेयक में देव (१०) मेघरथ राजा (११) सर्वार्थसिद्ध देव (१२) श्री शान्तिनाथ
१७	कुंथुनाथ	३	(१) सिंहवाहन राजा (२) सर्वार्थसिद्ध देव (३) श्री कुंथुनाथ
१८	अरनाथ	३	(१) धनपति (२) नवमे ग्रैवेयक में देव (३) श्री अरनाथ
१९	मल्लिनाथ	३	(१) महाबल राजा (२) वेजयंत में देव (३) श्री मल्लिनाथ
२०	मुनिसुव्रत स्वामी	३	(१) सुरविष्ट राजा (२) प्राणत देव (३) श्री मुनिसुव्रत स्वामी पाठांतर से- श्री मुनिसुव्रत स्वामी के नौ भव : (१) शिवकेतु राजा (२) सौधर्म देव (३) कुबेरदत्त राजा (४) सनत्कुमार देव (५) वज्र कुंडल राजा (६) ब्रह्मदेवलोक में देव (७) श्री वर्म राजा (८) अपराजित देव (९) श्री मुनिसुव्रत स्वामी

क्रम	तीर्थंकर	भव संख्या	भव के नाम
२१	नमिनाथ	३	(१) सिद्धार्थ राजा (२) प्राणत (अपराजित) देव (३) श्री नमिनाथ
२२	नेमिनाथ	९	(१) धन राजा (२) सौधर्म देव (३) चित्रगति विद्याधर (४) माहेन्द्र देव (५) अपराजित राजा (६) आरण देवलोक में देव (७) सुप्रतिष्ठ राजा (शंखराज) (८) अपराजित देव (९) श्री नेमिनाथ
२३	पार्श्वनाथ	१०	(१) मरुभूति (२) हस्ति (३) श्री सहस्रार देव (४) करणवेग विद्याधर (५) अच्युत देव (६) वज्रनाभ राजा (७) मध्यम ग्रैवेयक में देव (८) सुवर्णबाहु राजा (९) प्राणत देव (१०) श्री पार्श्वनाथ
२४	महावीर स्वामी	२७	(१) नयसार (२) सौधर्म देव (३) मरीचि त्रिदंडिक (४) पाँचवें देवलोक में देव (५) कौशिक ब्राह्मण (६) सौधर्म देव (७) पुष्पमित्र त्रिदंडि (८) सौधर्म देव (९) अग्निद्योत विप्र (१०) ईशान देवलोक में देव (११) अग्निभूति ब्राह्मण (१२) तीसरे देवलोक में (१३) भारद्विज तापस (१४) चौथे देवलोक में (१५) स्थावर विप्र (१६) ब्रह्म देवलोक में देव (१७) विश्वभूति (१८) सातवें देवलोक में देव (१९) त्रिपृष्ट वासुदेव (२०) सातवीं नरक में (२१) सिंह (जलचर फिर सिंह) (२२) चोथी नरक में (२३) प्रियमित्र चक्रवर्ती (२४) महाशुक्र देव (२५) नंदन राजर्षि (२६) प्राणत देव (२७) श्री महावीर स्वामी

स्वदोष दर्शन प्रेरणा

जो साधु-साध्वी कभी स्वदोष दर्शन करते ही नहीं हैं सदा अपने मान में ही फूले रहते हैं उनको कभी सच्चा आवश्यक-प्रतिक्रमण नहीं होता है । भगवान ने उभयकाल प्रतिक्रमण की आज्ञा से स्वदोष दर्शन का चान्स दिया है उसे बेगार की तरह पूरा करना ईमानदारी नहीं है ।

परिशिष्ट- १४

निक्षेप नय और स्यादवाद

निक्षेपों का स्वरूप :- निक्षेप में नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव इन चार द्वारों से वस्तु का कथन किया जाता है । फिर भी नाम स्थापना केवल ज्ञेय है, उससे वस्तु की पूर्ति नहीं होती है । **तीसरे** द्रव्य निक्षेप में उस वस्तु का कुछ अंश अस्तित्व में होता है किन्तु उससे भी उस वस्तु की पूर्ण प्रयोजनसिद्धि नहीं होती है । **चोथे** भावनिक्षेप में कहा गया पदार्थ वास्तव में परिपूर्ण अस्तित्व वाला होता है, उसी से उस पदार्थ संबंधी प्रयोजन की सिद्धि होती है । यथा- (१) किसी का **नाम** घेवर या रोटी रख दिया है तो उससे क्षुधा पूर्ति आदि नहीं होती (२) किसी वस्तु में घेवर या रोटी जैसा आकार कल्पित कर उसे "यह घेवर है" या "यह रोटी है" ऐसी कल्पना-**स्थापना** कर दी तो भी क्षुधा शांति आदि उससे भी स भव नहीं है । (३) जो रोटी या घेवर बनने वाला गेहुँ का आटा या मैदा पड़ा है अथवा जो एक रोटी या घेवर एक किलो पानी में घोल कर विनष्ट कर दिये गये हैं उस आटे से और पानी के घोल से भी रोटी या घेवर जैसी तृप्ति नहीं हो सकती है (४) शुद्ध परिपूर्ण बनी हुई रोटी, घेवर ही वास्तविक रोटी एवं घेवर है । उसी से क्षुधा शांति एवं तृप्ति संभव है। इसलिये चारों निक्षेप में कहे गये सभी पदार्थ को एक सरीखा करने की नासमझ नहीं करके, भाव निक्षेप का महत्त्व अलग ही समझना चाहिये एवं द्रव्य निक्षेप का किंचित अंश में महत्व होता है और नाम स्थापना निक्षेप प्राय: आरोपित कल्पित ही होते हैं । उन्हें भाव निक्षेप के तुल्य नहीं करना चाहिये । इससे यह स्पष्ट है कि किसी भी व्यक्ति या महान आत्मा का फोटू, तस्वीर, मूर्ति आदि में उस गुणवान व्यक्ति के योग्य वस्त्रा-भूषण, स्नान, श्रृंगार, आहार एवं सत्कार सम्मान आदि का व्यवहार करना, निक्षेप की अवहेलना एवं दुरूपयोग करना ही समझना चाहिये तथा ऐसा करने की प्रेरणा या प्ररूपण करना भी सूत्र विरुद्ध प्ररूपण करना समझना चाहिये ।

नयों का स्वरूप :- वस्तु को विभिन्न दृष्टियों से समझने के लिये या उसके तह तक प्रवेश करने के लिये उस वस्तु की नय द्वारा विचारणा की जाती है । प्रत्येक वस्तु में अनंतधर्म(गुण)रहे हुए होते हैं, उनमें से एक समय में अपेक्षित किसी एक धर्म का कथन किया जाता है। उस एक धर्म के

कहने के उस अपेक्षा वचन को "नय" कहते हैं । अतः अनंत धर्मात्मक वस्तुओं की अपेक्षा नयों की संख्या भी अनंत है। फिर भी किसी वस्तु को सुगमता से समझने के लिये उन अनेक भेदों को संग्रहित कर सीमित भेदों में समाविष्ट करके कथन करना भी आवश्यक होता है । अतः उक्त अनेकों भेदों का समावेश **सात नयों में** किया गया है । इसके अतिरिक्त संक्षिप्त अपेक्षा से दो-दो भेद भी किये जाते हैं । यथा- द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय अथवा निश्चय नय और व्यवहार नय अथवा ज्ञान नय एवं क्रिया नय। सूत्रोक्त सात नय इस प्रकार है- **१.** नैगम नय **२.** संग्रह नय **३.** व्यवहार नय **४.** ऋजु सूत्र नय **५.** शब्द नय **६.** समभिरूढ़ नय **७.** एव भूत नय । इनका विस्तृत स्वरूप इस प्रकार है-

(१) नैगम नय :- इस नय में वस्तु के सामान्य और विशेष उभयधर्मों का अलग अलग अस्तित्व स्वीकार किया जाता है अर्थात् किसी वस्तु में अंशमात्र भी अपना वाच्य गुण हो तो भी उसे सत्य रूप में स्वीकार किया जाता है । भूत भविष्य वर्तमान काल को भी अलग-अलग स्वीकार किया जाता है अर्थात् जो हो गया है, हो रहा है, होने वाला है उसे भी सत्य रूप में यह नय स्वीकार करता है । न+एक+गम=नैगम- जिसके विचार करने का केवल एक ही प्रकार नहीं है अनेक प्रकारों से वस्तु के धर्मों का अलग-अलग अस्तित्व स्वीकार करने वाला यह नय है । तीर्थंकर आदि महापुरुषों का जो जन्म दिन स्वीकार कर मनाया जाता है, वह भी नैगम नय से ही स्वीकार किया जाता है । यह नय चारों निक्षेपों को स्वीकार करता है ।

(२) संग्रह नय :- इस नय में वस्तु के सामान्य धर्म को स्वीकार किया जाता है । अलग अलग भेदों से वस्तु को भिन्न भिन्न स्वीकार नहीं करके सामान्य धर्म से, जाति वाचक रूप से वस्तु को संग्रह करके, उसे एक वस्तु रूप स्वीकार करके कथन किया जाता है । उनकी विभिन्नताओं एवं विशेषताओं से अलग अलग स्वीकार नहीं करते हुए यह नय कथन करता है । अर्थात् इस नय के कथन में सामान्य धर्म के विवक्षा की प्रमुखता रहती है, विशेष धर्म गौण होता जाता है। यह नय भेद प्रभेदों को गौण करता रहता है और सामान्य सामान्य को ग्रहण करता है । ऐसा करने में यह क्रमशः विशेष को भी ग्रहण तो कर लेता है, किन्तु उस विशेष के साथ जो भेद प्रभेद रूप अन्य विशेष धर्म है, उन्हें गौण करके अपने अपेक्षित विशेष धर्म को सामान्य धर्म रूप में स्वीकार कर उसी में अनेक वस्तुओं को

संग्रहित कर लेता है । यथा- घड़ा द्रव्य का कथन करके सभी घड़ों को इसी में स्वीकार कर लेता, फिर भेद-प्रभेद और अलग अलग वस्तु को स्वीकार नहीं करता है । चाहे छोटा बड़ा घड़ा हो या उनमें रंगभेद हो अथवा गुणभेद हो और चाहे मूल्य भेद हो और जब बर्तन द्रव्य से वस्तु का बोध करना होगा तो सभी तरह के बर्तनों को एक में समाविष्ट करके ही कहेगा अलग अलग जाति या अलग-अलग पदार्थों की भिन्नता की अपेक्षा नहीं रखेगा । इस नय वाला विशेष का ग्राहक न होते हुए भी तीन काल की अवस्था को एवं चारों निक्षेप को स्वीकार करता है ।

(३) व्यवहार नय :- व्यवहार में उपयुक्त जो भी वस्तु का विशेष विशेषतर गुणधर्म है, उसे स्वीकार करने वाला यह व्यवहार नय है। यह वस्तु के सामान्य सामान्यतर धर्म की अपेक्षा नहीं रखता है। अपने लक्षित व्यवहारोपयुक्त विशेष धर्म को स्वीकार करने की अपेक्षा रखता है। यह तीन ही काल की बात को एवं चारों निक्षेपों को स्वीकार करता है । संग्रह नय वाला जीवों को जीव शब्द से कहेगा तो यह नय उन्हें नारकी, देवता आदि विशेष भेदों से कहेगा।

(४) ऋजुसूत्र नय :- यह भूत भविष्य को स्वीकार न करके केवल वर्तमान गुण धर्म को स्वीकार करता है । अर्थात् वर्तमान में जो पदार्थ का स्वरूप, अवस्था या गुण है, उसे यह नय मानेगा और कहेगा । शेष अवस्था की अपेक्षा नहीं करेगा । यह नय केवल भाव निक्षेप ही स्वीकार करता है ।

(५) शब्द नय :- काल कारक लिंग वचन संख्या पुरुष उपसर्ग आदि से शब्दों का जो भी अर्थ प्रसिद्ध हो उसे स्वीकार करने वाला नय शब्द नय है । एक पदार्थ को कहने वाले पर्यायवाची शब्दों को एकार्थक एक रूप में स्वीकार कर लेता है अर्थात् शब्दों को व्युत्पत्ति अर्थ से, रूढ़ प्रचलन से और पर्यायवाची रूप में भी स्वीकार करता है ।

(६) समभिरूढ़ नय :- पर्यायवाची शब्दों में निरूक्ति भेद से जो भिन्न अर्थ होता है उन्हें अलग अलग स्वीकार करने वाला यह एवंभूत नय है। शब्द नय तो शब्दों की अपेक्षा रखता है अर्थात् सभी शब्दों को और उनके प्रचलन को मानता है, किन्तु यह नय उन शब्दों के अर्थ की अपेक्षा रखता है । पर्याय शब्दों के वाच्यार्थ वाले पदार्थों को भिन्न भिन्न मानता है । यह नय विशेष को स्वीकार करता है। सामान्य को नहीं मानता । वर्तमान काल को मानता है एवं एक भाव निक्षेप को ही स्वीकार करता है ।

(७) एवंभूत नय :- अन्य किसी भी अपेक्षा या शब्द अथवा शब्दार्थ आदि

को स्वीकार नहीं करके उस अर्थ में प्रयुक्त अवस्था में ही उस वस्तु को स्वीकार करता है, अन्य अवस्था में उस वस्तु को यह नय स्वीकार नहीं करता है । समभिरूढ़ नय तो अर्थ घटित होने से उस वस्तु को अलग स्वीकार कर लेता है किन्तु यह नय तो अर्थ की जो क्रिया है उसमें वर्तमान वस्तु को ही वह वस्तु स्वीकार करता है अर्थात् क्रियान्वित रूप में ही शब्द और वाच्यार्थ वाली वस्तु को स्वीकार करता है । इस प्रकार यह नय शब्द अर्थ और क्रिया तीनों देखता है। वस्तु का जो नाम और अर्थ है वैसी ही क्रिया एवं परिणाम की धारा हो, वस्तु अपने गुणधर्म में पूर्ण हो और प्रत्यक्ष देखने समझने में आवे, उसे ही वस्तु रूप में स्वीकार करना एवंभूत नय है । एक अंश भी कम हो तो यह नय उसे स्वीकार नहीं करता है । इस प्रकार यह नय सामान्य को नहीं स्वीकारता है विशेष को स्वीकार करता है। वर्तमानकाल को एवं भावनिक्षेप को स्वीकार करता है ।

दृष्टांतों द्वारा नयों का स्वरूप :- १. नैगम नय- इस नय में वस्तु स्वरूप को समझने में या कहने में उसके सामान्य धर्म एवं विशेष धर्म दोनों की प्रधानता को स्वीकार किया जाता है । भूत-भविष्य, वर्तमान सभी अवस्था को प्रधानता देकर स्वीकार कर लिया जाता है । वस्तु के विशाल रूप से भी उस वस्तु को स्वीकार किया जाता है एवं वस्तु के अंश से भी उस वस्तु को स्वीकार किया जाता है। इस नय के अपेक्षा स्वरूप को समझने के लिये तीन दृष्टांत दिये जाते हैं, यथा- १. निवास का २. प्रस्थक नाम के काष्ठ पात्र का ३. गाँव का ।

(१) एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति से पूछा- आप कहाँ रहते हैं ? तो इसके उत्तर में वह कहें कि मैं लोक में रहता हूँ या तिर्छालोक में रहता हूँ या जंबूद्वीप, भरतक्षेत्र, हिन्दुस्तान, राजस्थान, जयपुर, चौड़ा रास्ता, लाल भवन, दूसरी मंजिल इत्यादि कोई भी उत्तर दे, नैगम नय उन सभी(अनेकों) अपेक्षाओं को सत्य स्वीकार करता है।

(२) काष्ठपात्र बनाने हेतु लकड़ी काटने जंगल में जाते समय भी किसी के पूछने पर वह व्यक्ति कहे कि प्रस्थक(काष्ठ पात्र)लाने जा रहा हूँ, वृक्ष काटते समय, वापिस आते समय, छीलते समय, सुधारते समय एवं पात्र बनाते समय, इस प्रकार सभी अवस्थाओं में उसका प्रस्थक बनाने का कहना नैगम नय सत्य स्वीकार करता है ।

(३) जयपुर जाने वाला व्यक्ति जयपुर की सीमा में प्रवेश करने पर कहे जयपुर आ गया, नगर के बगीचे आदि आने पर कहे जयपुर आ गया,

उपनगर में पहुँचने पर कहे जयपुर आ गया, शहर में पहुँचने पर, चौड़ा रास्ता में पहुँचने पर एव लाल भवन में बैठने पर साथी से कहे हम जयपुर में बैठे है, इन सभी अवस्थाओं के वाक्य प्रयोगों को नैगम नय बिना किसी स कोच के सत्य स्वीकार कर लेता है । यह नैगम नय की अपेक्षा है । इस प्रकार द्रव्य पर्याय सामान्य विशेष और तीनों काल को सत्य स्वीकार करने वाला नैगम नय है ।

२. संग्रह नय- नैगम नय सामान्य और विशेष दोनों की उपयोगिता को स्वीकार करता है । संग्रह नय केवल सामान्य को ही स्वीकार करता है । विशेष को गौण करता है । सामान्य धर्म से अनेक वस्तुओं को एक में ही स्वीकार करने वाला यह संग्रह नय है । यथा- "भोजन लावो" इस कथन से रोटी, साग, मिठाई, दही, नमकीन आदि सभी पदार्थ को ग्रहण कर उनका आदेश कर देना यह संग्रह नय वचन है। इसी प्रकार यहाँ वनस्पतियाँ है, ऐसा कहने से हरी घास, पौधे, लता, आम्रवृक्ष आदि अनेकों का समावेश युक्त कथन संग्रह नय की अपेक्षा है। उसी प्रकार द्रव्य से ६ द्रव्यों का, जीव से चार गति के जीवों का कथन संग्रह नय की अपेक्षा है । इस प्रकार यह नय एक शब्द से अनेकों पदार्थों का संग्रह करता है । किन्तु विशेष विशेषतर भेदप्रभेदों की अपेक्षा नहीं रखता है ।

३. व्यवहार नय- सामान्य धर्मों को छोड़ते हुए विशेष धर्मों को ग्रहण कर वस्तु का कथन करने वाला एवं भेदप्रभेद करके वस्तु का कथन करने वाला यह व्यवहार नय है । यथा-द्रव्य को ६ भेद से, उसमें भी जीवद्रव्य को चार गति से, फिर जाति से, काया से, फिर देश से, कथन करता है। जैसे संग्रह नय मनुष्य, जानवर आदि को या उनके समूह को ये जीव है ऐसा सामान्य धर्म की प्रमुखता से कथन करेगा तो व्यवहार नय यह मनुष्य भारत वर्ष में, राजस्थान प्रांत के जयपुर नगर का ब्राह्मण जाति का तीसवर्षीय जवान पुरुष है ऐसा कहेगा । इस तरह विशेष धर्म के कथन एवं आशय को व्यवहार नय प्रमुख करता है । (१) नैगमनय सामान्य विशेष दोनों को उपयोगी स्वीकार करता है । (२) संग्रह नय सामान्य को उपयोगी स्वीकार करता है । (३) व्यवहार नय विशेष (व्यवहारिक)अवस्था स्वीकार कर कथन करता है । इन तीनों नयों को द्रव्यार्थिक नय कहते हैं। ये नय तीनों काल को स्वीकार करते हैं ।

(४) ऋजु सूत्र नय- केवल वर्तमान काल को प्रमुखता देकर स्वीकार

करने वाला यह ऋजु सूत्र नय है । यह वर्तमान की ही उपयोगिता स्वीकार करता है । भूत और भावी के धर्मों अवस्थाओं की अपेक्षा नहीं रखता है। कोई व्यक्ति पहले दुःखी था, फिर भविष्य में भी दुःखी होगा, किन्तु यदि वर्तमान में सुखी है और सुख का अनुभव कर रहा है तो पूर्व और भावी दुःख का उसे अभी क्या वास्ता । अतः उस व्यक्ति को सुखी कहा जायेगा । कोई पहले राजा था, अभी भिखारी बन गया है, फिर कभी राजा बन जायेगा, तो भी उसे अभी तो भिखारीपन का ही अनुभव करना है, अतः भूत और राजापन से उसे अभी सुख कुछ भी नहीं है, न राजापन है, अतः वह भिखारी कहा जायेगा । पहले कोई मुनि बना, अभी गृहस्थ बना हुआ है, फिर मुनि बन जायेगा, तो भी वर्तमान में वह गृहस्थ रूप है पूर्व और भावी मुनिपन का उसे कोई आत्मानन्द नहीं है, अतः यह नय वर्तमान अवस्था से वस्तु स्वरूप को देखता, जानता और कथन करता है ।

(५) शब्द नय– शब्द से ही पदार्थों का ज्ञान होता है इसलिये यह नय पदार्थों के किसी भी प्रकार से बोध कराने वाले शब्दों को स्वीकार करता है । वह शब्द जिस पदार्थ को कहता है, उसे यह नय प्रधानता देकर स्वीकार करता है । यह नय वर्तमान को ही स्वीकार करता है। यथा– "जिन" शब्द से जो वर्तमान में रागद्वेष विजेता है, उसे ग्रहण करता है । किन्तु भविष्य में कोई जिन होगा उस द्रव्य जिन को स्वीकार नहीं करता है । वैसे किसी का नाम जिन है, उस नाम जिन को भी यह स्वीकार नहीं करता है । प्रतिमा या चित्र पर कोई जिन की स्थापना कर दी है, वह स्थापना जिन भी यह नय स्वीकार नहीं करता है । इस प्रकार यह नय केवल भाव निक्षेप को स्वीकार करता है नाम, स्थापना एवं द्रव्य को यह नय स्वीकार नहीं करता है ।

जो शब्द जिस वस्तु के कथन करने की अर्थ योग्यता या बोधकता रखता है उसके लिये उस शब्द का प्रयोग करना शब्द नय है । शब्द–यौगिक, रूढ़ एवं योगिक–रूढ़(मिश्र)भी होते हैं । वे जिस जिस अर्थ के बोधक होते हैं, उन्हे यह नय उपयोगी स्वीकार करता है । यथा– (१) पाचक यह यौगिक निरूक्त शब्द है इसका अर्थ रसोइया रसोई करने वाला होता है । (२) गौ यह रूढ़ शब्द है इसका अर्थ तो है–जाने की क्रिया करने वाला । किन्तु बैल या गाय जाति के लिये यह रूढ़ है, अतः शब्द नय इसे भी स्वीकार करता है । (३) पंकज, यौगिक भी है रूढ़ भी है । इसका अर्थ है कीचड़ में उत्पन्न होने वाला कमल । किन्तु

कीचड़ में तो काई, मेंढ़क, शेवाल आदि कई चीजें उत्पन्न होती है, उन्हें नहीं समझ कर केवल कमल को ही समझा जाता है । अतः यह पंकज यौगिक रूढ़ शब्द है, इससे जो कमल का बोध माना जाता है, शब्द नय इसे भी स्वीकार करता है । इस प्रकार विभिन्न तरह से अर्थ के बोधक सभी शब्दों को उपयोगी स्वीकार करने वाला यह शब्द नय है।

(६) समभिरूढ़ नय– यह नय भी एक प्रकार का शब्द नय ही है । इसका स्वरूप भी संपूर्ण शब्द नय के समान समझना चाहिये । विशेषता केवल यह है कि यह रूढ़ शब्द आदि को पदार्थ का अर्थ बोधक स्वीकार नहीं करता है, केवल यौगिक, निरूक्त शब्द जिस अर्थ को कहते हैं उस पदार्थ को ही यह नय स्वीकार करता है । अर्थात् रूढ़ शब्द को भी स्वीकार नहीं करता है, साथ ही जो पर्यायवाची शब्द है उन्हें भी एक रूप में स्वीकार नहीं करके भिन्न भिन्न रूप में स्वीकार करता है अर्थात् उन पर्यायवाची शब्दों का जो निरूक्त अर्थ होता है उस शब्द से उसी पदार्थ को स्वीकार करता है और दूसरे पर्यायवाची शब्द के वाच्य पदार्थ से उसे अलग स्वीकार करता है । यथा– जिन, केवली, तीर्थंकर, ये जिनेश्वर के ही बोधक शब्द है एवं एकार्थक रूप में भी है तो भी यह नय इन्हें अलग अलग अर्थ से अलग अलग ही स्वीकार करेगा । इस प्रकार यह नय निरूक्त अर्थ की प्रधानता से ही शब्द का प्रयोग उस पदार्थ के लिये करता है एवं ऐसा प्रयोग करना उपयोगी मानता है । उन पर्याय शब्द को अलग अलग पदार्थ का बोधक मानता है जिन, अर्हंत, तीर्थंकर ये भिन्न शब्द भिन्न भिन्न गुण वाले पदार्थ के बोधक है ।

(७) एवंभूत नय– जिस शब्द का जो अर्थ है और वह अर्थ जिस पदार्थ का बोधक है वह पदार्थ उस समय उसी अर्थ का अनुभव करता हो, उसी अर्थ की क्रियाशील अवस्था में हो, तभी उसके लिये उस शब्द का प्रयोग करना, यह इस एवंभूत नय का आशय है । अर्थात् जिस दिन जिस समय तीर्थ की स्थापना करते हो उस समय तीर्थंकर शब्द का प्रयोग करना । जिस समय सुरासुर से पूजा की जाती हो उस समय अर्हंत कहना, कलम से जब लिखने का कार्य किया जा रहा हो तभी उसके लिये लेखनी शब्द का प्रयोग करना ।

समभिरूढ़ नय निरूक्त अर्थ वाले शब्द को स्वीकार करता है और एवंभूत नय भी उसे ही स्वीकार करता है किन्तु उस भाव या क्रिया में परिणत वस्तु के लिये ही उस शब्द का प्रयोग करना स्वीकार करता

है। यह इसकी विशेषता है । इस प्रकार यह नय केवल शुद्ध भाव निक्षेप को ही स्वीकार कर के कथन करता है।

नय, दुर्नय और स्याद्वाद तीनों का संबंधित स्वरूप :- सातों नय अपनी अपनी अपेक्षा से वचन प्रयोग एवं व्यवहार करते हैं, उस अपेक्षा से ही ये नय कहलाते हैं । दूसरी अपेक्षा का स्पर्श नहीं करते हैं, उपेक्षा रखते हैं, इसलिये भी नय कहलाते हैं । यदि दूसरी अपेक्षा का खंड़न, विरोध करते हैं तो ये नय वचन नय की सीमा का उल्लंघन करके दुर्नय बन जाते हैं अर्थात् इनकी **नयरूपता कुनयता में** बदल जाती है । ऐसे कुनयों के कारण ही अनेक विवाद एव मत मतांतर या निन्हव आदि पैदा होते हैं । नय में क्लेश उत्पादकता नहीं है । **दुर्नय में क्लेशोत्पादकता है ।** यथा- दो व्यक्तियों ने एक ढ़ाल देखी, दोनों अलग अलग दिशा में दूर खड़े थे। ढ़ाल एक तरफ स्वर्ण रस युक्त थी दूसरी तरफ चा दी के रस से युक्त बनाई हुई थी । यदि वे दोनों व्यक्ति नय से बोले तो एक व्यक्ति ढ़ाल स्वर्णमय है ऐसा कहेगा । दूसरा उसे चांदी की कह देगा । दोनों अपने कथन में अनुभव में शांत रहे तो नय है । एक दूसरे की हीलना निन्दा करे कि अरे तूँ पागल हो गया है क्या दिखता नहीं है, साफ पीली सोने की दिख रही है । दूसरा कहे तेरी आंखों में पीलिया है । दुर्नय में झगड़ा है। यहाँ यदि स्याद्वाद अनेकांतवाद आ जाय तो कहेगा कि सफेद भी है, पीली भी है, सोना रूप भी है चांदी रूप भी है, तो शांति हो जाती है । इस प्रकार नय एवं दुर्नय को जानकर या तो नय तक सीमित रहना चाहिये या फिर सभी अपेक्षा से चिंतन कर अनेकांतवाद में आ जाना चाहिये किन्तु एकांतवाद एव दुर्नय का आश्रय कभी भी नहीं लेना चाहिये । दुर्नय- एकांतवाद से मिथ्यात्व क्लेश एवं दुःख की प्राप्ति होती है एवं नयवाद अनेकांतवाद से शांति आनन्द की प्राप्ति होती है । एक व्यक्ति किसी का पिता है तो पुत्र की अपेक्षा उसे पिता कहना नय है । किन्तु यह पिता ही है किसी का भी भाई, पुत्र, मामा आदि है ही नहीं, ऐसा कथन करने वाला दुर्नय हो जाता है ।

मोक्षमार्ग में श्रद्धा का स्थान अति महत्त्वशील बताना नय है, किन्तु अन्य ज्ञान या क्रिया का खंड़न निषेध कर देना दुर्नय हो जाता है। इसी प्रकार कभी ज्ञान का महत्त्व बताते हुए कथन विस्तार करना भी नय है, किन्तु क्रिया का निषेध नहीं होना चाहिये । क्रिया का निषेध यदि ज्ञान के महत्त्व कथन के साथ आ जाता है, तो वह भी दुर्नय हो जाता है अथवा

कभी क्रिया का महात्म्य बताते हुए विस्तृत कथन किया जा सकता किन्तु ज्ञान का निषेध या उसे निरर्थक बताने रूप कथन होता हो तो वह भी दुर्नय हो जाता है । अतः अपनी अपेक्षित किसी भी अपेक्षा से कथन करना नय है । दूसरी अपेक्षाओं को विषयभूत नहीं बनाना भी नय है किन्तु दूसरी अपेक्षा को लेकर विवाद कर उन सभी अपेक्षाओं या किसी अपेक्षा को गलत निरर्थक कह देना दुर्नय है।

स्याद्वाद-अनेकांतवाद जैन धर्म की समन्वय मूलकता का बोधक है । वह नयों का समन्वय करता है । प्रत्येक विषय या वस्तु को अनेक धर्मों से, अनेक अपेक्षाओं से, देखकर उसका चिन्तन करना एवं निर्णय लेना, यही सम्यग् अनेकांत सिद्धांत है और इसी से समभाव सामायिक की प्राप्ति होती है ।

अनेकांतवाद, नय से अपनी भिन्न विशेषता रखता है । इन दोनों को एक नहीं समझ लेना चाहिये । नय अपनी अपेक्षा दृष्टि को मुख्य कर अन्य दृष्टि को गौण करके वस्तु का प्रतिपादन करता है, दूसरी दृष्टि की उपेक्षा रखता है । जब कि स्याद्वाद अनेकांतवाद सभी दृष्टियों को सम्मुख रख कर उन सभी सत्य आशयों को, वस्तु के विभिन्न धर्मों को, उन अपेक्षा से देखता है, किसी को गोण और मुख्य अपनी दृष्टि से नहीं करता है ।

नय मानों अपने हाल में मस्त है, दूसरों की अपेक्षा नहीं रखता है तो तिरस्कार भी नहीं करता है और अनेकांतवाद सभी की अपेक्षा रख कर उन्हें साथ लेकर उदारता से चलता है । जबकि दुर्नय स्वयं को ही सब कुछ समझ कर अन्य का तिरस्कार करता है ।

महावैज्ञानिक और वैज्ञानिक

जैनियों को महावैज्ञानिकों के आगम ज्ञान के तत्त्वों का अल्पज्ञानी वैज्ञानिकों के कल्पना मूलक शोध कार्यों की समीक्षा के चक्कर में समय बरबाद न करके ज्ञाता द्रष्टा बन कर अपनी महावैज्ञानिकों से प्राप्त साधना में तल्लीन रहना चाहिये खुद वैज्ञानिक बनने की होंश और खोटे अहं से दूर रहना चाहिये । खुद को वैज्ञानिक कहने और मानने का मतलब दर्शन मोह के उदय को बुलाकर सच्चे अर्थ में श्रद्धा समकित से च्युत होना और उत्सूत्र प्ररूपक बनना होता है । अतः ऐसी होशियारी की अपेक्षा श्रावक या साधुपन की साधना से मोक्ष की आराधना में तल्लीन होना ही श्रेष्ठ, कल्याणकारी है ।

परिशिष्ट- १५

प्रकीर्णकों की आगमिकता कसौटी पर

आगम नंदीसूत्र की आगम सूची में प्रकीर्णक विभाग नहीं किया गया है और किसी भी आगम नामों के साथ प्रकीर्णक शब्द भी नहीं लगा है । आगम सूची के बाद वहाँ थोडा प्रक्षिप्त पाठ है। जिसमें हजारों प्रकीर्णक होने का कथन है जो तथ्यहीन एवं आधार रहित है । जिस तीर्थंकर के जितने साधु उतने शास्त्र प्रकीर्णक । यह बात कभी किसी ने मूलपाठ में प्रक्षिप्त की है । जो स्वतः परस्पर भी स्ववचन विरोध जैसी स्पष्ट दिखती है । फिर भी प्राचीन-अर्वाचीन सभी लेखक, प्रकाशक, संपादक आँख मीच कर चलाये जा रहे हैं।

विचारणीय बात यह है कि (१) पहले तो प्रकीर्णक नामक कोई विभाजन विभाग नंदी सूत्र में या अनुयोग द्वार सूत्र में वहाँ मूलपाठ में किया ही नहीं है । तो प्रकीर्णक शब्द कौन कहाँ से लाये? (२) जितने साधु चौदह हजार आदि उतने प्रकीर्णक यह कथन पूर्ण अतिशयोक्ति पूर्ण है । क्यों कि सभी साधु बहुश्रुत नहीं होते, सभी पूर्वधर नहीं होते । सभी साधु सूत्रों के रचनाकार नहीं बनते । पूर्वधरों की रचना ही प्रमाणित आगम होती है । भगवान महावीर के शासन में ३०० ही पूर्वधारी हुए थे । सभी आबाल-वृद्ध दीक्षा लेने वाले आगम की रचना करे ऐसी योग्यता भी नहीं होती । इतने सारे १४००० या ८४००० या असंख्य प्रकीर्णक आगमों को कौन कहाँ संभालेगा, कौन याद रखेगा; अतः यह कथन भी कल्पना मात्र ही है । (३) फिर कहा- प्रत्येक तीर्थंकर के शासन में जितने प्रत्येक बुद्ध होवे उतने प्रकीर्णक होवे । प्रत्येक बुद्ध तो चार ही होते हैं या कभी १०-२० ही होते हैं । तो १४००० भी कह दिया, असंख्य भी कह दिया और फिर प्रत्येक बुद्ध जितना भी कह दिया । **तीसरी बात-** जितने चार बुद्धि के धारक साधु उतने प्रकीर्णक । ऐसे साधु भी १४००० हजार तो नहीं होवे । यों एक ही बात के लिए तीन-तीन, चार-चार तरह के विकल्पों से कथन करना कल्पना मात्र ही है, उसका कोई आधार या तर्क संभव नहीं है और तीनों परस्पर भी पूर्ण विरोधी है । वह भी मूलपाठ में प्रक्षेप करने वालों ने अनंत संसार

बढने के सिद्धांत को नजर अंदाज करके ऐसा दुःसाहस किया है।

नंदीसूत्र में श्रुतज्ञान के प्रसंग में मूलपाठ में अंगबाह्य के दो भेद और फिर आवश्यक व्यतिरिक्त के दो भेद ही किये है- कालिक और उत्कालिक । तो वहाँ तीसरे अप्रासंगिक प्रकीर्णक की चर्चा व्यर्थ ही खडी करी गई है यह स्पष्ट है ।

वि.सं. १३२५ में विचारसार ग्रंथ के कर्ता प्रद्युम्नसूरि ने आगम ४५ गिनने में प्रकीर्णक भेद को छुआ भी नहीं है तो उसी से स्पष्ट हो जाता है कि उस समय तक प्रकीर्णक शब्द आगम विभाग में था ही नहीं । यदि होता तो ४५ आगम गिनने में उन आचार्य ने अपने संस्कृत श्लोक बद्ध ग्रंथ में एक भी प्रकीर्णक की या प्रकीर्णक शब्द युक्त आगम की गिनती ही क्यों नहीं करी, उन्हें प्रकीर्णक से क्या तकलीफ थी कि सीधे ही प्रकीर्णक बिना ४५ आगम संकलन पूरा कर दिया । इत्यादि पवित्र बुद्धि से विचार करने पर स्पष्ट होता है कि यह नंदीसूत्र में प्रकीर्णक का पाठ तो स्पष्ट ही खोटा तर्क हीन अशास्त्रीय है। साथ ही अनेक शास्त्रों में समवायंग, ठाणांग, उत्तराध्ययन आदि सर्वत्र अपनी अशास्त्रीय नीति की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिये मनमाने पाठ बनाये हैं उस प्रत्येक पाठ की सूक्ष्म विचारणा करने पर प्रक्षिप्तता स्पष्ट समझ में आ सकती है । भस्मग्रह के प्रभाव से पाठ प्रक्षिप्त करने वालों की दुर्बुद्धि रही है कि वे एक बात (प्रक्षेप) की सिद्धि के लिये अनेकों जगह प्रक्षेप कर अपनी बात मनवाने जैसा काम करते है । वे मूलपाठ, टीका, व्याख्या आदि किसी से नहीं चूके हैं अर्थात् अन्य स्थानों पर भी ऐसे परिवर्तन किये हैं। अतः सूक्ष्म अनुप्रेक्षण की आगम अध्ययन में सर्वत्र अपेक्षा रही हुई है ।

अनुकंपा महत्त्व

अनुकंपा समकित का लक्षण है, आत्मा का श्रेष्ठ गुण है। जिस व्यक्ति के अपने किसी भी अहं भाव से किसी के प्रति अनुकंपा का नाश हो जाय तो उसमें धर्म नहीं ठहर सकता है। धर्मी या सज्जन व्यक्ति का भी हृदय अन्य के प्रति दया भाव से लबालब भरा होता है । उसके किसी भी व्यवहार में निर्दयता नहीं टपकती है । अनुकंपा मात्र पवित्र आत्म परिणाम है उसके आगे सावद्य निर्वद्य प्रवृत्ति भेद गौण हो जाते है ।

जैनागम नवनीत एवं प्रश्नोत्तर सर्जक आगम मनीषी श्री तिलोकचंदजी का परिचय

जन्म : १९-१२-४६

दीक्षा ग्रहण : १९-०५-६७

गच्छ त्याग : २२-११-८५

श्रावक जीवन स्वीकार : १२-०७-२०११

दीक्षागुरु : श्रमण श्रेष्ठ पूज्यश्री समर्थमलजी म॰सा॰ ।

निश्रागुरु : तपस्वीराज पूज्यश्री चम्पालालजी म॰सा॰ (प्रथम शिष्य) ।

आगमज्ञान विकास सानिध्य : श्रुतधर पूज्यश्री प्रकाशचंद्रजी म॰सा॰ ।

लेखन, संपादन, प्रकाशन कला विकास सानिध्य : पूज्यश्री कन्हैयालालजी म॰सा॰ 'कमल' आबुपर्वत ।

बारह वर्षी अध्यापन प्रावधान की सफलता में उपकारक : (१) तत्त्वचिंतक सफल वक्ता मुनिश्री प्रकाशचंद्रजी म॰सा॰(अजरामर संध) (२) वाणीभूषण पूज्यश्री गिरीशचंद्रजी म॰सा॰(गोंडल संप्रदाय) ।

गुजराती भाषा में ३२ आगमों के विवेचन का संपादन-संचालन लाभ प्रदाता : तप सम्राट पूज्यश्री रतिलालजी म॰सा॰ ।

आगम सेवा : चारों छेद सूत्रों का हिन्दी विवेचन लेखन (आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से प्रकाशित) । ३२ आगमों का सारांश लेखन । चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग के ५ खंडो में संपादन सहयोग । गुणस्थानस्वरूप,ध्यान स्वरूप, १४ नियम,१२ व्रत का सरल समझाइस युक्त लेखन संपादन ।

गुजरात तथा अन्य जैन स्थानकवासी समुदायों के संत सतीजी को आगमज्ञान प्रदान । ३२ आगम के प्रश्नोत्तर लेखन संपादन (हिन्दी) । आगम सारांश का गुजराती में भाषांतर-संपादन एवं आगम प्रश्नोत्तर गुजराती में भाषांतर संपादन । जैनागम निबंधमाला भाग १ से ५ एवं जैन आगम परिचय हिन्दी और गुजराती में लेखन-संपादन ।

– लालचन्द जैन 'विशारद'